स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज

लेखक और प्रकाशक

माधो प्रसाद

ए. एम. आई. स्ट्रक. ई. (लंदन)
एफ. आर. एस. ए. (लंदन)
रिटायर्ड एक्जिक्युटिव इंजीनियर (रेलवेज़)
कंसल्टिंग (सिविल) इंजीनियर

मोरगंज, सहारनपुर (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण १९५२

मूल्य—सद्भावना

द्वितीय प्रकरण
मुद्रक
आसाराम सत्री
रॉयल प्रेस, सहारनपुर

वक्तव्य और प्रथम प्रकरण
मुद्रक—
श्यामलाल श्रीवास्तव
रायल प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

लेखक का परिचय—

(१) भारतदेश म प्रथम बिलडिंग स्थानान्तर करने वाले (सरकाने वाले) इन्जीनियर— (दिल्ली रेलवे स्टेशन पर सन् १९२४ में)

(२) भारतीय विज्ञानिक सिद्धान्तों और रहस्यों के खोजक। भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान पर २७ नवीन खोजों के उद्घाटक और 'स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय विज्ञानिक की नवीन खोज' पुस्तक के तीन भागों के लेखक और प्रकाशक।

(३) सीमेंट रियनफोर्सड कन्क्रीट के अभ्यासी और मार्बल मुज़ैक कन्क्रीट के कार्य को उत्तरीय भारत में प्रचलित करने वाले—(दिल्ली रेलवे स्टेशन पर सन् १९२३ में)

(४) भारतीय शिक्षित नवयुवकों में हस्तकला के कार्यों को स्वयं अपने हाथोंसे करने की प्रवृत्तिके प्रोत्साहक। सन् १९३४की उर्दू पुस्तक 'शिक्षित नवयुवकों की बेकारी' के लेखक और प्रकाशक।

लेखक के रिटायर्ड जीवन के कार्य क्रमः—

(अ) जनताके हितार्थ नि शुल्क कार्य क्रम (१५ जुलाई सन् ५१ से)

(१) भारतीय वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अन्वेषक और उनकी सत्यता के खोजक।

(२) शासन द्वारा भेजे हुए अथवा स्वयं प्रेरित योग्य और इच्छुक इन्जीनियरों को 'बिल्डिङ्ग स्थानान्तर करने' व पुरानी बिलडिंगों और मकानों की 'जटिल प्रकारकी मरम्मत करने' की शिक्षा प्रदान करना।

(३) भारतीय शिक्षित नवयुवकों को अपने हाथों से हस्त शिल्प कला सबंधी कार्य (लोहार फिटर, बढ़इ और राज इत्यादि के कार्य करने का प्रोत्साहन देना।

(४) भारतीय अशिक्षित कारीगरों को इनके कार्य सम्बधी सिद्धान्तिक विज्ञान और हिसाब की शिक्षा सीखने का प्रोत्साहन देना।

(५) जनता के हितार्थ बिलडिंगों और मकानों की मरम्मत की जटिल
... [illegible] ...कारीगरों का व्योहारिक कठि-
... [illegible] ... परामर्श जनता और कारी

(ब) अपनी जीविका हितार्थ सशुल्क कार्य क्रम (१५ जौलाइ सन् ५२ से)

(१) कन्सल्टिंग इन्जीनियरके प्रत्येक कार्य अथवा बिलडिंगों और मकानों के डिज़ाइन और सुपरवीज़न इत्यादि।

(२) सीमेंट रिइन्फोर्सड और मुज़ैक मार्बल कंक्रीट के कार्य।

(३) शिक्षित नवयुवकों को उच्च श्रेणी के कलाकार बनाना।

विषय—सूची

वक्तव्य

भारतवर्ष और विज्ञान

भारतीयों के नित्य प्रति जीवन यापन की कार्य क्रियायें सदैव से वैज्ञानिक रही हैं और आज भी ९५ प्रतिशत वैज्ञानिक हैं। आधुनिक काल में विज्ञान शून्य होने का आरोप हमको केवल अपनी अविद्या और अनभिज्ञता के कारण सुनना पड़ता है।

हम भारतवासियों के पूर्वज अपनी संतति के पास विज्ञान विद्या की बड़ी बहुमूल्य पितृ संपत्ति छोड़ कर गये हैं जिसके हम थोड़े से दृष्टान्त केवल पाठकों को दिग्दर्शन कराने के हितार्थ इस तृतीय भाग में यहा सूक्ष्म रुप में वर्णन करेंगे। इनको पढकर आप स्वयं इस बात का निर्णय कर लेंगे कि जो कुछ हम अपनी पुस्तक के दोनों पिछले भागों मे कह आये हैं और जो कुछ

इस तृतीय भाग में आगे कहेंगे यह कहा तक सत्य है। उनकी इस ज्ञान भंडार की सम्पत्ति के महत्व को हम लोगों ने हजारों वर्षों से अपनी कई प्रकार की त्रुटियों के कारण गिरा दिया जिसमें अविद्या आलस्य प्रमाद मुख्य हैं और इसके उपरात विदेशियों के आक्रमणों से अपने स्वाभिमान की लोपता भी कुछ मात्रा में है। इसका परिणाम भी वही हुआ जो ऐसी अवस्था में हुआ ही करता है और सौ दो सौ वर्षों मे हमारी परिस्थिति इतनी गिर गई है कि स्वदेश प्रेम तो पर बहुत बड़ी बात है हमको अपने देश की रीति, रिवाज, कपड़े रहन सहन आदर्श और सस्कृति सब से घृणा होने लग गई और यह लहर यहा तक बढी कि हमारे शिक्षित नवयुवकों को निश्चित विश्वास हो गया कि भारत देश के प्राचीन काल में विज्ञान और कला कौशल की तो बात ही छोड़ दीजिये मनुष्य वस्त्रो के स्थान में पत्ता का प्रयोग करते थे और साथ साथ यह भी हृदय में बस गया कि संसार म सब विद्याओं के आविष्कार और उदघाटन करने वाले केवल विदेशी लोग ही थे और हम भारतीयो को सभ्यता और शिष्टता भी सिखाने वाले विदेशी विद्वान ही थे।

हमारे आगे दिये हुए विज्ञान सम्बन्धी थोड़े से दृष्टान्तों से यह भ्राति अवश्य दूर हो जायगी और यह विचार अवश्य बन जायगा कि भारतवर्ष के पूर्वज ज्ञान भडार रखते थे। उन्होंने विज्ञान की जिस भी शाखा पर बडे बडे उच्च कोटि क अन्वेषण करके जो जो भी मूलतत्व की बात बता दी हैं वह आज भी उतनी ही सत्यता रखती है जितनी पूर्वजो के समय म रखती थी और क्योकि ये सब बातें बडे उच्चकोटि के तत्व ज्ञानी और वैज्ञानिक महापुरुषों ने ससार मात्र के मनुष्यों के हितार्थ सत्य और असत्य के निर्णय करके लिखी थी इस कारण वे आज भी उतनी ही सत्य प्रमाणित होती है जितनी कि लिखते समय थीं।

हमारी इस अभागी अवस्था का आरभ महाभारत समाप्त के

पश्चात् हुआ जिसको लगभग पांच हजार वर्ष का समय हो चुका है। हमारे देशवासियों में कई त्रुटियें उत्पन्न हो जाने के कारण इन वैज्ञानिक कला कौशल की ओर से ध्यान हट गया और समय के साथ २ अपने नवीन अन्वेषण करके अपनी वैज्ञानिक विद्या की पुष्टि और नये आविष्कार करना तो अलग वैज्ञानिक पुस्तकों और ग्रन्थों का पढना पढाना भी बन्द हो गया। यह पुस्तकें संस्कृत भाषा में ही लिखी गई थीं। समय का ऐसा चक्र चला कि हमारा इन पुस्तकों के पढने पढाने की ओर से ध्यान कदाचित हट गया। हम में से बहुतों को इस बात का ध्यान तक नहीं आया कि इन पुस्तकों में कितनी महत्वशील तत्वज्ञान सम्बन्धी बातें पहिले से ही मौजूद हैं। हमको न्यूटन साहब के भूआकर्षण सम्बन्धी तीन नियमों पर कोई भी आश्चर्य न हुआ होता जो उन्होंने केवल सन् १६६५ ईस्वी में बनाये थे यदि हमको निम्नलिखित सूत्र का भारतीय पुस्तकों में होने का किंचित मात्र भी ज्ञान हुआ होता।

"संस्कारा भावे गुरुत्वात् पतनम्"

साधना का सहारा न रहने पर भारी वस्तुओं का नीचे को गिरना ही होता है अथवा उनका भूआकर्षण पृथ्वी के केन्द्र की ओर होता है।

हमको सिम्पसन साहब के बताए हुए (सिंपसन रूल के) घनफल निकालने की विधि का जोकि सिंपसन विधि के नाम से देश के स्कूल और कालेजों में भारतीय छात्रों को अस्सी वर्षों से आज तक पढाई जा रही है यथार्थता का ज्ञान बहुत पहिले से ही गया होता और हमने आश्चर्य छोड़कर इसकी सराहना भी न की होती यदि हमको लेशमात्र भी यह ज्ञान हुआ होता, यह फारमूला (विधि) बड़ी सरल भाषा में निम्नलिखित शब्दों में हमारी पुस्तक

**"मुखज तलज तद्युतिज क्षेत्र फलैक्यं हृतंषड्भिः
क्षेत्र फलं सममेवं वेधहतं घनं फलं स्पष्टम्
सम खातफल त्र्यंशः सूचीखाते फलं भवति"**

खात के मुख की लम्बाई चौड़ाई से और तली की लंबाई चौड़ाई के योग से क्षेत्र फल सिद्ध करो फिर इन तीनों क्षेत्र फलों की योग संख्या में छै का भाग दो जो लब्धि मिले वह मध्यम क्षेत्रफल होता है। उनको वेध में (लम्बाई से) गुणा दो तो प्रयोजनीय घनफल होगा।

हमको सन् १८६१ ई० के जौनसन स्टोनली साहब के अन्वेषित एलेकट्रन नाम के परमाणुओं के अविष्कारों पर कोई विशेष आश्चर्य न हुआ होता यदि हमने वैशेषिक के बताये हुए पचभूतों महाभूतों और दृष्य महाभूतों और 'साख्य' के बताए हुये 'तन्मात्राओं' का थोड़ा सा भी अध्ययन कर लिया होता तो हमको इस सन् १८६१ की घोषणा में भी इसी प्रकार त्रुटियें दृष्टि गोचर हो गई होती जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिकों के अबतक के माने जाने वाले उनके ६२ प्रकार के तत्त्वों के अणुओं में थी और यह भी हमको ज्ञात रहता कि तत्त्व केवल पाँच ही हैं और उनके सबसे सूक्ष्म अणु को ही भारतीय वैज्ञानिकों ने 'परमाणु' माना है जिसका आगे विभाजन न हो सके।

हमने ससार के आधुनिक वैज्ञानिकों को अब तक कभी का बता दिया होता कि भारतीय विज्ञान में आज भी ससार को चकित करने वाली कई बाते मौजूद हैं जिनके ऊपर अभी तक लोगों का ध्यान नहीं पहुँचा है और जिस समय भी ध्यान पहुँचेगा तो आधुनिक विज्ञान के बहुत से नियमों में उलट फेर करनी अनिवार्य हो जायगी। उदाहरणार्थ यहा दो बातों का उद्गार किया जाता है। (१) जितने बड़े और छोटे विभिन्न प्रकार के

कीटाणु मक्खी और कीड़े इत्यादि भूस्थल के विभिन्न स्थानो और पदार्थों में विशेषतः गंदगियों और विषों के क्षेत्रों में पाये जाते हैं वह किसी प्रकार की गंदगी या विष मनुष्यों के हानि पहुंचाने के लिये नहीं उत्पन्न करते हैं जैसा साधारणतः आज के आधुनिक वैज्ञानिक समझे बैठे हैं। प्रतिकूल इसके वे उन गंदगी और विषों को नष्ट करते हैं। जो मनुष्यों से उत्पन्न हुई होती है। (२) अग्नि और विद्युत (बिजली) दोनों एक ही वस्तु तेज भूत के दो भिन्न भिन्न रूप हैं। विद्युत में अग्नि तत्व के तेज भूतो परमाणु (तन्मात्राएं) केवल अमिश्रत रूप में ठंडो संयोगता और आकर्षणता का गुण लिये हुए हर पार्थिव और जलमय दृश्य पदार्थों में व्यापिक रहते हैं और 'अग्नि' में इन तेज भूती परमाणुओं में वायु मिल जाती है जिससे यह महाभूतो परमाणुओं में परणित हो जाते हैं जिससे इनमें भौतिक अग्नि के गुण उष्णता, वियोगता और प्रसारणता आ जाते हैं। यही नियम जल में अद्भुत कार्य करता है और यही पृथ्वी के परमाणुओं में।

इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। जिस समय हमारे देश में यहां अविद्या की लहर चलना आरम्भ हो गई और लोग आलसी और प्रमादी होने लग गये तो विदेशियों का यहां पर विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों के कारण आना प्रारम्भ हुआ और एक हजार वर्ष से अधिक तक हमको दासता में रहना पड़ा। इस दासता के काल में हम अपने स्वदेशता के गौरव के साथ २ ही विज्ञान कला कौशल को भी पूर्णत: भूल गये। ईश्वर का धन्यवाद है कि लगभग साठ वर्षों से स्वतंत्रता की तूती बोलनी प्रारम्भ हुई और हमारे देश के कुछ महानुभावों ने फिर से हमारे भीतर स्वदेश और स्वतंत्रता का प्रेम जागृत किया जिससे हमको फिर धीरे धीरे (केवल कुछ परिमित अन्शों में ही) इस बात का ज्ञान होना भी प्रारंभ हुआ कि भारत देश का प्राचीन इतिहास बड़ी उच्च कोटि का है और यह कि हमारी विज्ञान शास्त्र की शैली

भी ऊँची है परन्तु देश मे विदेशी सभ्यता इतनी गहराई तक जा चुकी थी जो कि आज तक हमारे रक्तमें हमारी अविद्याके साथ २ व्यापक है और हमको अपनी भारतीय संस्कृति की ओर किंचित् मात्र भी झुकने का अवकाश नहीं देती। हर शिक्षित और अशिक्षित मनुष्य यह समझे हुये बैठा है कि विदेशियों ने जो भी काम किये हैं वह हमारी भारतीय संस्कृति से बहुत ऊँचे हैं और यह कि उच्च विज्ञान की शिक्षा केवल विदेशियों के ही पास है और उच्च विज्ञान की प्राप्ति के लिये लोगों ने विदेशियों का इस तीव्रता से अनुकरण करना आरम्भ किया कि इस पचास साठ वर्ष के भीतर अपनी भारतीय संस्कृति को उठाने के स्थान में उसको अपने हाथों से मिटा डालने पर आरूढ़ हो गये। यहां पर हम यह भी बता देना आवश्यक समझते हैं कि हमारे मत से विदेशियों की आधुनिक सभ्यता और विज्ञान की प्रणाली में जहां पर बहुत सी बातें सत्यता पर निर्धारित जनता के हितार्थ हैं वहा पर बहुत सी बातें प्राकृतिक सत्य विज्ञान के नियमों के विरुद्ध भी है। बडे खेद से यहां पर कहना पड़ता है कि इससे तो पहिले ही की परिस्थिति अच्छी थी कि जिसमें आशा की झलक तो मौजूद थी। जब हम अपने शिक्षित गण को विदेशी संस्कृति के पीछे अन्धाधुंद दौड लगाते हुये देखते हैं और देख रहे हैं तो बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि ईश्वर हमारी सहायता करे और शीघ्र करें अन्यथा थोडे ही काल में हम उस अवस्था को पहुच लेंगे कि फिर हमारा उठना कठिन ही नहीं असंभव भी हो जायगा। हम इस बात को स्पष्ट रूप से मानते हैं कि पिछले दो सौ वर्षों से विदेशियों ने विज्ञान क्षेत्र में, विज्ञान अन्वेषणों में बड़ी दत्तचित्तता और प्रवीणता से कार्य किया है और बड़े बड़े महान् कार्य भी किये हैं और संसार में बहुत से नवीन आविष्कार भी किये हैं और साथ साथ यह भी मानते हैं कि इनके किये हुये अन्वेषणों और आविष्कारों की महत्वता अधिकता में हम

कारण से मिली कि इन्हीं दो सौ वर्षों के काल मे हमारे देश की परिस्थिति विपरीति रही। यदि हम भी इनके समान स्वतंत्र रहे होते और अपने स्वदेश प्रेम से भारत की प्राचीन संस्कृति स्थिर रखने के अनुयाई होते तो संभवतः हम भी उन दो सौ वर्षों में कुछ तो अवश्य ही कर दिखाते। यह भी सभव था कि अपने पूर्वजों की छोडी हुई विज्ञान सम्पति के आधार पर हम इनसे भी आगे निकल जाते। हम यह भी मानते हैं कि हमारे पूर्वजों की बताई हुई विज्ञान पद्धतिया बहुत सी इस वर्तमान काल में पुराने ढगों से नहीं मानी जा सकती। हमको समयानुकूल अन्वेषण करके इन वैज्ञानिक पद्धतियों को यथाकाल संशोधित करना ही होगा। यह भी हम विशाल हृदय से मानते हैं कि अपनी अवनति को भुलाते हुये विज्ञान विद्या के क्षेत्र में समय के साथ साथ हमको उच्चकोटि की विद्या प्राप्त करनी ही होगी चाहे वह देशवासियों से मिले चाहे विदेशियों से मिले और यदि इस विद्या प्राप्ति में कुछ कष्ट भी सहन करने पड़ें तो सहने होंगे और यदि किसी अन्श तक हमको विदेशियों का थल्प कालिक अनुकरण भी करना पड़े तो भी करना होगा और करना चाहिये परन्तु खेद से यह भी कहना होगा कि यदि इस विद्या प्राप्ति के स्थान पर भारतीय सस्कृति को भुला बैठे और अनुकरण ही अनुकरण हाथ में रह गया तो फिर दशा वही होगी जो आज हो रही है कि देश में साइस के कालेज दिन प्रतिदिन खुलते चले जा रहे हैं परन्तु उनमें से पढकर निकलने वाले छात्रों का ध्येय सबका नौकरी करके पेट पालन करने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आधुनिक विज्ञान विद्या शैली के साथ २ हाथों से साधारण कलाकारों और चक्रकारों के समान हथौडी सँडासी से या साधारण कृषिकारों के समान कृषियन्त्रों से काम करना हमारे होनहार शिक्षित नवयुवक आज भी उतना ही हेच समझते हैं जितना पचास वर्ष पहले समझते थे और सन् १८४० में 'मैकाले' के बनाये हुए कोड के पश्चात समझने लगे थे। आश्चर्य

इस बात पर है कि जिन विदेशियों का अनुकरण विद्या प्राप्ति में किया जा रहा है उनमें यह बात किंचित मात्र भी नहीं है। एक शिक्षित विदेशी किसी भी परिश्रम के कार्य को जीविका उपार्जनार्थ करने में अपनी मान हानि नहीं समझता जैसे हमारे विद्या अनुकरण करने वाले शिक्षित नवयुवक।

विदेशियों ने पिछले दो सौ या डेढ सौ वर्षों से अपने आपको बहुत गुण संपन्न बना लिया है। यदि अनुकरण करना ही है तो अच्छा होता यदि सर्व प्रथम उनकी कार्य प्रवृत्ति और कार्य प्रियता और अन्य श्रेष्ठ गुणों का अनुकरण किया जाता और अपने रहन सहन, खान पान के ढगों को भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही रखे जाते यदि ऐसा न हो तो कम से कम इन रहन सहन और खान पान के ढगों के अनुकरण के साथ साथ ही उनकी कार्य प्रवृत्ति और हस्त कला प्रियता के सद्गुणों का भी अनुकरण होता तो यहां तक कोई विशेष हानि न होती और परिणाम यह होता कि शिक्षित नवयुवकों की देश में बेकारी न बढ़ती। रहन सहन की शैली के अनुकरण का तो केवल अपने अपने सुभीते और रुमान पर निर्भर होता है परन्तु अब थोडी सी दृष्टि इस ओर भी घुमाइये और देखिये कि हो क्या रहा है। हर कालिजों में पढ़ने वाले छात्रों से यदि यह पूछा जावेगा कि उनका विद्या प्राप्ति करने के पश्चात जीविका उपार्जन करने के लिये कार्य लक्ष्य क्या है तो लेखक के विश्वासानुकूल ६० प्रतिशत छात्रों का ध्येय विद्या प्राप्ति के पश्चात आइ० ए० एस० या डिप्टी कलक्टरी की चुनाव परीक्षाओं में बैठकर अपने भाग्य की जाच करना बताया जावेगा यद्यपि यह बात भी सबको भली प्रकार विदित है कि इन चुनावों में सफलता केवल दो चार ही व्यक्तियों को मिलती है। हमारे शिक्षित नवयुवक छात्रों पर इस आधुनिक ढंग की विद्या शैली का प्रभाव इस बुरी तरह से पड़ा हुआ है कि डिप्टी कलक्टरी के न मिलने की परिस्थिति में ये रेलवे की टिकट

कलक्टरी के भी मिल जाने को अहो भाग्य समझने लग गये हैं क्योंकि उनके चित्त में प्रवेश हो गई है कि हाथों से औजार पकड़ कर किसी भी शिल्पकारी को करना तो केवल नीची श्रेणी के अशिक्षित मनुष्यों का कार्य है शिक्षित मनुष्य या तो कहीं पर लिखने पढने के कार्य पर नियुक्त होकर नौकरी करते हैं अन्यथा मशीनो से और यत्रों से वस्तुएँ बनाते हैं। यह सरल बातें यहां पर यह भोले भाले नवयुवक भूल जाते हैं और यह भूल भी क्यों न जायें जब इस भूल का भार और उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है कि हमने स्वय आज तक इस जटिल समस्या को न सुलझाई और अपने काल में हमने भी वही किया जो वह नवयुवक आज कर रहे हैं। और इस मेकाले के बनाये हुए नियम को जो केवल भारतीयों को वैज्ञानिक कला कौशल के कार्यों से वंचित रखने के लिये बनाया गया था आज तक उलघन करने का साहस स्वय नहीं किया और अपने देश में शिक्षा और हस्त कला के मध्याह्न यह दिवाल खड़ी ही रहने दी। उपरोक्त सरल बातें जो यत्रों या मशीनो के प्रति हमको याद रखनी चाहिये वह यह है कि विदेशों में भी और जहा भी जिसने किसी प्रकार का यत्र या मशीन बनाई है उसने सर्व प्रथम वही कार्य कितने ही वर्षों तक हस्तकला द्वारा ही किया होगा। पहिले हजारों की सख्या में वह वस्तुएँ केवल हाथों से बन लेती है तब कभी यत्र या मशीन बनाने का विचार सूझा करता है इससे प्रथम नहीं। ऐसा कदापि नहीं होता कि वस्तुएँ बनें चाहे न बनें सर्व प्रथम उसका मशीन बना दी जावे। क्योंकि ससार में कोई वस्तु ऐसी नहीं हो सकती जो केवल मशीन से ही बन सके और हाथों से न बन सकती हो। इसके विपरीत हजारों वस्तुएँ ऐसी हैं जो केवल हाथों से ही बनाई जा सकती हैं और मशीनों से आज तक भी नहीं बनाई जा सकीं। दूसरी बात यह है कि सबसे प्रथम मशीन भी तो यत्रकारों ने हाथों से ही बनाई होगी और इन मशीनों को हाथों से बनाने

वाले शिक्षित युवक तो अवश्य ही होंगे। तीसरी सरल बात यह है कि मशीन की परिभाषा में दो प्रकार की मशीनें होती हैं एक 'शक्ति उत्पादक यंत्र' जिनको आधुनिक काल में 'ऐंजन' के नाम से पुकारा जाता है जिनमें विभिन्न सिद्धांतों से अग्नि को उत्पत्ति और प्रयोग करके एक यान्त्रिक गति प्राप्त कर ली जाती है और फिर उस कृत्रिम शक्ति से विभिन्न प्रकार के 'कार्यकर्ता यंत्र' चलाये जाते हैं और प्रयोजनीय वस्तुएं बनाई जाती हैं। दूसरी प्रकार मशीनों की यह 'कार्य कर्ता यंत्र' है जिनमें विभिन्न प्रकार के कल पुर्जों को लगाकर एक सरल पहिये को घुमाने वाली शक्ति से अनेक प्रकार की छोटी २ समकालीन गतियें उत्पन्न कर ली जाती हैं। यह बारम्बार यही गति उत्पन्न करती रहती हैं और वस्तुए सुविधा से बनती रहती हैं। पहिले प्रकार के यंत्र (शक्ति उत्पादक यंत्र) का मुख्य कार्य मानुषी परिश्रमको कम कर देना होता है क्योंकि शक्ति अग्नि से (दोनों प्रकार की अग्नि तेज भूती सूक्ष्म अग्नि अथवा विद्युत और तेज महाभूती उष्ण अग्नि) उत्पन्न की जाती है और इन सबकी उत्पत्ति करने के लिये यह शक्ति उत्पादक यंत्र लोहे आदि धातुओं के बनाये जाते हैं। दूसरे प्रकार के यंत्र जिनको कार्य कर्ता यंत्र' कहा जाता है इनके मुख्य कार्य दो हैं एक तो 'उत्पत्ति की वेगता' और दूसरी 'वस्तु की सदृश्यता' तीसरा कार्य नहीं हुआ करता इसीलिये यह फिर स्पष्ट किया जाता है कि पहिले वस्तुओं को हाथों से बनाना चाहिये और फिर उनकी मशीनें जैसा ससार का नियम है। स्वयं हमारे शिक्षित यंत्रकार अपनी वस्तुओं के बनाने वाली मशीनें बनाकर खडी कर लेंगे। जिन हाथों से पहिले वस्तुएँ बनाई जायेंगी उ हीं हाथों से उन वस्तुओं को बनाने की मशीनें बनाई जा सकती हैं और फिर ईश्वर सहायता करे तो यह भी सम्भव है कि इन मशीनों को बनाने के लिये अन्य मशीनें भी हमारे ही देश म बनने लग जायें। इस विषय पर हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे भारत के आदरणीय और सुयोग्य वैज्ञानिक हमारे प्रधान

मंत्री श्री पं० नेहरूजी के मशीन सम्बन्धी वक्तव्यों पर जो वे पांच वर्षोंसे विभिन्न स्थानों पर देते रहे हैं ध्यान पूर्वक विचार करें और उनके रहस्य को समझें। नवम्बर सन १९४९ में उन्होंने रूड़की इन्जीनियरिंग कालिज की शताब्दी के सुअवसर पर यह मशीनों की समस्या बड़ी सरल विधि से समझाई थी और मैं सूक्ष्म रूप से उसको उन्हीं के शब्दों में यहां दोहरा देता हूँ। उन्होंने कहा था "मैंने पुराने २ इतिहास पढ़े हैं और स्वयं देखा भी है कि उन्नति करने वाले देश अन्य उन्नति किये हुये देशों से मशीनें केवल एक बार ही मंगाते हैं और फिर उन मशीनों से अपनी मशीनें स्वयं बना लिया करते हैं। ऐसा नहीं होता जैसा इस समय हमारे देश में हो रहा है कि लोग मशीनों के मंगाने और बेचकर लाभ उठानेको ही अपना लक्ष्य बनाये बैठे हैं। यदि एक बार की मशीन मंगाने से काम न चले तो मेरे विचार से अधिक से अधिक दो बार मंगा ली जावे इससे अधिक नहीं।"

हमारे प्रधान मन्त्री के रूड़की कालिज की शताब्दी पर इन्जीनियरों को दिये हुए इस वक्तव्य में यह बात भली प्रकार से समझाई गई है कि देश के इन्जीनियरों और वैज्ञानिकों का कर्तव्य है कि देश में ही मशीनों को बनाने के साधन उत्पन्न करें। अब भी यदि जो लोग भारतीय कला और विज्ञान की उन्नति करने के हितार्थ केवल विदेशों से रुपया देकर बड़ी बड़ी मशीनें लाकर देश में उनसे वस्तुएँ बनाकर देश की उन्नति करने के स्वप्न देख रहे हैं उनको फिर एक बार पन्डितजी के उपरोक्त वक्तव्य को पढ लेना होगा। संसार में आज तक किसी देश ने केवल अन्य देशों से मशीनों को मंगाकर उनके आधार पर कभी स्थायी उन्नति नहीं की। हां यह मशीनो का मगाना तभी फलदायक और लाभकारी हो सकेगा जब यहां के वैज्ञानिक नवयुवक यह कार्य अपने हाथों में ले लेंगे। अब सारांश में यहां कहना केवल यह है हमारे देश

ये शिक्षित नवयुवकों को हाथों से कार्य करने के क्षेत्र में अब कूद पड़ना चाहिये और तब ही विदेशियों के अनुकरण करने से लाभ होगा, अन्यथा वास्तविकता में लाभ उतना ही होगा जितना एक थियेटर के एक्टर को थियेटर का स्टेज पर एक महान महात्मा का रूपक करने से होता है। हमारे शिक्षित वर्ग को हाथों में औजार लेकर अब कार्य करना ही होगा विदेशों में बड़े २ वैज्ञानिकों ने स्वयं हाथों से लोहे लकड़ी आदि के कार्य करे हैं और वे कभी भी हाथों से कार्य करने को हीन नहीं समझते। लेखक का दावा है कि शिक्षित नवयुवकों के विचारों में इस छोटे से परिवर्तन के ही करने से यह कई प्रकार की जटिल समस्यायें शीघ्र ही सुलझ जायगी। केवल यह रुझान परिवर्तन ही हमारे देश की उन्नति की कुञ्जी है क्योंकि इसके अतिरिक्त हमारे पास सब साधन मौजूद हैं। यदि यह छोटा सा विचार परिवतन करके हमने हाथा से औजार पकड़ के कार्य करने की झूठी हिचकचाहट को हृदय से निकाल दिया तो उसी समय से हमारे देश की उन्नति आरम्भ हो जायगी। इस समय हमारे देश के शिक्षित नवयुवकों को अपने २ रुझान के अनुसार तीन श्रेणियों में स्वयं बँट जाना चाहिये प्रथम श्रेणी उनकी हो जो विज्ञानिक कला कौशल के क्षेत्र में काय करना पसन्द कर दूसरी श्रेणी उनकी हो जो कृषि क्षेत्र में कार्य करना पसन्द कर और बाकी रहे हुए शिक्षित युवक जो उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं अथवा नौकरी प्राप्ति करने के हितार्थ चुनाव परीक्षाओं में बैठना चाहते हैं अथवा कुछ अन्य कार्य करना चाहते हों तो तीसरी श्रेणी में रहना चाहिये। देश की परिस्थिति प्रथम दोनो श्रेणियो को माँगती है और इन्हीं दोनों श्रेणियों के शिक्षित युवकों के ऊपर देश की उन्नति का भार निर्भर है। जो युवक उन दोनों श्रेणियों में काम करने के इच्छुक हैं उनको कार्य प्रारम्भ करने से प्रथम यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि वे दोनों क्षेत्रों में (कला विज्ञान और कृषि विज्ञान में) अपने हाथों से स्वय

उपकरण लेकर कार्य करेंगे और प्रारम्भिक अवस्था में तो कम से कम कितना ही कार्य बढ़ने पर भी इन कार्यों को दूसरे मनुष्यों को नौकर रखकर अपने बांट का कार्य नहीं करायेंगे। आप देखेंगे कि यह चित्तवृति का प्रतिज्ञति परिवर्तन जादू का प्रभाव उत्पन्न कर देगा और साल दो सालके ही भीतर परिणाम इतना श्रेष्ठ निकलेगा कि देखनें वाले भी चकित रह जायेंगे। प्रथम लाभ तो यह होगा कि हाथ से कार्य करने की भारत के शिक्षित नवयुवकों में, एक प्रकार की घृणा का देश में सौ वर्षो से संचार हो रहा है वह मिटने लगेगा और शिल्प और शिक्षा के मध्यान्ह जो एक कृत्रिम दीवार बना रखी है वह टूटने लगेगी दूसरा लाभ यह होगा कि शिक्षित नवयुवकों के इन दोनों परमावश्यक कार्यो को अपने हाथों में सँभाल लेनेसे यंत्रकार (कारीगरों) और कृषिकारी (किसानो) का स्थान ऊँचा हो जायगा तीसरा लाभ यह होगा कि कला कौशल के और कृषि संबन्धी कार्य उन्न कारीगरी और कर्म कौशल के बनने लगेंगें जिसका प्रभाव यह होगा कि न केवल वस्तुएँ ही हमारे शहरों और ग्रामों में बनने लगेंगी एवं इन वस्तुओं की बनाने वाली अनेक प्रकार की मशीनें और यंत्र भी बड़ी सुलभता से देश में बनने लग जायगें। चौथा लाभ यह होगा कि देश की शिक्षित नवयुवकों की बेकारी एक दम कम हो जायगी क्योंकि यह शिक्षित यंत्रकार सैकडो प्रकार की लाभदायक और उपयोगी वस्तुएँ बनाने में लाखो की सख्या मे जुट जायेगें—जैसे टाइप राईटर, दुरबीने, सीने की मशीनें, घड़ियें, साइस के सामान, सरवे के सामान आदि जिनमें आज दिन बहुत अधिकता के मुनाफे लिये जाते हैं। पांचवा लाभ सबसे श्रेष्ट यह होगा कि आप देखेंगे कि केवल थोडे से दिनों के ही अभ्यास के उपरान्त इन शिक्षित यन्त्रकारों का प्रतिदिन वेतन कम से कम अशिक्षित यंत्रकारो से ड्योढ़े से दूना अवश्य ही हो जायगा। साधारण कारीगरों का वेतन प्रतिदिन आजकल (सन १६५२ मे) ४-५ रुपये है। तो कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि हमारे इन शिक्षित यंत्रकारों का वेतन ८-१०

रुपये प्रतिदिन न हो और कौन कह सकता है इनमें से कितने ही शिक्षित नवयुवक स्वीटजरलैन्ड के यंत्रकारों के समान घड़ियें बनाने में दक्ष न हो जांय और २०-३० रुपये प्रतिदिन न कमाने लगें। स्वीटजरलैन्ड में ४५००० यंत्रकार केवल घड़ियें बनाने से जीविका पैदा करते हैं। छठा लाभ यह होगा कि पुराने अशिक्षित कारीगरों में विद्या प्राप्ति करके अपने संतान को शिक्षित यंत्रकार बनाने और अपने मालिकों को थोड़ा श्रम के अपेक्षा अधिक मात्रा में काम करने की श्रद्धा उत्पन्न होगी और इस प्रकार से तीन बातो का इनके साथ २ सुधार होगा। अब थोड़ा सा विवरण फिर मशीन बनाने का करते हैं। इतिहास साक्षी है कि जहाँ किसी भी प्रकार की वस्तु को शिक्षित कलाकार बनाना प्रारम्भ करते हैं तो वे ही शिक्षित कलाकार स्वयं उस वस्तु को शीघ्र और सस्ती उत्पत्ति करने के अनेक साधन निकाल लिया करते हैं क्योंकि शिक्षित होने के नाते उनको हर प्रकार के आवश्यक वैज्ञानिक हिसाबों का बोध होता है और हस्त कलाकार होने के नाते सब प्रकारके प्रयोग स्वयं अपने हाथों से स्वेच्छा पूर्वक करते रहते हैं। इन कारणों से वे उसकी शीघ्र उत्पत्ति करने के साधन ढूँढ निकालते हैं और इन्हीं साधनों को मशीन या यंत्र के नाम से पुकारा जाता है। भारत में प्राचीन समय के बनाये हुए सैकड़ों वैज्ञानिक साधन दिन प्रतिदिन प्रयोग में लाये जाने वाले मौजूद है जिनमें से कई का विवरण आगे दिया जा रहा है—

जिन्होंने विदेशी वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के जीवन इतिहास देखे हैं वे भली प्रकार से जानते हैं कि ऐसे ही हाथ से काम करने वाले शिक्षित यंत्रकारों और वैज्ञानिकों ने मशीनों के आविष्कार किये हैं। स्टीफेसन ने सन् १८१४ मे स्टीम एंजिन—फुलटन ने सन १८०३ में स्टीमर, ग्लीडन ने सन् १८६८ में टाइपराइटर, हाऊ ने सन् १८४६ में कपड़े सीने की मशीन, मिचौक्स ने सन् १८५५ में बाइसिकल सब ने स्वयं अपने हाथों से औजार ·

पकड़कर अपनी २ यान्त्रिक प्रयोगशालाओं में अनेक अन्वेषण करे और इन मशीनों के आविष्कार किये। किसी ने लोहार या फिटर मजदूरी पर रखकर यह कार्य नहीं किये। भारतवर्ष में भी प्राचीन काल के शिक्षित कलाकारों और वैज्ञानिकों ने अनेक वैज्ञानिक यंत्र और मशीनों के समयानुकूल आविष्कार किये परन्तु परिस्थिति की प्रतिकूलता के कारण आगे की उन्नति न हो सकी। जितने यंत्र और साधन प्राचीनकाल में बन चुके थे वे ही आज तक भारत में मौजूद हैं और नित्य प्रति प्रयोग में लाये जा रहे हैं। इन भारतीय वैज्ञानिक यंत्रों और साधनों के उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं जिनको यदि आप वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण करेंगे तो तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि इन यंत्रोंके आविष्कारक और साधनों के संचालक प्राचीन काल के भारतवासी सब प्रकार की वैज्ञानिक, गणित और यंत्र विद्याओं में कितने निपुण और दक्ष थे कि उनके बनाये हुए हजारों वर्ष पहले के यंत्रों और साधनों में आज तक कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी और बहुत से यन्त्रों में परिवर्तन हो ही नहीं सका—जैसे सूत कातने का चर्खा, कुओं से पानी निकालने के पुर, कपड़े बुनने के करघे, कपास ओटने की चर्खियां, तेल निकालने के कोल्हू, इत्यादि आज तक भारत के ग्रामों में ज्यों के त्यों प्रचलित हैं और प्रयोग में लाये जा रहे हैं। यहां एक छोटे से ग्रामीण केवल दो रसियों के बनाये हुए यांत्रिक उपकरण का निर्देश करते हैं जिससे पाठकों को ज्ञात हो जाय कि इस यंत्र का गति विज्ञान (*Dynamics*) की 'चक्रशक्ति' (*Centrifugal force*) के सिद्धान्त पर आविष्कार किया गया था और इस सर्वसाधारण वस्तु में कितने महत्व का वैज्ञानिक रहस्य छिपा पड़ा है। यह हमारे ग्रामों में खेतों के रखवाले कृषिकार अपने पास रखते हैं और इसमें लगाकर छोटे २ पत्थर और मिट्टी के ढेले अपने २ मचानों से वेगवान से घुमाकर पशु पक्षियों को खेतों से भगाने के

रुपये प्रतिदिन न हो और चीन कह सकता है इनमें से कितने ही शिक्षित नवयुवक स्वीटजरलैन्ड के यंत्रकारों के समान घड़ियें बनाने में दक्ष न हो जांय और २०-३० रुपये प्रतिदिन न कमाने लगें। स्वीटजरलैन्ड में ४४००० यंत्रकार केवल घड़ियें बनाने से जीविका पैदा करते हैं। छठा लाभ यह होगा कि पुराने अशिक्षित कारीगरों में विद्या प्राप्ति करके अपने सतान को शिक्षित यंत्रकार बनाने और अपने मालिकों को थोड़ा व्यय के अपेक्षा अधिक मात्रा में काम करने की श्रद्धा उत्पन्न होगी और इस प्रकार से तीन बातों का इनके साथ २ सुधार होगा। अब थोड़ा सा विवरण फिर मशीन बनाने का करते हैं। इतिहास साक्षी है कि जहाँ किसी भी प्रकार की वस्तु को शिक्षित कलाकार बनाना प्रारम्भ करते हैं तो वे ही शिक्षित कलाकार स्वयं उस वस्तु को शीघ्र और सस्ती उत्पत्ति करने के अनेक साधन निकाल लिया करते हैं क्योंकि शिक्षित होने के नाते उनको हर प्रकार के आवश्यक वैज्ञानिक हिसाबों का बोध होता है और हस्त कलाकार होने के नाते सब प्रकारके प्रयोग स्वयं अपने हाथों से स्वेच्छा पूर्वक करते रहते हैं। इन कारणों से वे उसको शीघ्र उत्पत्ति करने के साधन ढूँढ निकालते हैं और इन्हीं साधनों को मशीन या यंत्र के नाम से पुकारा जाता है। भारत में प्राचीन समय के बनाये हुए सैंकड़ों वैज्ञानिक साधन दिन प्रतिदिन प्रयोग में लाये जाने वाले मौजूद है जिनमें से कई का विवरण आगे दिया जा रहा है—

जिन्होंने विदेशी वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के जीवन इतिहास देखे हैं वे भली प्रकार से जानते हैं कि ऐसे ही हाथ से काम करने वाले शिक्षित यंत्रकारों और वैज्ञानिकों ने मशीनों के आविष्कार किये हैं। स्टीफेंसन ने सन् १८१४ में स्टीम एंजिन—फुलटन ने सन १८०३ में स्टीमर, ग्लीडन ने सन् १८६८ में टाइपराइटर, हाऊ ने सन् १८४६ में कपडे सीने की मशीन, मिचौक्स ने सन् १८४५ में बाइसिकल सब ने स्वयं अपने हाथों से औजार

पकड़कर अपनी २ यान्त्रिक प्रयोगशालाओं में अनेक अन्वेषण करे और इन मशीनों के आविष्कार किये। किसी ने लोहार या फिटर मजदूरी पर रखकर यह कार्य नहीं किये। भारतवर्ष में भी प्राचीन काल के शिक्षित कलाकारों और वैज्ञानिकों ने अनेक वैज्ञानिक यंत्र और मशीनों के समयानुकूल आविष्कार किये परन्तु परिस्थिति की प्रतिकूलता के कारण आगे की उन्नति न हो सकी। जितने यंत्र और साधन प्राचीनकाल में बन चुके थे वे ही आज तक भारत में मौजूद हैं और नित्य प्रति प्रयोग में लाये जा रहे हैं। इन भारतीय वैज्ञानिक यंत्रों और साधनों के उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं जिनको यदि आप वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण करेंगे तो तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि इन यंत्रोंके आविष्कारक और साधनों के संचालक प्राचीन काल के भारतवासी सब प्रकार की वैज्ञानिक, गणित और यंत्र विद्याओं में कितने निपुण और दक्ष थे कि उनके बनाये हुए हजारों वर्ष पहले के यंत्रों और साधनों में आज तक कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी और बहुत से यन्त्रों में परिवर्तन हो ही नहीं सका—जैसे सूत कातने का चर्खा, कुओं से पानी निकालने के पुर, कपड़े बुनने के करघे, कपास ओटनें की चर्खियां, तेल निकालने के कोल्हू, इत्यादि आज तक भारत के ग्रामों में ज्यों के त्यों प्रचलित हैं और प्रयोग में लाये जा रहे हैं। यहां एक छोटे से ग्रामीण केवल दो रस्सियों के बनाये हुए यांत्रिक उपकरण का निर्देश करते हैं जिससे पाठकों को ज्ञात हो जाय कि इस यंत्र का गति विज्ञान (*Dynamics*) की 'चक्रशक्ति' (*Centrifugal force*) के सिद्धान्त पर आविष्कार किया गया था और इस सर्वसाधारण वस्तु में कितने महत्व का वैज्ञानिक रहस्य छिपा पड़ा है। यह हमारे ग्रामों में खेतों के रखवाले कृषिकार अपने पास रखते हैं और इसमें लगाकर छोटे २ पत्थर और मिट्टी के ढेले अपने २ मचानों से वेगता से घुमाकर पशु पक्षियों को खेतों से भगाने के

लिये फेंककर मारते हैं। इस यंत्र को 'गोपिया' कहा जाता है। यह केवल दो साधारण रस्सियों के टुकड़ों में जिसमें एक लगभग ३ फिट लम्बा और दूसरा २ फिट लम्बा होता है एक कपड़े पर जाली के टुकड़े के दोनों ओर बांधकर बनाया जाता है। प्रयोग करने वाला कृषिकार इस जाली के टुकड़े में एक पत्थर का टुकड़ा (आधा पाव का) रखकर दोनों रस्सियों को सीधे हाथ में मिला कर पकड़ लेता है और बड़ी वेगता से इस ढेले को रखकर चक्र देता है और फिर चक्र देते २ शीघ्रता से छोटी रस्सी को छोड़ देता है जिससे यह पत्थर बड़ी तीव्रता और वेगता से फेंका जाता है और बड़ी प्रबलता से पशुओं में जाकर लगता है। अब पाठकों को स्वयं निर्णय कर लेना होगा कि यह साधारण सा ग्रामीण यंत्र कितने उच्च विज्ञान के आधार पर बनाया गया होगा और प्राचीन काल में भी भारतवासियों को 'गतिविज्ञान' (*Dynamics*) का किस उच्चता का ज्ञान था कि केवल मानुषी परिश्रम से एक पत्थर के टुकड़े को वेगता से चक्र देकर इतनी शक्ति से फेंका कि जितना चार मनुष्यों की सामूहिक शक्ति से भी हाथों द्वारा नहीं फेंका जा सकता। यह फेंकने की शक्ति - केवल चक्र शक्ति द्वारा उत्पन्न कर ली जाती है। यह वही गति विज्ञान' का सिद्धांत है जिसके आधार पर गोलाई के स्थानों में रेलवे लाइनों की एक पटरी थोड़ी ऊँची उठाकर रखी जाती है जिससे रेलगाडी वेगता से दौडती हुई गोलाई के बाहर की ओर पटरी से निकल न भागे। यह एक बड़े महत्व का उदाहरण है जिसको हर भारत-वासी को स्मरण रखना चाहिये और जो भारतीयों को विज्ञान हीन होने के आरोप लगाने का संकेत भी करें तो उनको यह यंत्र अवश्य दिखा देना चाहिये। इसी 'चक्र शक्ति गति विज्ञान' का प्रयोग यहां के एक संग्राम शस्त्र जिसको 'चक्र' कहा जाता है उसमें किया गया है। उसको एक डंडे पर रखकर बड़ी वेगता से चक्र देकर छोड़ा जाता था जिससे यह बड़ी तीव्रता और शक्ति

से निकलकर शत्रुओ पर फेंककर मारा जाता था। इस प्रकार के सैकड़ों यन्त्र और साधन हमारे शिक्षित वैज्ञानिकों को ढूँढने से मिल जायँगे जिनमें विज्ञान की उच्च २ कलाओं के सिद्धांत भरे पड़े हैं। परन्तु मिलेंगे उन शिक्षित युवकों को जो लेखक के आदेशानुसार हस्त कार्य करने की प्रतिज्ञा करके अपनी चित्तवृत्ति में परिवर्तन करके विज्ञान क्षेत्र में अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये डट जावेंगे। भविष्य में आनेवाली भारतीय संततियों में भी उन नवयुवकोंके नाम सर्वदा जीवित रहेंगे। इस वर्तमान समय में हमारी हस्तकला से घृणा ही का कारण है कि विदेशी मशीनें बनाने वाले सैकड़ों प्रकार की मशीनें बना २ कर भारत में बिक्री के लिये भेज रहे हैं क्योंकि देश में स्वतत्रता हो जाने के कारण कोने २ में आवश्यकता की वस्तुओं को देश में बनाने के लिये शिल्पालयों के शीघ्र से शीघ्र खोलने की मांगें उठ रही हैं। हम यहा पर फिर पीछे बताये हुये अपने प्रधान मंत्री के शब्दों को दोहराते हैं और चेतावनी देते हैं कि केवल बाहर से मँगाई हुई मशीनें लगा २ कर कारखाने खोलने से देश की उन्नति नहीं हो सकेगी। केवल बात वही रहेगी चाहे विदेशों से बनी बनाई वस्तुएँ खरीदी जावें और चाहे इनके स्थान में एक बहुमूल्य की मशीन खरीदी जावे और अपने देशमें उस मशीन से वस्तुएँ बनाई जावें। इसमें अन्तर केवल इतना अवश्य पड़ेगा कि वस्तुएँ कुछ थोड़ी सी सस्ती बनने लगेगी परन्तु इस थोड़ी सी भाव की बचत की तुलना में हानि को भी देखिये कितनी होगी। एक तो लाखों रुपयों का एक बारगी का खर्च मशीनों की खरीद करने में दूसरे उनके पुर्जों को बदलने या मरम्मत करते समय उन्हीं मशीन भेजने वालों पर हमारी आश्रयता और तीसरे उन मशीनों पर कार्य करने के लिये विदेशी कारीगरों के रखने का बंधन। उन्नति तभी हो सकेगी जब केवल एक या दो ही बार मशीनें विदेशों से मगा ली जावें और फिर उनको स्वय बनाया जावे।

वह भी साधारण मूल्य वाली मशीनें ही मंगाई जावें और उनसे कार्य आरम्भ कर दिया जावे परन्तु साथ २ इस, वस्तुओं के बनाने के कार्य के इन मशीनों और यंत्रों को हस्त कला द्वारा बनाये जाने के प्रयत्न किये जावें। यदि प्रारम्भिक अवस्था में हमारी मशीनें कुछ दोषयुक्त भी बनती हैं तो भी हमको उनको अपनाना ही चाहिये और उनके बनाने वाले यंत्रकारों को हर प्रकार का सहयोग और प्रोत्साहन देना ही चाहिये जिससे वे उन मशीनों की त्रुटियां निकाल दें और उनका संशोधन करके उपयोगी मशीनें बनाने लगें। जब तक यहां मशीनें अपने देश में नहीं बनाई जाती हैं और हाथों के कार्य करने से नहीं बनाई जावेंगी उस समय तक न तो बार २ मशीनें बाहर के देशों से लाकर लगाने से कोई विशेष लाभ होगा और न मशीनों से मशीनें बनाने से ही कुछ लाभ होगा। मशीनों के प्रति एक दो बातें अपने शिक्षित नवयुवकों को और बताते हैं और उनको सचेत करते हैं कि जहां आज एक ओर तो बहुत से विदेशी वैज्ञानिक हमारे देश में आ आ कर यह प्रचार कर रहे हैं कि उनसे मशीनें खरीद २ कर हम अपने देश में स्वदेशी वस्तुएँ बनाना प्रारम्भ करें। वहां दूसरी ओर विदेशी मशीन बनानेवाले विभिन्न प्रकार की मशीनें हमारे देश के लिये बनाने में लगे हुये हैं और क्योंकि उनको हमारे मौजूदा शिक्षित वैज्ञानिकों की परिस्थिति का भली प्रकार ज्ञान है कि ये लोग हस्त कला से घृणा रखते हैं इस कारण उनकी मशीनों के अनुकरण यह शिक्षित भारतवासी वैज्ञानिक तो कर ही नहीं सकेंगे। यह अपनी मशीनों का मूल्य भी मन चाहा मांग रहे हैं और ठीक उसी तत्परता से अब मशीनों के बनाने में लग गये हैं जिस तत्परता से पहिले वस्तुओं के बनानेमें लग रहे थे। यदि उनको मशीनों के अनुकरण कर लिये जाने का थोडा सा भय था तो हमारे अशिक्षित कारीगरों से था जो अशिक्षित रहते हुए भी लोहे आदि के हस्त कार्यों

के करने में अति निपुण हैं परन्तु इन विदेशी मशीन बनाने वालों को हमारी दूसरी परिस्थिति का भी पता है कि भारत के शिक्षित वैज्ञानिक और इंजीनियर अपने देश के अशिक्षित कारीगरों को अपने से कोसों दूर रखते हैं और उनसे बात भी ढंग से करना बहुत नापसन्द करते हैं। इस कारण उन अशिक्षित कारीगरों को वैज्ञानिकों का सहयोग न मिल सकेगा और बिना वैज्ञानिक सहयोग के मशीनों का बनाया जाना असंभव है। इससे उनकी यह आशङ्का भी जाती रही और परिणाम यह हुआ कि विदेशी मशीनों के बनाने वाले हमारे अभागे देश के लिये सैकड़ों प्रकारको मशीनें बड़ी संलग्नतासे बना रहे हैं, और यह सब मशीनें बन २ कर हमारे ही देश में आकर बिकेंगी। तीसरी ओर हमारे बहुत से भारतीय शिक्षित महानुभाव भी यह कहते सुने जाते हैं कि अब 'मशीनों' का समय है इसमें हाथों से कार्य करना मूर्खों का काम है। हमारे शिक्षित नवयुवकों को इन तीनों ओर से हुए आक्रमणों का भी सामना करना होगा और अपने हाथों से कला कौशल करने की प्रणाली का देश में प्रचार करना होगा। जो वास्तविकता में जैसा पहले बतलाया जा चुका है इन सब जटिल समस्याओं की कुञ्जी है। एक और आवश्यक बात यहां यह बता देते हैं कि बहुत से विदेशी मशीन बनाने वाले अपनी मशीनों की आकृति (बनावट) बड़ी टेढी बांकी बना देते हैं और जिसके कारण कोई अशिक्षित कारीगर या साधारण श्रेणी का वैज्ञानिक भी उसके कार्य-सिद्धांत को शीघ्रता से न समझ सके। इस प्रकार की क्रिया का प्रभाव यह पड़ता है कि साधारण मनुष्य इन मशीनों के विभिन्न पुरजों के कार्य कर्म ही नहीं समझते बनाना तो दूर की बात रही। जहां पर देश के शिक्षित नवयुवक हस्त कला को तुरन्त प्रारम्भ करने का आदेश दिया जा चुका है वहां देश के रहने वाले महानुभावों से भी प्रार्थना है कि स्वदेशी ही वस्तुओं से अधिक प्रेम करें जैसा बापूजी के आदेश-

नुसार प्रारम्भ किया गया था और जब तक देश में देशवासियों के हाथों या उनकी बनाई हुई मशीनों से वस्तुएँ न बनाई जाने लगें उस समय तक अपनी नित्य प्रति आवश्यकताओं को घटाकर रखें जिससे वे भविष्य में आनेवाली संततियों के धन्यवाद के पात्र बनें और साथ २ अपना धन भी बचावें।

हमको देश में शिक्षित कलाकार बनाने से भी प्रथम अपने देश के कारीगरों के नामों में तुरंत परिवर्तन करना होगा जिनसे वे संबोधित किये जाते हैं। लोहार, बढ़ई राज इत्यादि नामों की जगह शिल्पमित्र या कलामित्र आदि मानपूर्वक नामों का प्रयोग करना होगा और इन कलाकारों के सहकारी मज़दूरों के अपमानजनक नाम 'कुली' आदि की जगह 'कार्यमित्र' आदि नामों का प्रयोग करना होगा। यह परिवर्तन परमावश्यक है।

अब यहां पर कुछ प्राचीन भारतीय विज्ञान के साधारण प्रयोगों, सिद्धांतों और यन्त्रों से संक्षिप्त विवरण करके निम्नलिखित उदाहरण देते हैं जो आज भी भारतवर्ष में उतनी ही सत्यता और उपयोगिता से माने जाते हैं जितने प्राचीन काल में। इनके अध्ययन से आपको भली प्रकार इस बात का बोध हो जाना चाहिये कि हमारे देशवासी हजारों वर्ष पूर्व भी विज्ञान से कितने परिचित थे और यह भी ज्ञात हो जाना चाहिये कि इन्हीं वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर आधुनिक काल के विदेशी वैज्ञानिकों के नई २ वस्तुओं का अधिक उन्नति रूप में भी बनाने के कार्य को नया आविष्कार कहकर नहीं पुकारा जा सकता केवल 'संशोधन' ही के नाम से ही पुकारा जा सकता है।

(१) सूत कातने का चरखा—यह हजारों वर्षों से अपनी बनावट और आकृति में जैसा का तैसा मौजूद है। एक बार फिर अच्छी प्रकार इस भारतीय यन्त्र का निरीक्षण करके अपने मित्र वैज्ञानिकों से पूछिये कि क्या वह अब भी यह भ्रम रखते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में ऊँची श्रेणी के यंत्र वैज्ञानिक अथवा मैकेनीकल इन्जीनियर मौजूद न थे। लोगों की

घोषणा है कि इस यंत्र में थोड़े बहुत अन्शों में यंत्र विज्ञान के सब सिद्धांतों का ही प्रयोग किया गया है। लेखक के दृष्टिकोण में आश्चर्य नहीं कि बापूजी (महात्मा गांधी) ने इस यन्त्र को इसी कारण से इतना महत्व दिया था। यह छोटा सा सूत कातने का यन्त्र भारतीय पूर्वजों का आविष्कार किया हुआ यंत्र है जिसकी मशीन इतनी सरलता और पूर्णता लिये हुए है कि आज तक भी इस यंत्र के नित्य प्रतिदिन और भारतवर्ष के कोने २ में प्रयोग में लाये जाते हुए भी किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं समझी गई। आधुनिक वैज्ञानिक पुतली घरों में भी सूत कातने में इसी यंत्र का सिद्धान्त प्रयोग में लाया गया है।

(२) कृषि कार्य में भूमि जोतने का हल—यह भी हजारों वर्षों से अपनी मौजूदा आकृति और बनावट लिये हुए चला आ रहा है और हर ग्राम के कृषिकार इसको प्रयोग में ला रहे हैं। इसपर भी चरखे की उपर लिखित बहुत सी बातें उसी प्रकार लागू हैं।

(३) कुओं से पानी खींचने के रहट—यह भी भारत में हजारों वर्षोंसे अपनी मौजूदा आकृति और बनावटमें चला आ रहा है। छै सौ वर्षों से अधिक समय से लाहौर के पास एक ग्राम स्थित है जहां पर उस समय छै रहट इकट्ठे लगे हुए थे। इस स्थान का नाम अबतक छै रहटा चला आ रहा है। तीस वर्षों से यह रहट लोहे के बनाये जाते हैं परन्तु इससे पूर्व केवल काठ के प्रयोग से ही बना लिये जाते थे और माल में सन की रस्सी में मिट्टी के बर्तन बांधकर प्रयोग में लाये जाते थे। इस यन्त्र का निरीक्षण करके क्या कोई इन्जीनियर या वैज्ञानिक सोचने या कहने का साहस करेगा कि भारत के कारीगरों या इन्जीनियरों को दांतेदार पहियों या पुलियों का बनाना और यन्त्रों में प्रयोग करना नहीं आता था और यह कि भारत के शिक्षित वैज्ञानिक नवयुवक यदि थोड़ा सा हस्त शिल्प अभ्यास को ग्रहण करें तो पहियें और अन्य वस्तुएँ बड़ी सुगमता से नहीं बना सकेंगे।

(४) कपड़ा बुनने के करघे—यह कपड़ा बुनने के करघे भी प्राचीन काल ही से अपनी आकृति और बनावट में जैसे के तैसे आज तक चले आ रहे हैं और देश के कोने २ में प्रयोग में लाये जा रहे हैं। कपड़ा

बुनने का यहीं प्राचीन यंत्र है जिसका बना हुआ ढाके आदि भारतके क्षेत्रोंका कपड़ा बाहर के देशों में ले जाकर बेचा जाया करता था। योरप के देशों में इस ढाके की मलमल को बहुत ऊँची दृष्टि से देखा जाया करता था। इस यन्त्र की रचना का सिद्धान्त भी इतना वैज्ञानिक और परिपूर्ण है कि इसमें भी कोई संशोधन करना चरखे के समान अनावश्यक समझा जाता है।

(५) बैलगाड़ी, इक्कागाड़ी, ऊँटगाड़ी, रथ, तांगे इक्के—यह हजारों वर्षों से अपनी मौजूदा आकृति और बनावट में चली आ रही है। इनका निर्माण जब भी भारत में किया गया हो पूर्णतः वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर किया गया प्रतीत होता है क्योंकि आजतक इनमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ी—इन्हीं के सिद्धान्त पर आधुनिक काल में मोटर और रेलगाड़ियें आदि बनाई गई। इन प्राचीन काल की बैलगाड़ियों इत्यादि के पहिये, धुरे, हालें आदि हिस्से 'मैकेनिक्स' (Mechanics) के सिद्धांत पर बनाये गये थे। पहियों में लोहे की आवनें लगाकर लोहे के धुरों पर उनका चलाया गया और इनमें 'फ्रिक्शन' कम करने के लिये चिकने तेल लगाये जाते थे।

(६) भवन निर्माण कला (वास्तु विद्या)—बिल्डिङ्ग बनाने का विज्ञान (Civil Engineering Science) भारत देश की बहुत प्राचीन कला है। इस भवन निर्माण विज्ञान की प्राचीनता को तो इतिहास स्वयं बतायेगा कि यह विज्ञान कला इस देश में कितने उच्च शिखर पर पहुँची हुई थी। आज दिन हम देश में पुरानी हजारों वर्ष की बनी हुई इमारतों को दिल्ली के आसपास में, आगरे फतेहपुर सीकरी में, त्रिचनापल्ली मदूरा और रामेश्वर में और बाकी अन्य स्थानों में देखते हैं तो हमको तो कम से कम कोई ऐसी बात अब तक नहीं मिली जिससे यह कहा जा सके कि इन इमारतों के बनाने वाले बिल्डिङ्ग विज्ञान में किसी विशेष सिद्धान्त से अनभिज्ञ थे यदि कहा जा सकता है तो केवल दो बातों के लिये। एक तो लोहे आदि के कामों में और दूसरे सीमेन्ट के कामों में क्योंकि लोहा बहुत थोड़ मात्रा में उन समयों में निकलता था और सीमेन्ट बनता ही न था। इसके स्थान में उस समय के बिल्डिङ्ग इंजीनियर नीवों (बुनियादों) के

कार्य में और छतों की डाटों के कार्य में यह मानना ही होगा कि आधुनिक इंजीनियरों से भी अधिक दक्षता रखते थे। बुनियादोंकी रचना इस पूर्णतासे की जाती थी कि हजारों इमारतों में से जो हमने देखी है बुनियाद एक को भी जाती नहीं देखी। छतों के सबन्ध में जिन्होंने लखनऊ के इमाम बाड़े के बराडों की डाटों को देखा है वह स्वय यह भली प्रकार अनुभव करते होंगे। प्राचीन काल में चूना जो प्रयोग में लाया जाता था वह बहुतायत में कंकरका चूना (Hydraulic Lime) ही होता था। इस कारण उस समय की इमारतों में दुहरा लाभ होता था। चूने में कड़ाई (Setting) तो सीमेंट के आसपास या कुछ थोड़ी ही कम रहती थी और लचक (Elasticity) चूने की बनी ही रहती थी। सीमेंट के कठोरत्व का दोष नहीं आता था। यही मुख्य तीन कारण है जिसमें आज हजारों वर्ष के पश्चात भी यह इमारतें दीख पड़ रही है। दिल्ली के पुराने किले को ३००० वर्ष वी० सी० के लगभग का बना हुआ भारत का इतिहास मानता है और उसके खंडहर आज भी देखने को मिलते हैं।

भारतीय बिलडिङ्ग वैज्ञानिकों ने भी अपनी विज्ञान कला में, अन्य कलाओं के वैज्ञानिकों के समान महत्वता प्राप्त की। भारतीय वैज्ञानिकों को हर कला में पूर्ण महत्वता प्राप्त करने का एक बड़ा कारण यह भी रहा कि उन्होंने जो भी कार्य किये प्रकृति के नियमों के अनुकूल किये प्रतिकूल नहीं किये और इसी का परिणाम है कि आज के समय में भी हम शब्द को आकाश का ही गुण मानते हैं जैसा पांच हजार वर्ष पहले मानते थे। यह बात हम किंचित भी ध्यान में नहीं लाते कि आधुनिक वैज्ञानिक हमारी इस बात को कहाँ तक सुनते हैं। इसी प्रकार बुनियादों की रचना के सिद्धान्त हमारे इंजीनियरों ने प्रकृति के बनाये हुए विभिन्न प्रकार के जानवरों के पैरोंकी आकृति से लिये। पक्की शुष्क भूस्थल पर घोड़ेके 'सुम' के सिद्धान्त पर बिना फैलाये और ठोस बनना चाहिये, कच्चा गीली भूस्थल पर बैल के 'खुर' के सिद्धान्त पर थोड़ी फैली हुई और बीच में से कटी हुई बननी चाहिये। कच्ची दलदल वाली भूस्थल पर बतक के 'पैर' के सिद्धान्त पर। कई स्थानों में अथवा २ कीचड़ में घुस जानेवाली परन्तु क्रमा से मिल्ली के

समान कंक्रीट आदि की तरह से आपस में जुड़ी हुई बननी चाहिये। और दोलो और रेतीली भूस्थल पर ऊँट के 'पैर' के सिद्धान्त पर अधिक फैली हुई और ठोस बननी चाहिये। साधारण भूस्थल पर बुनियादें बक्स रूपकी (Box Foundation) बननी चाहियें। नरम और पानी भरी भूस्थल पर कुओंकी गलाकर (Well Foundation) बननी चाहिये और गहरी दलदल वाली भूस्थल पर खूटों को ठोककर (Piles Foundation) बननी चाहिये। यदि गीली घास वाली भूस्थल पर तुरन्त भारी बोझ रखना हो तो उसपर रेता बिछाकर रख लो और इसके प्रतिकूल यदि ये रेतीली भूस्थल पर तुरन्त भारी बोझ रखना हो तो घास बिछा कर रख लो। छतों के बनाने के सम्बन्ध में एक सरल नियम यह है कि दोनों ओर टिकी हुई छत या शहतीर में ऊपरी भाग में 'भिचन' निचले भाग में 'खिचन' और बीच के भाग मे 'कटन' के प्रभाव पड़ते हैं। परन्तु यह तीन प्रभावों वाला नियम तभी तक स्थिति रहता है जब तक यह छत या शहतीर अपने 'ठेयाव' के स्थानसे आधा नीचे हो और आधा ऊपर हो और यह छत या शहतीर लेविल में हो। जब यह छत या शहतीर अपने ठेयाव की लाइन से झुकी हुई गोलाई खाकर नीचे की ओर आनकर उस ठेयाव के लेविल से नीचे निकल जाते हैं तो छत की कुल मोटाईमें 'खिचन' प्रभाव पड़ता है और इसके प्रतिकूल जब यह छत या शहतीर अपने ठेयाव से झुकी गोलाई ऊपर की ओर लेकर उस ठेयाव के लेविल से ऊपर निकल जाते हैं तो कुल मोटाई में 'भिचन' प्रभाव पड़ता है। इस सिद्धान्त से जितनी प्रकार की डाटें लगाई जाती है उन सब में 'भिचन' (compression) के अतिरिक्त खिचन (Tension) किंचित मात्र भी नहीं होता। यही एक कारण है कि बड़ी स्थायी इमारतों में सर्वदा या तो पत्थर की डाटें लगाई जाती रही हैं और या गुम्बज आदि स्थायी मकानोंकी छतोंमें 'खिचन' प्रभाव रखना दूषित समझा जाता रहा है।

(७) विद्युत का अग्नि ही एकरूप है—भारतीय वैज्ञानिक आज भी (विद्युत)बिजलीको अग्निका विशेष रूप मानते हैं जैसा प्राचीन कालमें मानते थे। हमारे विज्ञानमें अग्निके गुण सयोगता, वियोगता, आकर्षणता, अपसार्यता

उष्णता और रूप हैं और यह जल और पृथ्वी के हरएक पदार्थ में व्यापक रहनेवाली है। जब तक अग्नि के सूक्ष्म परमाणु केवल सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं ही की अवस्था में रहते हैं 'तेजभूतं' कहलाते हैं और हर पार्थिव और जलीय पदार्थ के कणों की संयोगता इस प्रकार करे रखते है जैसे सीमेन्ट रेते और रोड़ी आदि के टुकड़ों की आपस में संयोगिता कर देता है। यह अब तक विद्युत (बिजली) कहलाते हैं। इस विद्युत अवस्थामें इसके गुण रूप संयोगता और आकर्पणता होते हैं। जब इन तेज भूतो अग्निके परमाणुओं में वायु के परमाणुओं की व्याप्ति हो जाती है जो अग्नि के परमाणुओं से अधिक सूक्ष्म होते हैं तो यह साधारण प्रत्यक्ष अग्नि में परिणित होजाती है और 'तेज महाभूत' कहलाती है और उस अवस्था में उसके गुण 'वियोगता' 'अप्साराणता' और उष्णता हो जाते हैं।

(८) पृथ्वी की भू आकर्पण शक्ति (Gravity) पृथ्वीमें अग्नि की व्याप्ती के कारण है— भारतीय विज्ञान में तेजमूर्ति परोक्ष अग्निमें जो हरएक जलीय और पार्थिव पदार्थ में व्यापक रहती है इसमें आकर्पणत्व शक्ति होती है जिसके कारण 'अधिक तेजमती परमाणुओं' वाला पदार्थ थोड़े तेजभूती परमाणुओं वाले पदार्थ को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। इस नियमानुकूल सूर्य पृथ्वी को अपने आकर्पण से अपनी ओर खींचे हुए हैं और उसी नियमानुकूल पृथ्वी सब पदार्थों को अपने केंद्र की ओर आकर्षित करती रहती है। इसी को भू आकर्पण (Gravity Force) कहते हैं। यह भू आकर्पण का नियम भारतीयों को हजारों वर्ष से ज्ञात था। इसको प्रमाणित करने के लिये एक प्राचीन संस्कृत की वैज्ञानिक पुस्तक का एक सूत्र देते हैं।

'संयोगा भावे गुरुत्वात्व पतनम्'

जिसका अर्थ है कि सहारे के हटा लेने से कोई भी पदार्थ हो वह नीचे पृथ्वी की ओर गिर पड़ेगा।

यही तो न्यूटन साहब का प्रथम नियम है जिसका उन्होंने सन् १६८० में आविष्कार किया है।

(९) भारतीय गणित विज्ञान की हजारों वर्ष प्राचीन संस्कृत

की पुस्तक 'लीलावती' से कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—(I) किसी टेढ़ी बनावट के पदार्थ का घनफल निकालना।

'क्षेत्रफलं सममेवं वेध हत घनफलं स्पष्टम्।
समखात फल त्र्यंशः सूची खाते फलं भवति।'

ऊपर के क्षेत्रफल तथा नीचे के क्षेत्रफल और ऊपर तथा नीचे के दैर्ध्य विस्तार के योग से जो क्षेत्रफल हो उन तीनों के योग में ६ के भाग देने से सम क्षेत्रफल होता है उसके वेध से गुणा करने से घनफल होता है सम खात फल का तृतीयांश सूची खात का घनफल होता है।

यही वह विधि है जो सिम्पसन रूल'के नाम से विख्यात हो रही है।

(II) वृत में व्यास और परिधि के आपेक्षिक मान की अपूर्व विधि

व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते
खबाण सूर्यैं परिधिः स सूक्ष्मः
द्वाविंशतिघ्ने विहृतेऽथ शैलेः
स्थूलोऽथवा स्याद्व्यवहारयोग्यः

व्यासमान को ३९२७ में गुणा कर १२५० से भाग देने से परिधि मान सूक्ष्म निकल आता है तथा व्यासको २२ से गुणा करके ७ के भाग देने से परिधि का मान कुछ स्थूल आता है।

(III) वृत के क्षेत्रफल पृष्ठफल और गोले के घनफल की सरल विधिया

वृत क्षेत्रे परिधि गुणित व्यासपादः फलतत्
क्षुण्णं वेदैरुपरि परितः कन्दुकस्येव जालम्
गोल स्यैव तदपि च फलं पृष्ठज व्यासनिघ्न
षड्भिर्भक्तं भवति नियतं गोलगर्भे घनाख्यम्

परिधि को व्यास से गुणा करने से पृष्ट फल होता है। ऊपर के पृष्ट फल का चौथाई वृत क्षेत्र का फल होता है। पृष्ट फलको व्याससे फिर गुणा करके छै से भाग देने से गोले का घनफल आजाता है।

(१०) वायु को अग्नि से संसर्गित करके अग्नि के तापमान को बढा कर ऊँचा करने का सरल प्राचीन भारतीय प्रयोग—

भारत के स्वर्णकार जब किसी स्वर्ण आभूषण में टांका लगाते हैं तो एक मोडल [Mica] की पतरी पर स्वर्ण आभूषण को रखकर तेल से जलने वाले साधारण दिये की लौ के पास ले जाकर उस लौ में एक छोटी सी टेढ़ी चोंच वाली फूकनी से फूक मारते हैं जिससे उस दिये की लौ की अग्नि में वायु के संसर्ग से तुरन्त तापमान बढ़ जाता है और ६०० सेन्टीग्रेड से तुरन्त बढ़कर ११०० सेन्टीग्रेड हो जाता है और स्वर्ण जिसके गलने का तापमान केवल १०६३ सेन्टीग्रेड है सुविधा से गलने लगता है। इस प्रयोग से उनको यह विशेष सुविधा अलग मिलती है कि यह बढ़ा हुआ तापमान तभी तक रहता है जब तक टांका न लगे और केवल उसी परमित स्थान पर बढ़ता है जहां कार्य करना होता है। यह भारतवर्ष का हजारों वर्ष पुराना प्रयोग है जो अपनी पुराने ही ढग से आज तक ज्यों का त्यों चला आ रहा है। आधुनिक काल में इस सिद्धान्त पर ही गैस और मिट्टी के तेल के चूल्हे और 'औक्सी एसिटलीन' [Oxy Acetylene-Welding] क्रियाओं के सुविधाजनक आविष्कार हुए हैं।

(११) 'अग्नि विद्या' (आतिशबाजी)—प्राचीन काल में अग्नि विज्ञान तो हमारे देशका सब ही मानते हैं कि उच्चशिखिर पर चढ़ा हुआ था इसके साथ २ 'अग्नि विद्या' अथवा अग्नि से विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाने की कला [Fire Works] के भी हमको बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि इस कला में भी भारतीय पीछे नहीं थे। बारूद बनाना यह भली प्रकार जानते थे और यह बात सर्वसाधारण को भी ज्ञात थी कि बारूद केवल तीन पदार्थों से ही बनती है अर्थात 'कोयला', 'शोरा' और 'गंधक'। हमने ऐसे बूढ़े आतिशबाजों से स्वयं वार्तालाप की है जो सन् १८५० में बारूद बनाते थे। उनमें से एक महोदय ने बारूद बनाने के सिद्धांतपर एक छोटी सी कहावत बताई कि सात हिस्से बारूद में पांच हिस्से शोरे के और एक हिस्सा गंधक और एक हिस्सा कोयले का पड़ता है और यह

कि कोयले का कार्य ज़ोर करना [शक्ति देना] शोरे का कार्य शोर करना [शब्द करना] और गंधक का कार्य ले भागना [गति प्रदान करना] होता है। हमारे देश में आतिशबाजी की भी एक उपजाति अन्य कारीगरों की उपजातियों के समान मौजूद है जिनके कुटुम्बों में हजारों वर्षों से बारूद और आतिशबाज़ीके ही कार्य होते चले आये हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने बारूद बनाने में अद्भुत उन्नति कर ली है। परन्तु सिद्धांत वही है।

अब यहां विज्ञान की अन्य कलाओं के उदाहरणों को रोककर आरोग्य विज्ञान कला सम्बन्धी कुछ उदाहरण देते हैं।

(१२) गंदगी और विषों की उत्पत्ति के वास्तविक कारण—

प्राचीन भारतवासी जैसा कि विस्तृत रूप में इस पुस्तक के प्रथम और द्वितीय भागों में वर्णन कर चुके हैं स्वास्थ्य नाशक विषों की उत्पत्ति का मूल कारण खाद्य पदार्थों (पार्थिव वनास्पतिक पदार्थ) में अन्य तीनों तत्वों अथवा जल, वायु और अग्नि के सम-कालीन सम्पर्क को माना है और उस विष की उत्पत्ति होने के बाद इस विष की चालकता और विस्तीर्णता का मूल कारण जल और वायु (की वाहन क्रिया) को माना है और उन्होंने अपनी सत्य आरोग्य विज्ञान में दक्षता का प्रमाण केवल दो ही बातें बता कर भली भांति दे दिया है। एक तो यह बतलाया कि गंदे और दूषित पदार्थों की बढ़ोतरी को रोकना चाहिये और दूसरी बात यह कि केवल जल और वायु की शुद्धि रखने पर ही विशेष ध्यान दिया जावे। भारतीय स्वास्थ्य वैज्ञानिकों के सिद्धान्त की पुष्टि युनानी वैज्ञानिकों ने भी उन्हीं भारतीयों के शब्दों में ज्यूं को त्यूं की है उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा स्वास्थ्य रक्षार्थ जल वायु की शुद्धि रखने के सर्व विख्यात सिद्धान्त की ज्यूं का त्यूं पुष्टि की है। केवल आधुनिक योरोपियन वैज्ञानिकों ने जैसा कि इस पुस्तक के प्रथम और द्वितीय भागों में सविस्तार वर्णन किया जा चुका है, इन दूषित विषों की उत्पत्ति और चालकता का मूल कारण केवल छोटे २ विभिन्न आकृति और भांति के कीटाणु' मक्खी मच्छर आदि को आज से केवल सौ वर्ष पहिले बताकर आधुनिक नए आविष्कारों या विषों के कारण होने के निर्मूल सिद्धांत को प्रचलित करने

में इतना उतावलापन कर डाला कि इस बात को केवल समय ही बतलायगा कि इस सिद्धांत की सत्यता प्रमाणित करने में इनको आगे चल कर क्या २ कठिनाइयां पड़ेंगी। प्राचीन भारतीयों को प्राकृतिक नियमों का भली प्रकार से ज्ञान था। इसी कारण उन्होंने किसी भी पुस्तक में किसी भी जगह इन कीटाणुओं को विषों का कारण नहीं बताया इसके प्रतिकूल इन कीटाणुओं को विषों का कार्य (विष का नाश करने वाले) कई पुस्तकों में बताया गया है। इस आधुनिक कीटाणु सिद्धांतकी पुष्टि में किसी अन्य विदेशी वैज्ञानिक का भी कोई लेख देखने में नहीं आता।

हमारे प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने जल और वायु की शुद्धि के साधन घरों के भीतर खुले चौकों में प्रज्वलित अग्नि को अंगीठियों या अलावों में नित्य प्रति जलाना और फिर समयानुकूल उसमें कुछ रोगनाशक पौष्टिक, और सुगन्धित पदार्थों को जलाकर उनका धूम्र देना बताया है जो वायु शुद्ध करने के बहुत सरल प्रयोग है और लेखक का दावा है कि यह प्रयोग बहुत सरल और प्रभाव-शाली है जिससे बहुत थोड़े से परिश्रम और व्यय से घरों और मोहल्लों की वायु शुद्ध की जा सकती है। इनमें घरों की थोड़ें २ परिमाण की वायु को व्यक्तिगत शुद्ध करने के अतिरिक्त मोहल्लों और गलियों के चौराहों पर बड़े २ ढेरों में प्रज्वलित अग्नि के ढेर जला कर दूर २ की वायु को एक ही प्रयोग द्वारा सामूहिक रूप से शुद्ध करने की प्रथा भी प्रचलित थी और इस प्रथा का नाम 'होली' रखा गया। जो बहुत से अन्य वैज्ञानिक स्वास्थ्य संबंधी प्रयोगों की भांति हिंदुओं के धर्म में सम्मिलित होकर पुजने लगी और उसके मुख्य उद्देश्य के ज्ञान का लोप हो गया। (पूर्ण 'होली' के विवरण को प्रथम भाग के पृष्ट १६-१८ पर देखो)

इसके प्रतिकूल आधुनिक विदेशी वैज्ञानिकों ने अपने बताये हुए दोषों और विषों की उत्पत्ति का मूल कारण कीटाणुओं को माना और रोग निवर्ति की मुख्य चिकित्सा इन कीटाणुओं का जिस प्रकार से भी हो सके विध्वंश करना ही बता डाला और विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों द्वारा दुनिया को यह भी बतलाया गया कि यह कीटाणु दल ही मनुष्यों के भयानक शत्रु हैं।

जहां भी मिले जैसे भी मिले इनका सर्वनाश कर दिया जावे। और यह सर्व नष्टता कर देना ही उस विष की उत्पत्ति को निर्मूल कर देगी और रोगों को स्वयं खो देगी। हम भारतीय वैज्ञानिकों का सिद्धांत इनकी इस नवीन खोज सौ प्रतिशत प्रतिकूल है और रहेगा।

बड़ी २ विदेशी कम्पनियों ने इन कीटाणु और मक्खी, मच्छरों को मनुष्य मात्र के भयंकर शत्रु की उपाधि देकर धन उपार्जन किया और अब भी कर रहे हैं। इनको इन कीटाणुओं को मनुष्यों का भयंकर शत्रु घोषित करते समय यह इस बात का भी ध्यान न रहा कि थोड़े ही समय के पश्चात जब लोग गृहमल शोधक (सैप्टिक टैंक्स) बनायेंगे तो फिर इन कीटाणुओं को मनुष्य के भयंकर शत्रु की उपाधि, को मनुष्यों के परम मित्र की उपाधि से बदलना पड़ जायगा। जब उनकी उत्पत्ति मल शोधन के लिये कृत्रिम साधनों से करनी पड़ेगी। क्या यहां पर यह सरल प्रश्न उन वैज्ञानिकों से नहीं किया जा सकता कि इन सैप्टिक टैंकों में बैक्टीरिया की उत्पत्ति कराकर मूल विनाश करवाने के साधनों से भी क्या उनको, अभी तक यह भ्रम रह जाता है कि कीटाणु विषोत्पत्ति करते हैं और विष निर्माण नहीं करते। लेखक ने भारत में सर्व प्रथम अपने कीटाणुओं के विष की उत्पत्ति का कारण न होने का और इनके प्रतिकूल एवं विषों का कार्य (नाश करने वाले) होने का सिद्धान्त (इस पुस्तक के तीनभागों में गत दो वर्षों में जनता के हितार्थ प्रकाशित करके स्थापन करने का साहस किया है और यहां पर केवल प्रथम भागके पृष्ठ ४६ ४८ पर और द्वितीय भागके पृष्ट ७ पर किये हुए दावेको फिर दुहरा दिया जाता है कि उदाहरणार्थ केवल घरेलू मक्खीके बारे में जो भी आधुनिक वैज्ञानिक चाहें लेखक को प्रमाणित करके दिखावें कि मक्खी मनुष्य का शत्रु है मित्र नहीं। यदि मक्खी को मनुष्य का शत्रु प्रमाणित कर दिया जावेगा तो लेखक अन्य छोटे बड़े सब कीटाणुओं को भी उसी प्रकार से मनुष्य का शत्रु मान लेने को तय्यार हैं। हम इस विषय में अधिक टीका टिप्पणी न करेंगे केवल जनता और भारतीय वैज्ञानिक स्वयं इस बात का निश्चय करके सत्य और असत्य का शीघ्र ही निर्णय कर लेंगे। यहां पर एक ही बात और बतला कर इसके उदाहरण

को समाप्त करते हैं।

यदि डाक्टर काहन, डाक्टर डार्विन और डाक्टर कोश जिन्होंने सन् १८४९ और सन् १८७५ में यह कीटाणु सिद्धान्त (कीटाणुओं का विषोत्पत्ति का कारण होना) को प्रचलित किया है अपने लेखों में इन घोषित किये हुए शत्रुओं से बचने के भी उपाय साथ साथ बता देते तो बहुत से वैज्ञानिक अभी सौ दो सौ वर्ष और भी इस सिद्धान्त में फँसे रहने और कोई शङ्का न करते। उन डाक्टरों ने ज्योंही इन को इस बात का भ्रम (गलत या सही) हुआ कि विषों की उत्पत्ति का मनुष्य शरीर में मूल कारण यह कीटाणु हैं उन विषों या रोगों की निवर्ति करने में तुरन्त ही उनके विध्वंश कर देने की विधि बता डाली और एक प्रकार से यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि शत्रु जब मिल जाता है तो उससे मुक्ति केवल उसके नष्ट ही करने से होती है अन्यथा नहीं। इस उतावलेपन की बताई हुई विधि से सत्यता के खोजक वैज्ञानिकों को बहुत सी शङ्कायें उत्पन्न हो जाती हैं कि इन डाक्टर महोदयों का सूक्ष्म दर्शक शीशे को हाथ में लेकर रक्त बिंदु परीक्षा करते समय उस विष के उत्पन्न करने वाले शत्रु की तलाश ही रही हो होगी और यह प्राकृतिक आरोग्य विभाग की फौज के सिपाही वहां पर अपना विष विनाश कार्य करते मिल ही गये होंगे। उस पर डाक्टर महोदयों ने बड़े उतावलेपन से घोषित कर डाला कि जिन शत्रुओं की खोज थी वह मिल गये अब उनको नष्ट कर डाला जावे तो विषोत्पत्ति स्वयं रुक जायेगी। सबसे अधिक आश्चर्य यह है कि इस कपोल कल्पित गाथा को पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने तुरन्त मान भी लिया।

उस समय न्याय की शैली का भी उलंघन कर डाला गया और किंचित मात्र भी यह नहीं सोचा गया कि दोषी क्षेत्र में दोनों प्रकार की वस्तुएँ हो सकती हैं एक दोष पृथक और दूसरी दोष नाशक तो इन दोनों में से कीटाणु वहां क्या कार्य कर रहे थे दोष वृद्धता या दोष निवर्ति दूसरी यह बात कि इनके वहां से हटाने की कोई अन्य विधि नहीं सोची गई। केवल इनको एक बार नष्ट कर डालने से ही विष निवर्ति कार्य की पूर्ति समझ ली गई।

(१३) धूम्र विज्ञान—हवन में प्रज्वलित अग्नि से अनेक प्रकार के पदार्थ जला कर धूम्र को घरों में देने की प्रथा :—यह प्रथा भारत वर्ष में हजारों वर्षों से बराबर चली आ रही है और विभिन्न मतों के मनुष्य विभिन्न प्रकार की सामग्रियों से हवन करते हैं। इस प्रयोग में बहुत सी विषनाशक औषधियें बहुत से पौष्टिक और सुगंधित पदार्थों के साथ मिला कर अग्नि में जलाकर वहाँ की वायु में एक विशेष विषनाशक धूम्र उत्पन्न कर लिया जाता है।

यह विषनाशक धूम्र मनुष्यों के स्वास द्वारा फेफड़ों में जाकर रक्त में औषधियों का संचार करके मनुष्यों को आरोग्य बना देता है। इस धूम्र से घरों की वायु का विष भी नष्ट हो जाता है। पृथ्वी, जल, वायु, तीनों में से अति सूक्ष्म वायु का ही स्वच्छ करना परमावश्यक समझा गया और इस कारण धूम्र का इस वायु को शुद्ध और दोषरहित करने में प्रयोग किया गया।

(१४) घरों के खुले आगनों में प्रज्वलित अग्नि के ढेरों से वायु की शुद्धि—मकानों की दूषित और विषाक्त वायु को प्रज्वलित अग्नि पास के खुले चौक में जला कर स्वच्छ कर देना—यह एक विशेष खोज है जिसको लेखक ने अपने अनेक वर्षों के अन्वेषणों से खोजा है। हवन करने की क्रिया में अग्नि में केवल विभिन्न पदार्थों को जलाकर उससे धूम्र उत्पन्न करना ही नहीं है। यह धूम्र का उपयोग जिसका ऊपर के तेरहवें उदाहरण में वर्णन किया जा चुका है वह तो अग्निका एक साधारण परिशिष्ट उपयोग है। प्रज्वलित अग्नि का वास्तविक उपयोग वायु शुद्ध करने की क्रिया में एक और महत्व शील क्रिया है जो केवल स्वयं प्रज्वलित अग्नि को मकानों के पास रखने ही से उत्पन्न हो जाती है इस प्रज्वलित अग्नि के केवल थोड़ी देर खुले चौक या मैदानों में रखने से ही पास के छतदार मकानों के भीतर की वायु स्वयं खिच कर बाहर आ जाता है और इस अग्नि की अगीठी या ढेर के ऊपर एक कृत्रिम वायु शून्यता के स्तम्भ (चिमनी) द्वारा जो अगीठी के ऊपर वायु मण्डल में स्वयं उत्पन्न हो जाता है ऊपर वायु मण्डल में निकल जाती है और ऊपर के वायुमण्डल की स्वच्छ वायु मकान के अन्दर चली जाती है। यह अग्नि का वास्तविक

प्रयोग है जिसका हमारे पूर्वजों को पूर्ण ज्ञान था और इसी कारण से प्रज्व लित अग्नि का प्रयोग हवन आदि के करने में किया गया और किया जाता है। यह वायु शोधक अग्नि का प्रयोग बड़ा महत्वशाल और परमोपयोगी है। केवल आध घण्टे जलती हुई अग्नि का ढेर या अगीठी सुबह और सायंकाल घरों के खुले चौक में रख देने से भी बन्द मकानों की वायु स्वयं उलट पलट कर शुद्ध हो जाती है। उस महत्वशील प्रयोग का पता अभी तक आधुनिक वैज्ञानिकों को तो मिला है ही नहीं। आश्चर्य और साथ २ खेद से कहना पड़ता है कि हमारे हवन प्रथा के अनुयायी वैदिक धर्मी मित्रों या होली के जलाने को धर्म मानने वाले सनातन धर्मी मित्रों को भी सम्भवतः (लेखक के विचार से) नहीं है। लेखक ने अग्नि की इस महत्वशाल प्रयोग का वर्णन बड़े विस्तृत रूप में इस पुस्तक के प्रथम और द्वितीय भाग में कर दिया है। लेखक का दावा है कि इस अग्नि के प्रयोग से जितनी शीघ्र, जितनी पूर्ण रूप से और जितनी कम व्यय से घरों का विषाक्त वायु शुद्ध की जा सकती है उतना किसी भी दूसरे साधनों से नहीं की जा सकती। अब देखना है कि यदि यह खोज १०० प्रतिशत सत्य निकलती है और यदि इस खोज की सत्यता को आधुनिक वैज्ञानिकों को सत्य प्रमाणित कर दिया जाता है तो क्या फिर भी हमको यह बात सुननी पड़ेगी कि हम लोग आरोग्य शास्त्र में विज्ञान शून्य या विज्ञान से बहुत दूर हैं और यह कि प्राचीन भारतवासी आरोग्य विज्ञान भली-भाँति नहीं जानते थे।

(१४) शाक सब्जियों पर विभिन्न मसालोंके वैज्ञानिक प्रभाव

विभिन्न खाद्य पदार्थों में दालों सब्जियों को एक निश्चित मसाले से छौंक कर तैयार किया जाता है जैसे आलू अदरक जीरे में छौंके जाते हैं। कहीं और काशीफल मेथी से अरबी अजवायन से, उड़द की दाल हींग जीरे से, करेला सौंफ से। खोये के पेड़े और बूँदी के लड्डुओं में इलायची के बीजों का मिलाया जाना भी इसी नियम पर आधारित है जो मसाला या औषधि जिस सब्जी या दाल आदि का विघ्नघ्न (अधिक खा लेने के दोष को ठीक कर देने वाला) होता है। उसी मसाले को सावधानीके साथ उस सब्जी के

बनाते समय ही उसमें मिला दिया जाता है यह है एक भारतीय रासायनिक और आरोग्य विज्ञान की क्रिया का एक उदाहरण।

(१६) भोजनालयों की पर्याप्त स्वच्छता—खाना बनाने के स्थानों को साफ़ और स्वच्छ रखने की प्रथा और छूत की प्रथा। यह प्रथायें केवल स्वास्थ्य विज्ञान के ऊपर ही आधारित की गई थीं। हम मानते हैं कि कुछ भागों में लोगों ने छूत की प्रथा का दुरुपयोग किया जिससे यह आधुनिक काल में जिसको 'वैज्ञानिक काल' पुकारा जाता है विदेशियों की दृष्टि में एक हास्य विषय बन गया। यह केवल आकस्मिक घटना है। मूल आधार इस प्रथा का स्वच्छता ही है। स्नानादि द्वारा शरीर को स्वच्छ रखने के लिये भारतवर्ष के शास्त्रकारों ने नित्य प्रति स्नान आदि करने का आदेश शौचादि पंच नियमों द्वारा दिया है। शौचादि करके शरीर के सब अवयवों की स्वच्छता रखने पर बहुत सी पुस्तकें हमारे यहां मौजूद हैं।

(१७) वायु के सम्पर्क से जल और अग्नि पर अद्भुत प्रभाव·—

जल, अग्नि, वायु का मनुष्यों के स्वास्थ्य और क्रियाओं पर व्यक्तिगत और समकालीन प्रभावः—हमारे यहां वैशेषिक और सांख्य दर्शन शास्त्रों में बहुत स्पष्ट शब्दों में पंच तत्वों के विधान में जल, अग्नि, वायु के लक्षणों आदि के विवरण में इन तीनों तत्वों के विलक्षण और विचित्र प्रभावों का वर्णन किया गया है उसमें से कुछ उदाहरणार्थ यहां देते हैं जैसा हम इस पुस्तक के प्रथम और द्वितीय भागों में विस्तृत रूप में वर्णन कर आये हैं। अग्नि का गुण उष्णता की उत्पत्ति करना, प्रसारकता करना, पृथ्वी, जल, वायु को गर्म और हल्की और फैलने वाली करके ऊपर की ओर उठाना है। जल का गुण शीतता की उत्पत्ति करना, गलाना, संकुचित करना नीचे ले जाना और वायु का गुण क्रिया हीन भूतल पर स्वछंद रूप से बहना, है। अग्नि के सम्पर्क में आने पर दाह क्रिया और उष्णता का तीव्र बना देना, और जल के सम्पर्क में आने पर शीतता को तीव्र कर देना आदि है।

अग्नि का मुख्य गुण उष्णता की उत्पत्ति करना है और जल का मुख्य गुण शीतता की उत्पत्ति करना है वायु का सम्पर्क जब र और

जहां २ पर अग्नि से स्वयं हो जाता है या मनुष्य कृत साधनों द्वारा करा दिया जाता है तो अग्नि की साधारण मौजूदा उष्णता में कई गुणी ऊँची मात्रा में तीव्रता उत्पन्न हो जाती है जैसे फूकनी, धौंकनी या पंखे से अग्नि की अंगीठी या भट्टी में वायु संचार करके अग्नि में तीव्रता उत्पन्न कर दी जाती है। जैसे स्वर्ण कार केवल एक चिराग की लौ पर एक छोटी सी टेढ़ी मुँह वाली नलकी से फूके मारकर उस चिराग की लौ की गर्मी को इतनी ऊँची बना लेते हैं कि उससे सोने में टांका आदि लगाया जा सके।

इसी प्रकार वायु का संपर्क जब २ और जहां २ जल से स्वयं हो जाता है या कृत्रिम साधनों द्वारा करा दिया जाता है तो जल की साधारण मौजूदा शीतता में कई गुणी ऊँची तीव्रता उत्पन्न हो जाती है।

जैसे मिट्टी से बर्तनों में जल पीतल तांबे आदि के बर्तनों से शीघ्र और अधिक ठंढा हो जाता है। कपड़े के थैले आदि में गर्म जल तुरंत ठंढा हो जाता है फव्वारों से गिर कर गर्म जल ठंढा हो जाता है। गर्म दूध को हलवाई बहुत ऊँचा उछाल कर एक ही मिनट में ठंढा कर लेता है। जब कहीं बच्चों के चोट लग जाती है तो उनकी माताएँ तुरन्त फूँक मारने लगती हैं। पहले उसी मुँह की वायु से फूँक मार कर अग्नि को प्रज्वलित करके चाय गर्म की जाती है और फिर उसी मुँह की वायु से फिर फूँक मार २ कर प्लेट में उस चाय को ठंढी की जाती है। भारतवर्ष की पुरानी कहावतों में वैज्ञानिक सिद्धांत कूट २ कर भरे हुए हैं। इस बात का बड़ी आवश्यकता है कि इन पुरानी कहावतों को भारतीय वैज्ञानिक महोदय बड़ी सावधानी से इकट्ठी कर लें और इनका निरीक्षण करके उनके वैज्ञानिक भावों का भारतीय जनता में प्रचार करें।

एक कहावत है कि चढ़े हुए बुखार में हवा न लगाओ इस कहावत का वैज्ञानिक रहस्य यह है कि चढ़े हुए बुखार में न जाने कब पसीना आ जावे और पसीने में हवा लगने से इतनी शीतता उत्पन्न हो सकती है कि नमूनिया हो जाने का भय है। दूसरी कहावत यह है कि भींगा वस्त्र शरीर से शीघ्र ही अलग कर देना चाहिये और चाहे उसी खुली हुई हवा में कितनी ही देर

तक कुवें या नदी पर स्नान करते रहो परन्तु इसके बाद भीगा, वस्त्र एक मिनिट भी शरीर पर मत रखो। भीगा चारपाई पर लेटना मना है। इन सभी क्रियाओं में भी शरीर की तीव्र शीतलता से बचने का तात्पर्य है। इसी सिद्धान्त पर खस की टट्टियां और पर्दे आदि मकानों के दरवाजों पर लगाकर भीतर की वायु ठण्डी कर ली जाती है।

उपरोक्त जल, अग्नि और वायु के प्राकृतिक प्रभावों की सत्यता पर ही लेखक ने अन्वेषणों द्वारा अपना निर्णय करके इस पुस्तक में इन शब्दों में घोषित किया है कि खाद्य पदार्थों में (पार्थिव वनस्पतिक पदार्थों में) जलवायु और अग्नि की समता (मध्यम उष्णता जो ५० और ९५० डिग्री फार्नेहाइट के मध्य में हो) के समकालीन सम्पर्क से ही उन खाद्य पदार्थों में सड़न और गलन की क्रिया का संचार होगा अन्यथा नहीं। और यह प्राकृतिक नियम की सत्यता हर समय और हर स्थान पर चाहे शरीर के अन्दर हो या बाहर हो एक सा लागू है। यदि इन तीनों में से (जल, वायु अग्नि) कोई सा एक तत्व किसी कृत्रिम साधनों द्वारा अलग कर दिया जाय तो उस खाद्य वस्तु में सौ प्रतिशत स्वास्थ्यता आ जायगी और वह खाद्य पदार्थ न गलेगा न सड़ेगा। इस बात को हम पुस्तक के प्रथम और द्वितीय भागों में भली भांति विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इस सिद्धान्त का यह रूप तो लेखक ने ही दिया है परन्तु इसका आधार प्राचीन भारत के दार्शनिक ग्रंथों में बतलाए हुए पदार्थों के विवरण ही है कोई नई आश्चर्यजनक बात नहीं।

इस मार्ग का रूप कैसा है, यह आश्चर्यजनक बात न बन गया हो, आधार प्राचीन भारतीय विज्ञान ही है। हमारे और आधुनिक वैज्ञानिकों में अन्तर यही रहा कि भारतीय वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों की सत्यता के आधार पर जिनका ज्ञान उनको हजारों वर्ष पहले ही हो चुका था लेकर चले हैं परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक विशेषतः विदेशिक वैज्ञानिक अपने अनुभवों पर ही पूर्णतः भरोसा रखते हुए चल रहे हैं।

(१८) भारतीय चिकित्सा विज्ञानमें औषधियोंके निहित कारणों का विश्लेषण —

भारतीय चिकित्सा वैज्ञानिकों ने यह बात निर्णय की थी जो कि सौ प्रतिशत सत्य है कि हर पार्थिव और जलीय पदार्थ जो औषधि के रूप में पेट में डालकर पचाया जाता है उसके पार्थिव भाग के औषधि प्रभाव के साथ २ उसका जलीय भाग अपना (शीतल) प्रभाव और अग्नि का भाग अपना (उष्णता) प्रभाव भी रक्त पर डालता है क्योंकि यही तीन तत्व औषधियों में रसायनिक प्रभाव उत्पन्न करने वाले होते हैं। वायु का रासायनिक प्रभाव स्वयं का कुछ नहीं होता केवल यांत्रिक प्रभाव ही शरीर पर पड़ता है। जल और अग्नि के साथ मिलकर अवश्य उन दोनों के प्रभावों को वायु न्यूनाधिक कर देती है। इस जल और अग्नि के अनाश्रित प्रभावों को हम दो पदार्थों के उदाहरण देकर समझा देते हैं। यदि आप एक लाल मिर्च खा लें तो उसका औषधि प्रभाव आपके रक्त पर जो कुछ भी पड़े आपको तुरन्त हिचकियाँ आने लग जायेंगी जिससे उसके अधिक अग्नि के प्रभाव का पड़ना प्रमाणित हो जाता है। इसी प्रकार यदि आप प्यास लगने पर दो छोटी इलायची खा लें तो उसका औषधि प्रभाव जो कुछ भी पड़े प्यास अवश्य थोड़ी देर को शान्त हो जायेगी जिससे अधिक जल के प्रभाव का पड़ना प्रमाणित हो जाता है। पाठक यह समझ कर भूल न बैठें कि लाल मिर्च में अग्नि के प्रमाणु और छोटी इलायची में जल के प्रमाणु अधिक होते हैं। यह अग्नि और जल के पदार्थों पर रसायनिक प्रभाव उन पदार्थों की उत्पत्ति के समय से ही पड़ जाते हैं। परमाणु तो इन पदार्थों में अग्नि और जल दोनों ही के होते हैं परन्तु उनकी मात्रा में प्रभाव की अपेक्षा का कोई अनुपात नहीं। इस कारण हमारे देश के चिकित्सक वैज्ञानिकों ने औषधियों के गुणों के लक्षणों में उनके तीनों प्रकार के प्रभाव सम्मिलित कर लिये और एक आश्चर्य जनक विलक्षणता का परिचय दिया। जल से जो लक्षण उत्पन्न होते हैं वह 'तर' और 'शुष्क' है (अधिक जल के प्रभाव से 'तर' और न्यून जल प्रभाव से 'शुष्क') इसके प्रतिकूल अग्नि से जो लक्षण उत्पन्न होते हैं वह 'उष्ण' (गरम) और 'ठंडे' होते हैं (अधिक अग्नि से उष्ण और न्यून अग्नि से ठंडे) यह जल और अग्नि के प्रभाव तो परिमित प्रभाव है मुख्य प्रभाव तो इसमें

औषधि के अंश का ही होता है जैसे पाचकता, रक्त शोधकता और विरेचकता इत्यादि। इन तिहरे गुणों के ज्ञात हो जाने पर चिकित्सा में यह महत्वता आ जाती है कि वैद्य इस बात का भली प्रकार निरीक्षण करके औषधि दन हैं कि कौन औषधि रोग नाशक होते हुए भी 'उष्ण-तर' है और कौन सी 'उष्ण-शुष्क', कौन सी औषधि 'सर्द तर' और कौन सी 'सर्द शुष्क' है। अब यदि किसी रोगी को विरेचक (दस्तावर) औषधि देनी है तो भारतीय चिकित्सक सोचते हैं कि चार औषधियों में (बादाम, गुलाब के फूल सनाय और बड़ी हरड़) में से कौन सी औषधि दी जावे वास्तव में चारों ही विरेचक औषधि है परन्तु इनके अग्नि जल के प्रभाव चारों के भिन्न २ हैं बादाम गर्म तर विरेचक है, गुलाब सर्द तर विरेचक है, सनाय गर्म-शुष्क विरेचक है और हरड़ सर्द शुष्क विरेचक है। इस तिहरे गुणों के निरीक्षण से लाभ यह होते है रोग जड़ से चला जाता है।

(१६) भारतीयों के स्वास्थ्य सम्बन्धी छोटे २ परन्तु बड़े महत्व शाली सिद्धान्त —

(1) ऊनके वस्त्र का शुद्ध होने और सूती वस्त्र का अशुद्ध होने का सिद्धात। यह बात तो स्वयं सिद्ध है आप जब चाहें घर में करके देख लें कि ऊन के कम्बल को आप दस आदमियों को ओढ़ने के लिये देते हैं परन्तु यह जैसा का तैसा ही रहता है जबकि सूती चादर में दो तीन आदमियों क ओढ़ने पर ही पसीने और मैल का दुर्गन्ध अनुभव होने लगती। वास्तविकता में कारण यह है कि सूती कपड़े के ततुओं में शोषणता होती है जिसके कारण उसमें गदगी प्रवेशित हो जाती है और ऊन के ततुओं में जिला होती है और यह जल अभेद्य होने के कारण गदगी को भीतर सूत के ततुओं के समान शोषित नहीं होने देती हैं। जो गदगी ऊपर लग जाती है वह वायु और धूप आदि के प्रभाव से नष्ट होती रहती है। यह ऊनी वस्त्र की शुद्धता वैज्ञानिक सिद्धांत पर निर्धारित है। सूती वस्त्र केवल धोने पर ही स्वच्छ होते हैं।

(11) गंदे और विषैले पदार्थों को छूकर हाथों को (साबुन या) मिट्टी से अवश्य धो लेने की आवश्कता। साबुन हमने कोष्ट में इस कारण लिख दिया

कि साबुन से भी स्वच्छता अवश्य हो जाती है परन्तु सर्व साधारण के लिये मिट्टी का प्रयोग होना स्वच्छता के लिये परमावश्यक है गन्दगी और विष के सूक्ष्म कण जो त्वचा के छिद्रों में घुसे रह जाते हैं एक ही बार मिट्टी या राख के जल के साथ मिला कर रगड़ देने से तुरन्त स्वच्छ हो जाते हैं। मिट्टी केवल स्वच्छ ही प्रयोग में लानी चाहिये। दूसरे मिट्टी स्वयं भी एक सीमित मात्रा में गन्दगी को अपने रासायनिक प्रभाव से नष्ट कर देती है। इस लिये मिट्टी हाथों की स्वच्छता के प्रयोग में यान्त्रिक और रासायनिक दोनों कार्य करती है।

(iii) जूठे बरतनों को मिट्टी या राख से माँजने से तुरन्त स्वच्छता और शुद्धि दोनों आ जाती है। इसका भी उद्देश्य वही है जो ऊपर हाथों क स्वच्छ करने के लिये बताया गया है।

(iv) भारत में मनुष्यों के सहभोजों में वृक्षों के पत्तों और मिट्टी के क कुल्हड़ों का प्रयोग। यह पत्तों और कुल्हड़ों के प्रयोग का सिद्धान्त इस कारण से आरोग्य शास्त्रानुकूल है कि एक ही बार प्रयोग में लाकर इनको फेंक दिया जाता है। इसका लाभ इस कारण मिल जाता है कि दोनों वस्तुएँ देश में सस्ती मिलती हैं। चीनी के प्लेटों और काच के बर्तनों में स्वच्छता तो पीतल आदि के बर्तनों से अवश्य ही अधिक रहती है परन्तु जहां कहीं इनको पर्याप्त साफ करने में कमी रह जाती है वहाँ हानि या अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। दूसरे चिकनाई बर्तनों से मिट्टी और राख से माजने से शीघ्र ही साफ हो जाती है और चीनी और काच के बर्तन मिट्टी आदि से साफ नहीं किये जा सकते।

(v) बच्चों की साधारण फुन्सियों में घी सफेदे, तेल सिंदूर, तेल मुर्दासंग की प्राचीन परख औषधियें। आज तो यह सबको विदित हो चुका है कि ये सब सीसे (Lead) के ही अंश हैं जो त्वचा के लिये परम उपयोगी हैं।

(vi) भारतीय चिकित्सा वैज्ञानिकों ने शरीर के भीतरी रोग उत्पत्ति के कारण केवल दो माने हैं एक तो मिथ्या आहार (खाना) और दूसरा मिथ्या विहार (प्रयोग कार्य) इसी प्रकार स्वास्थ्य वैज्ञानिकों ने घरों और

वस्तियों में रोगों के फैलने के दो कारण माने हैं एक वायु का विषाक्त हो जाना और दूसरे जल का विषाक्त हो जाना।

आयुर्वेद ने जो रोग उत्पत्ति के दो ही कारण माने हैं अथवा 'मिथ्या आहार विहार'। मिथ्या आहार में हर प्रकार के अयोग्य खानेके पदार्थों का प्रयोग आ जाता है जो स्वास्थ्यको हानिदायक है और मिथ्या विहार में सब प्रकार के (शारीरिक और मानसिक) कर्म आ जाते हैं जिनसे शरीर पर आघात पहुँचता है। मानसिक कर्मों से शरीर में रोग उत्पन्न होने के सिद्धांत को अभी तक आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिक कोई ध्यान नहीं देते परन्तु समय आ रहा है कि उनको यह भारतीय विज्ञान की सत्यता भी माननी होगी। यद्यपि चिकित्सा विज्ञान हमारे क्षेत्र से बाहर है परन्तु पाठकों के विचारार्थ हम यहां कुछ मानसिक कर्मों के प्रभावों का उल्लेख अपनी अनवेषनशाला की नोटबुकों से दिए देते हैं। क्रोध से न्यूरेस्थीनिया और अजीर्ण होता है। सोच और चिन्ता से आमाशय के फोड़े, अजीर्ण और मधुमेह आदि रोग होते हैं। ग्लानि से पागलपन और वीरान। भय से हृदय की धड़कन और कामिक विचारों से रक्त विष का होता है और इनाकी बीमारियाँ हो जाती हैं यह बातें केवल अपने अनुमान पर ही बताई जा रही हैं। चिकित्सक वैज्ञानिक महोदय इस पर अन्वेषण करके जनता को सावधान करें। जल और वायु के विषाक्त होने का विस्तृत वर्णन अगले प्रकरण में पेज न० १२ और १६ में देखिये।

(२१) दिशा सूचक यंत्र (क़ुतुबनुमा) इस यंत्र का ज्ञान भारतवासियों को हजारों वर्षों से है। इसके प्रमाण में हम 'मॉडर्न साइन्स' में दिए हुए एक लेख को उपस्थित करते हैं जिसमें स्पष्ट शब्दों में इस पुस्तक के सम्पादक ने माना है कि मकनातीस अथवा चुम्बक लोहे का प्रयोग दिशा सूचक यंत्र में पर्शियाई लोग योरोपवालोंसे हजारों वर्ष पहिले से जहाजों के चलाने में करते चले आए हैं। और यह कि चीनयों को चुम्बक का प्रयोग बहुत पहिले से आता था यहाँ पर हम भारत की ज्योतिष विद्या के प्राचीन ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धान्त' के प्रथम अध्याय के अट्ठाईसवें मंत्र का उल्लेख करते हैं जिससे यह भली प्रकार प्रमाणित हो जाता है कि दिशा

सूचक यंत्र की कोण नापने की क्रिया और दिग्दर्शक में प्रयोगमें आने वाली ३६० डिग्रियों और हर डिग्री में ६० मिनट और हर मिनट में ६० सेकन्ड के होने का ज्ञान सर्व प्रथम भारतवासियों को ही था।

विकलानां कला षष्ट्या तत्षष्ट्या भाग उच्यते।
तत् त्रिंशता भवेद्राशिर्भगणो द्वादशैवते ।

(सूर्य सिद्धांत १ अध्याय २८ मंत्र)

अर्थ—६० सेकन्डों (विकलाओं) का एक मिनट (कला) होता है।—६० मिनटों (कलाओं) की एक डिग्री (भाग) होती है। ३० डिग्री (भाग) की एक राशी होती है और १२ राशियों का एक चक्र (भगण) होता है।

दिशा सूचक यंत्र (कुतुबनुमा) में यही डिग्री मिनट और सेकन्ड कोण परिमाण के नाप करने के प्रयोग में आते हैं।

छोटे २ अनेक यन्त्र और पदार्थ—जिनके वैज्ञानिक निरीक्षण करने से इनमें कार्य करने वाले अनेक वैज्ञानिक सिद्धांतोंका पता चल जायगा और इनको देखकर यह मान ही लेना होगा कि लगभग सब ही में मैकेनिक्स (Mechanics) डाइने-मिक्स (Dynamics) हाइड्रो लिक्स (Hydraulics) हाइड्रो स्टेटिक्स (Hydrostatics) वायु विज्ञान (Pneumatics) इत्यादि वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग बड़ी विलक्षणता से भारतीय पूर्वजों ने इन सब निम्नलिखित यन्त्रों और पदार्थों में जनता के हितार्थ हजारों वर्ष पहिले से ही किया हुआ है।

(२२) ग्रामीण दो रस्सियों का बनाया हुआ 'गोफिया' जिसका विस्तृत विवरण पीछे कर चुके हैं। इसमें पत्थर के छोटे २ टुकड़े लगाकर चक्र देकर खेतीसे पशु पक्षी भगाये जाते हैं। इसमें 'गति विज्ञानकी चक्र शक्ति' (Dynamics Centrifugal Force) के सिद्धान्त पर आविष्कार हुआ है।

(२३) मकानों में प्रयोग में लाये जाने वाले 'चक्र'—यह पक्के

लोहे की चादर का एक प्रकार का दस या बारह इंच लम्बा वाला दो या तीन इंच चौड़ा बीच से खाली तलवार के समान धारदार चक्र होता है जिसको एक डंडे पर चढ़ा कर बड़ी वेग से घुमाया जाता था और फिर डंडा निकालकर इस 'चक्र' को शत्रु दल में फेंककर मारा जाता था और कार्य उपरोक्त गोफिये के ही सिद्धान्त पर होता है। अथवा डाइनमिक्स (Dynamics) की चक्र शक्ति पर

(२४) कुम्हारों के चाक—इनका एक बार डन्डे से बनी वेगतास चक्र दे देनेके उपरान्त बनी देर तक स्वयं घूमते रहने में डाइनमिक्स का मोमेन्टम (Dynamics Momentum) सिद्धान्त काम में लाया गया है।

(२५) कुओं से पानी उठाने वाली ढेंकली—इसमें मैकेनिक्स के लीवर (Mechanics Leve) का सिद्धांत कार्य में लाया गया है।

(२६) कैंची सरौते, सँड़ासी, गेंदाले तराजू चिमटे, उखूड इत्यादि—इनमें भी उपरोक्त लीवर के सिद्धान्त कार्य में लाये गये हैं।

(२७) बच्चों के खेल—लट्टू और चकई—इनमें रस्सी की लपट से चक्र की उत्पत्ति की गई है 'डाइनैमिक्स के एनर्जी और चक्रशक्ति' (Dynamics Energy And Centrifugal Force) के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। इसी सिद्धान्त पर चर्खा और कर्षदार खिलौनों की कमानियें बनाई गई हैं।

(२८) झूला—इसमें डाइनेमिक्स के पेन्डूलम' (Dynamics P ndulum) का सिद्धांत काम में लाया गया है। इस सिद्धांत पर ही इन्स्ट्रुमेंट यन्त्र बनाए गए जिनमें चाभी की शक्ति रुक रुक कर निकलती है और पैन्डूलम इन्स्ट्रुमेंट में झूले का सिद्धांत प्रयोग में लाया गया और पहिया और बाल कमानी प्रकार के इन्स्ट्रुमेन्ट में चकई' का सिद्धांत प्रयोग में लाया गया है।

(२९) कठपुतली का तमाशा—इसमें मैकेनिक्स (Mecl an cs) का सिद्धांत प्रयोग में लाया गया है—इसी सिद्धान्त पर ढेंकली प्रकार के

तारों द्वारा खिंचने वाली और छापने की मशीनें बनाई गई और रेलवेमें सिगनल और प्लाइटम और क्रासिंग इत्यादि भी इसी सिद्धांत पर बनाये गये।

(३०) पत्थर की आटा पीसने की चक्की— यह अपनी बनावट में आज तक जैसी की तैसी मौजूद चली आ रही है। इस यन्त्र का निर्माण पूर्णता से मशीन' (Machine) के सिद्धान्तों पर किया हुआ है। यह भारतीयों के सर्व साधारण घरों में नित्य प्रतिदिन प्रयोग में आने वाला परमावश्यक यन्त्र है क्योंकि यही अन्न के साबुत दानों को आटे में परिणत करने का साधन है। खाने के लिये आटा तो घरों में रोज ही चाहिये और दूसरे आटा ऐसी वस्तु नहीं जिसको महीने दो महीने तक पिसवा कर रख दिया जावे। भारतवासी जो प्राचीन काल से ही स्वस्थता और स्वच्छता दोनों ही के अनुयाई रहते चले आये हैं। उन्होंने वैज्ञानिक सिद्धान्तों को भली प्रकार से अध्ययन करके इस छोटे से परमावश्यक यन्त्र का निर्माण किया और इसमें ऊपर घूमने वाला गोल पत्थर इतना हल्का और समतोल केन्द्र की कीलों पर केवल थोड़ी सी ढकेल से ही घूमने वाला लगाया जिससे आटा पीसने में अधिक परिश्रम न करना पड़े—इस यन्त्र के निर्माता ने यंत्र के निर्माण करने में इस बात का भी ध्यान रखा कि भारतीयों के सर्व साधारण घरों में यह कार्य घरों की स्त्रियाँ स्वयं अपने हाथों से करती हैं क्योंकि भारतीय संस्कृति में भोजन बनाने का कार्य जीविका उपार्जन कार्य से दूसरी श्रेणी का माना गया है। इसी कारण भारतीय स्त्रियों ने इस कार्य को अपने ही हाथों में रखा। यही कारण है कि इस यन्त्र को इतना हलका चलने वाला और सुविधा जनक बनाया गया। जब दलिया या दालें आदि बनाने की आवश्यकता घरों में होती है तो केवल एक कपड़े की इद्वी (Washer) चक्की की कीला के चारों ओर डाल दी जाती है जिससे ऊपर का पत्थर और केन्द्र पर समतोल होकर दालें या दलिया बनाने के कार्य सुलभता से पूर्ण करता है।

इस यन्त्र के ही सिद्धान्त पर आधुनिक काल में मशीनों की गोल घूमने वाली पुर्जियाँ 'क्रैन्क' (Crank) आदि बनाई। इनसे ही पानी की चक्कियाँ और स्टीम और विद्युत से चलने वाली चक्कियाँ बनाई गई।

(३१) तमाकू पीने का हुक्का, रंग छोड़ने की पिचकारी—इनमें 'हाइड्रोलिक-पम्प' (Hydraulics Pump) के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। इन दोनों यन्त्रों में पिचकारी भारतवर्ष का हजारों वर्ष का प्राचीन यन्त्र है परन्तु हुक्का चार या पाँच सौ वर्षों से निर्माण किया हुआ है—इनके ही सिद्धान्तों पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने कई प्रकार के अधिक उपयोगी पानी के पम्प, नल दोनों प्रकार के जल खींचने वाले और फेंकने वाले पम्प (इन दोनों यन्त्रों में दोनों क्रियाएँ मौजूद हैं) बनाये।

(३२) बोझ उठाने वाली बँहगी—यह छोटा सा यन्त्र बाँस की खपची के दोनों सिरों में मूँजे बाँधने से बनता है। इसका निर्माण 'मैकेनिक्स लीवर' (Mechanics Lever) और 'डाइनैमिक्स-एनर्जी (Dynamics energy) के विज्ञानिक सिद्धांतों पर किया गया है। प्राचीन भारत का बड़ा उपयोगी यन्त्र है। इसमें भारी बोझ उठाकर एक मनुष्य 'लचक' की सहायता से अपनी व्यक्तिगत शक्ति से अधिक बोझ दूरी पर ले जा सकता है। इस यन्त्र में आज तक किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ी। हमारे ग्रामों का बड़ा उपयोगी साधन है। नित्य प्रति काम में लाया जाता है। इसी 'लचक' के सिद्धान्त को इस प्राचीन भारतीय यंत्र से लेकर आधुनिक काल में गाड़ी के पहियों में स्प्रिङ्ग लगाये गये और सूफे सैटों और मोटरों की सीटों में स्प्रिंग लगाये गये।

(३३) कमान, गुलेल, धनुष, रुई धीनने की धुनकियें—यह यन्त्र बाँस आदि लचकदार पदार्थों से बनाये जाते हैं। यह इस देश के प्राचीन यन्त्र हैं जिनका उपयोग जनता नित्य प्रतिदिन करती है। यह 'डाइनैमिक्स के एनर्जी (Dynamics Energy) के सिद्धान्त पर बनाई गई हैं और शक्ति सचार करके एक बार तीर या गोली को फेंकने में प्रयोग की जाती है—इस शक्ति को यान्त्रिक शास्त्रों में सचारित करके इकट्ठा कर लिया जाता है परन्तु अग्नि शास्त्रों में यह फेंकने वाली शक्ति तुरन्त बारूद आदि रासायनिक पदार्थों को अग्नि के सम्पर्क में लाकर उत्पन्न किया जाता है इसी सिद्धान्त पर आधुनिक काल में हवाई बंदूकें, रबर की गुलेलें आदि बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ बनाई गई।

(२४) लकड़ी को खराद पत्थर की सान, लकड़ी में छेद करने वाले बर्मे—ये तीनों यन्त्र रस्सी चमड़े के पट्टों की गोलाकार बदलती बदलती गति से चलाये जाते हैं इनमें 'मशीन' (Machine) के सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया है। इनमें चर्खे के तकले और माल के सिद्धान्त का भी थोड़े भिन्न रूप में प्रयोग हुआ है। गोल धुरे के चारों ओर रस्सी को तीन चार चक्करों में लपेटा गया है और उस रस्सी को फिर खींचा जाता है और गोल धुरे को चक्रित करके खराद सान और वर्मों का घुमाया जाता है—इनके ही सिद्धान्तों पर आधुनिक काल में चाबीदार घड़ियाँ और चाबीदार खिलौने बनाये गये। उन्हीं के सिद्धान्तों पर लोहे की खरादें, लोहे के बर्मे, पंचिंग और ड्रीलिंग मशीनें लकड़ी काटने वाले गोल आरे इत्यादि बनाए गए।

(२५) चूना पीसने की बैल चक्की तेल निकालने के बैल कोल्हू रस निकालने के कोल्हू—चूना चक्कियों में एक पक्की नाली गोल वृत्ताकार बनाई जाती है और उसके बीच में एक भारी पत्थर का बेलन बीच में बल्ली डालकर बैल से खिचवा कर चलाया जाता है और इस बेलन से चूना पीसा जाता है। तेल और रस निकालने के कोल्हू बैल शक्ति से बल्ली द्वारा चलाये जाते हैं। तेल काष्ठ और पत्थर की कुंडी में पेड़ा जाता है और रस लोहे के तीन बेलनों द्वारा पेड़ा जाता है। तीनों यन्त्र प्राचीन भारत के उच्च वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर निर्माण किए गए हैं और आज तक अपनी बनावट और आकृति को लिए चले आ रहे हैं। परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। एक बात याद रखनी चाहिये किसी यन्त्र को लोहे का बना देना या किसी यन्त्र को स्टीम एंजिन से चला देना यह परिवर्तन या संशोधन नहीं कहलाता यह सर्वदा हुआ ही करते हैं। ज्यों २ समय निकलता है त्यों २ यह उन्नतियें स्वभावसे हुआ ही करती हैं। इसी प्रकार से आधुनिक काल में भी इन्हीं प्राचीन यन्त्रों के सिद्धान्तों की ही दृष्टि कोण से अनेक प्रकारके लहे आदि धातोंके स्टीम और विद्युत आदि शक्तियोंसे चलाए जाने वाले मर्टर मिल (Mortermill) तेलमिल (Oilmill) और केन क्रशर (Canecrusher) बनाए गए।

(२६) सूत को सुलझाने वाले ब्रुश—यह भारत के हाथों में कपड़ा बुनने वालों के पास सूत के तानों को सुलझाने के हितार्थ होते हैं। लगभग दो फिट लंबा, दस इंच चौड़ा और पन्द्रह इंच ऊँचा हलके पक्के काष्ठ का बना हुआ उपकरण होता है जिसमें एक ओर बाल घने हुए होते हैं। इसको सूत के ताने में पाँच चार बार मार देने से सूत उसी प्रकार सुलझ जाता है जैसे स्त्रियों के उलझे हुए बाल ब्रुश मार देने से सुलझ जाते हैं—यह ब्रुश प्राचीन भारत में वैज्ञानिक विशेष सूत्र सबन्धी सिद्धान्तों से बनाए गए। अब आधुनिक काल म इसी नमूने को आधार बनाकर सैकड़ों प्रकार के ब्रुश बनाये गये और इस विशेष कला का विदेशियों ने खूब अध्यन करके सूत, ऊन वाले और कपड़े इत्यादि साफ करने के ब्रुश अलग २ बना लिये हैं जिनसे प्रत्येक कार्यों में बड़ी सुविधा मिल जाती है।

(२७) लोहा, पीतल, कांसा इत्यादि ढालने की कुठालिएँ और अन्य साधन—यह कुठालिएँ लोहा गलाने के लिये तो बड़े २ लोहे क गमलों में भीतर विशेष प्रकार की मिट्टी का लपन करके बनाई जाती थी और पीतल आदि नरम धातुओं के गलाने के हेतु केवल विशेष प्रकार की मिट्टी से ही बना ली जाती थी। पीतल, ताँबा, जस्ता आदि गलाने क तो साधन अपनी प्राचीन ढंग और गति से अब तक ज्यों के त्यों विभिन्न स्थानों पर चले आ रहे हैं। परन्तु लोहा गलाने और बनाने के साधन जो इस देश में केवल सवा सौ वर्ष पहिले तक बहुत सी जगह मौजूद थे सब लोप हो गये। यहाँ पर प्राचीन काल से यह लोहा और इस्पात (Steel) बनाने के साधन बराबर कार्य करते चले आ रहे थे यद्यपि लोहे और इस्पात के बड़े २ कारखाने नहीं थे परन्तु जो थे उनमें बहुत उच्च श्रेणी का इस्पात (Steel) भारतवासी अपनी आवश्यकताओं के लिए बड़ी सुविधा से बना लिया करते थे। और आधुनिक काल के समान विदेशियों के साधनों पर आश्रित न थे। इस देश में जब हम लोग अपना इस्पात (लोहसार Steel) अपने हजारों वर्ष की जानी हुई, अनेक विधियों से छोटे २ भट्टों तक में स्वतन्त्रता पूर्वक बनाते थे तो विदेशी जिनके यहाँ लोहे और कोयले की अधिक

खानें भी है वह भी इस कला में बहुत पीछे थे। हमारे देश में तलवारें भाले, बन्दूकें, तोपें, उस्तरे, चाकू, कुल्हाड़ी, फड़वे, गैंडालें इत्यादि आवश्यक वस्तुएँ सब इस्पात की बनाई जाती थी। इसके बहुत से प्रमाण मौजूद हैं। आधुनिक काल की इस्पात बनाने के बैसीमर, साइमँन थोमस आदि की विधिएँ तो जब तक सोची भी नहीं गई थीं। सबसे प्रथम सन् १८५६ में बैसीमर विधि का आविष्कार आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने किया उसके पश्चात साइमन विधि का और उसके पश्चात थौमस विधि और विद्युत फरनैस विधि का आविष्कार किये गये। कुछ भी उन्नति इस्पात के बनाने में आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने आज अपने हितार्थ क्यों न की हो भारतवर्ष में से यह लोहा औरइस्पात बनाने की घरेलू कला लोप हो चुकी है और इसकी पुनरावृत्ति प.आवश्यक है। आज यह कर्ला देगचून (Castiron) से इस्पात बनानेकी पूर्णता लुप्त है। और हम देगचून को प्रयोग में लाने के अतिरिक्त कोई लोहे की वस्तु देशी प्रयोगों से नहीं बना सकते है। भारत देश की प्राचीन लोहे की कला का प्रमाण एक यहा देते हैं कि दिल्ली में पृथ्वीराज की कीली जाकर देखिये और फिर विचार कीजिए कि दो हजार वर्ष पहिले इस देश में इतनी २ बड़ी वस्तु ढाल ली जाया करती थी और आज इस आधुनिक वैज्ञानिक काल में एक उस्तरे तक के बनाने के लिये या तो शैफ फील्ड से स्टील मगानी पड़ेगी और या बना बनाया उस्तरा। यदि इस कीली के सबध में कुछ लोगों को यह शङ्का हो कि बाहर वाले देशों से यहाँ न ले आई गई हो तो यह शङ्का निर्मूल है क्योंकि उस समय में तो अन्य देशों की परस्थिति हमारी आज की परस्थिति से भी निर्बल थी यदि आज की यह घटना हुई होती तो माना भी जा सकता था। ढालने के अतिरिक्त इस्पाती औजारों और शस्त्रों पर पानी देने की कला भारत में हजारों वर्षों से चली आ रही है। और यद्यपि लोहे की कला के लोपता के उपरान्त यह भी बहुत मात्रा में भूली जा चुकी है परन्तु आज भी हमारे ग्रामों में पुराने लोहार इस कला में दक्ष हैं। शिक्षित नव युवकों को चाहिये कि शीघ्र ही इसको इनसे सीख ले। अनेक प्रकार के जलीय विलयनों, तेल, जानवरों के मूत्र वृक्षों के रसों का इस्पात के

औजारों की धारों पर आब (पानी) देने में प्रयोग किया जाता था। इस्पात और लोहसार (Steel) को अग्नि में तप्त करने पर केवल उनके रंगों को देखकर उष्णता का तापक्रम जान लिया जाता था। लोहे के गलाने में उच्च १५३५ सैन्टीग्रेड का तापक्रम अग्नि की भट्टी में केवल धौकनी और पखों द्वारा ही दे दिया जाता था।

(२८) लोहे, पीतल आदि धातुओं को गलाने के हेतु अग्नि में वायु सचार करने वाले यन्त्र—पखे, धौकनियें, सोना गलाने को सोनारों की फूकनी—एक तो लोहे के पखे जो एक बड़े पहिये पर चमड़े की माल डालकर हाथ से चलाये जाते हैं—यह 'मैकेनिक्स-मैशिन' (Mechanics Machine) सिद्धान्त पर बनाये हुए हैं और प्राचीन काल से चले आ रहे हैं—

धौंकनी चमड़े की बनाई जाती है—यह 'न्यूमेटिक्स' (Pneumatis) के सिद्धान्त पर प्राचीन आकृति में ही आजतक चली आ रही है।

फूकनी —यह पीतल की साधारण नली होती है जिसमें मुँह लगाकर फूँक मारी जाती है।—तीनों यन्त्रोंका मुख्य कार्य अग्नि में वायुको धकेलना है जिससे वायु अधिक प्रज्वलित होकर उच्च उष्णता प्राप्त करे और प्रयोजनीय कार्य को शीघ्र करे। इन यन्त्रों और साधनों से यह भली प्रकार विदित हो जाता है कि प्राचीन भारतीयों को अग्नि में वायु या आक्सीजन सचार करके अग्नि की उष्णता और रोशनी की वृद्धि करने का केवल ज्ञान ही नहीं था उनके पासयन्त्र भी थे। इन्हीं सिद्धांतों पर आधुनिक काल में 'पैनब्लोवर' तैल के लैम्प चूल्हे आदि अनेक पदार्थों के आविष्कार हुए।

(२६ जिल्द साजों की शिकंजा—यह एक प्रकारका किताब दबाने वाला प्रैस होता है जिसमें हमारे जिल्द बाँधने वाले किताबें दाबकर काटते हैं। यह 'मैकेनिक्स स्क्रू' (Mechanics-Screw)के सिद्धांत पर प्राचीन काल से अपनी मौजूदा आकृति में बना चला आ रहा है—इसके सिद्धांत पर सैकड़ों प्रकार के 'प्रसन्न' आधुनिक काल में बनाए गए—इससे यह सिद्ध हो जाता है कि देश में चूड़ी (Screw) का भी ज्ञान था।

(४०) दिया, मशाल—घरों में रोशनी करने के प्राचीन काल के साधन दिया और मशाल हैं। दिये में एक मिट्टी की घराई में कड़वा या समान चिकना तैल या घी लेकर उसमें एक ढीली रूई की बत्ती डालकर सिरे में अग्नि जला दी जाती है और रख दिया जाता है—इसमें तेल आकर्षण शक्ति से बत्ती से स्वयं खिचकर लौ तक पहुँचता रहता है। तेल सराई से मिलता रहता है और वायु बाहर से मिलती रहती है इस कारण प्रज्वलित अग्नि की जलती हुई लौ स्थिर बनी रहती है। प्राचीन काल में जब अधिक रोशनी की आवश्यकता त्यौहारों और उत्सवों आदि में पड़ती थी एक लोहे या लकड़ी के डंडे पर कपड़ा लपेट कर उस पर तेल (चिकना तेल) बारीक धारसे डालकर उसको जलाते थे जिससे बहुत रोशनी हो जाती थी। आज भी भारतवर्ष में ८० प्रतिशत जनता दियों और मसालों का प्रयोग इन यंत्रों की प्राचीन आकृति में ही करती है।

यह भारतीय 'दिया' बहुत छोटा सा रोशनी उत्पादक साधारण घरों का नित्य प्रतिदिन प्रयोग में लाया जाने वाला यंत्र है जो केवल हमारे देश की सर्व साधारण जनता को निर्धनता की दृष्टिकोण से ही यथेष्ट नहीं है एवं दो गुण साथ २ और रखता है जो आधुनिक प्रकाश यन्त्र लेम्प और लालटैनों के पास भी नहीं मिलते हैं एक गुण तो उसके प्रयोग कर्त्ता की स्वतन्त्रता जिससे उसको इधर उधर से पदार्थों को सचय करना नहीं होता एक ग्रामवासी अपने ही घर से तेल निकालकर दिया बना लेता है दूसरे यह दिये की लौ घरों में जलने से एक मात्रा में घरों की विषाक्त वायु की स्वच्छता करती है —रचना में अद्भुत सरलता लिये हुए है। इस छोटे से भारतीय प्रकाश उत्पादक यन्त्र में अकथनीय लाभ है। घी से जलाये हुए दिये घटे वायु शोधक होते हैं। यदि इसका चमत्कार कोई महानुभाव देखना चाहें तो खाने के कमरे में नित्य एक घी का दिया जलाकर देख ले परन्तु घी देशी हो। भारत में देवालयों में आज भी घी के दिये जलाये जाते हैं। इसके ऊपर अपनी चौथी पुस्तक में प्रकाश डालेंगे। इसी दिये के सिद्धान्त पर आधुनिक काल में लैम्प और रेलों के सिगनलों के लैम्प बने जिसमें अरंडी का चिकना तेल जलाया जाता है।

(४१) शब्दोत्पादक विभिन्न प्रकारके यन्त्र और बाजे—शब्दोत्पादक यन्त्रों की जितनी भारतवासियों ने रचना की और बनाए सम्भवतः अन्य देशों ने नहीं बनाए। आज तक भी यहाँ सैकड़ों प्रकार के बाजे अपनी २ प्राचीन आकृतियों में ही चले आ रहे हैं और उन्हीं आकृतियोंमें ही लोगों को प्रिय है। पुस्तक का आकार बढ़ जाने के भय से हम इनके पृथक २ सविस्तार वर्णन नहीं करेंगे केवल एक दो बाजे का ही निरीक्षण करेंगे। इन बाजों का विवरण करने से प्रथम भारतीय शब्द विज्ञान (Acoustics) के प्राचीन सिद्धान्तों पर एक दृष्टि डालते हैं। शब्द विज्ञान बताता है कि शब्द की उत्पत्ति तीन प्रकार से भूस्थल पर होती है।

"संयोगा द्विभागाच्छब्दाच्च शब्द निष्पत्ति"

(1) किसी दो पदार्थों की संयोगता से। (11) किसी दो पदार्थों के विभाग से और (111) शब्द से शब्द की उत्पत्ति होती है। शब्दकी उत्पत्ति के लिए उपरोक्त तीन प्रकार के संयोग आदि क्रियाओं के अतिरिक्त वायु जैसे लचक वाले पदार्थ का कंपन उत्पन्न करने के लिए चारों ओर संसर्ग में होना परमावश्यक है। तो साराश में शब्द की उत्पत्ति के दो परमावश्यक कारण होने ही चाहिए एक तो संयोग विभाग आदि क्रियाएँ और दूसरा वायु का 'कंपन'।

यह संयोग विभाग आदि की क्रियाएँ वैसे तो नौ प्रकार की हो सकती है परन्तु इनमें से मनुष्य की बोल चाल के शब्दों की और गाने बजाने की विभिन्न प्रकार की ध्वनि में केवल दो ही प्रकार के संयोगों आदि पर निर्भर होती हैं (१) एक पार्थिव पदार्थ का दूसरे पार्थिव पदार्थ से संयोग। (२) वायु का पार्थिव पदार्थ से संयोग। इन दोनों प्रकारों के फिर निम्न लिखित दो २ विभाग होते हैं।

(अ) पार्थिव पदार्थ का दूसरे पार्थिव पदार्थ पर संयोग (चोट मारना)

(१) तारों को खैंच कर किसी काठ की खाली पटीपर लगाया जावे और उनको पतले वस्तु के संपर्क में लाकर किसी कमानी या छल्ले आदि से चोट मारना—इस सिद्धांत पर सारङ्गी और सितार आदि बनाये जाते हैं।

(२) किसी पोले बक्स या पाइपमें किसी खाल आदि वस्तु को तानकर मढ देना—इस सिद्धांत पर ढोलक, तबला, घटे घड़ियाल बनाये जाते हैं

(ब) वायु का पार्थिव पदार्थ पर संयोग (चोट मारना)

(३) संकुचित वायु को तीव्र दबाव से किसी पदार्थ के छोटे से छिद्र से निकालना जिसमें छिद्र गोल, चौकोर या लबोतरा हो और वे रूकावट के हो—इस सिद्वात पर सीटी आदि बनाइ जाती है ।

(४) संकुचित वायु को तीव्र दबाव से किसी पदार्थ के छोटे से छिद्र से निकालना जसमें छिद्र लबोतरा चोकोर हो परन्तु छिद्र में किसी प्रकार की रूकावट दे दी गई हो और एक प्रकार की पतली पतरी या जीभ एक ओर जुडी हुई हो जो वायु के निकलने से कंपन उत्पन्न करे । यह पतरी या जीभ वायु के ओर होना चाहिये—इस जीभ के कंपन से वायु की तीव्रता से निकलने की सीटी जैसी आवाज़ तुरत एक बाजे के स्वर की आवाज़ में परिणित हो जाती है ।

उपरोक्त प्रकारोंमें संयोग और कंपन साथ २ कार्य करता है और इसी से शब्द की उत्पत्ति होती है । वायु कंपन का वेग १६ से २०००० कंपा प्रति सेकड तक होता है । भारतीय विज्ञान में स्वर केवल सात होते हैं और सात जानवरों की बोलियों पर वैज्ञानिकों ने मानकर सातों स्वरों की एक सप्तक मान ली है और बडी अद्भुत बात यह होती है कि हर सप्तक के पश्चात आठवाँ स्वर जो दूसरी सप्तक का पहिला स्वर गिना जाता है वह पहिली सप्तक के पहिले स्वर से मिल जाता है यद्यपि यह तीव्रता में अधिक रहता है और यह सप्तक १६ कंपन से २०००० कंपन प्रति सेकेन्ड की वायु लहरों में १६ से प्रारम्भ होकर दून में चढ़ते चले जाते हैं । १६ से ३२ तक प्रथम सप्तक जिसमें स र ग म प ध नि हर दो २ कंपन के अंतर से बढ़ते है तो फिर दूसरी सप्तक में (३२ स ६४ तक) हर चार २ कंपन से बढ़ते है और उसी प्रकार दसवीं की सप्तक में जो ८१९२ कंपन से १६३८४ कंपन तक होती है हर स्वर १०२४ कंपन से बढ़ता है । जितने कंपन शब्दों में अधिक होंगे उतना शब्द ऊँचा होगा । मनुष्य के साधारण कान को नीचे की ओर तो ५०० प्रति सेकेन्ड के कंपन और दूसरी ऊँचे की

और ४००० प्रति सेकंड से ऊपर के कंपन अच्छी प्रकार सुनाई नहीं देते और ५०० से ४००० कंपन प्रति सेकंड के शब्द बड़ी सुलभता से सुनाई देते हैं जो छठी सातवीं और आठवीं सप्तकों में पड़ते हैं। यही कारण है कि मनुष्य कृत बाजों में इन्हीं तीन सप्तकों (६, ७, ८) का प्रयोग किया जाता है। (तारों से बजाये जाने वाले बाजों को छोड़ते हुए)

उपरोक्त विधि नं० ४ में खूब बजने वाले बाजे बीन, पीपनी, बांसुरी बिगुल हारमोनियम और पियानो आदि आ जाते हैं। और यही एक मुख्य बाजों के शब्द उत्पन्न करने का साधन प्राचीन भारत में माना जाता रहा है। इसमें एक लंबे चौकोने छेद्र में किसी लचकने वाले पदार्थ की पत्ती या जीभ लगाने से शब्द की उत्पत्ति संयोग और वायु कंपन द्वारा कर ली जाती है। हमारे देश में यह शब्द विज्ञान इस उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था कि जिसका प्रभाव आज तक देखने में आता है। नरमल और पतले बांसों के टुकड़ों में केवल तेज चाकू से एक खपच्चड़ फाड़कर उसी स्थान पर थोड़ी सी उठाकर उसपर वायु सचार कर ने से सैकड़ों प्रकार की पीपनियें बना लेते हैं। आम की गुठली को योग्य रगड़ कर, उसकी फटन को थोड़ा सा छिटका कर ग्रामों में बच्चे मुँह से बजाने का पपैय्या बना लेते हैं। सपेरों की बीनें ग्वालों के बैग पाइप, बाँसुरी आदि सैकड़ों प्रकार के बाजे आज भी भारत में उन्हीं प्राचीन वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर बनाये जा रहे हैं। उनमें सप्तकें अनिश्चित बाजे बनाने वाले भी बड़ी अपूर्वता से बना लेते हैं। विधि नं० (१) के तारों के बाजे सारङ्गी सितार आदि भी प्राचीन ढंगों और सिद्धान्तों पर देश में विभिन्न स्थानों पर बनाये जाते हैं और इसी प्रकार विधि नं० (२) वाले ढोल, ढोलक तासे, तबले और खजरी आदि। तारों के बाजों में तारों की लम्बाई को बायें हाथ की उंगलियों से दबाकर घटा बढ़ा लिया जाता है। इससे तार की कंपन न्यूनाधिक हो के शब्दों का स्वर ऊँचा नीचा हो जाता है। जैसे हारमोनियम के हर विभिन्न पर्दों पर उँगली रख कर स्वर ऊँचे नीचे उतारे किए जाते हैं। उनके समान सितार और सारङ्गी आदि तार के बाजों पर केवल जिस तार को बजाया जाता है उसको बायें हाथ की उंगलियों से लम्बाई पर घटा बढ़ा

हाथ रखकर जब वही तार बजाया जाता है तो भिन २ स्वरों में बजता है। इन बाजों की रचना में भारतीयों ने केवल स्वदेश की ही वस्तुएँ लगाकर हर प्रकार के सिद्धांतों की पूर्ति की है जैसे तबले और ढोलकों की खाल के हकनों को तानने के लिए ऊपर की रस्सियोंको ठोंक २ कर खेंच दिया जाता है। सितार सारंगी में घोड़ी (एक लकड़ी का टुकड़ा) को सरका कर और ऊपर खूँटियों को ऐंठा देकर तार तान दिये जाते हैं और जीभीदार बाजों मे हाथ की उँगलियों से जीभी दो चार बार खेंचकर फड़का दी जाती है। आज भी यह बाजे देश में बहुत लोग बनाते हैं—इन्हीं बाजों के सिद्धान्तों पर आधुनिक काल में विभिन्न प्रकार के विदेशी बाजे बनाये गये और भारत में भी बनाये जाते हैं और हारमोनियम, प्यानों आदि बाजे उत्तर रचना के बनाये जा रहे हैं परन्तु सिद्धांत में कोई विशेष अतर नहीं है। इसी प्रकार अंग्रेजी बाजे जो उत्सवों आदि पर बजवाये जाते है। बड़ी २ अद्भुत आकृतियों में बनाये जा रहे हैं। यहाँ यह बात पाठकों को बता देते हैं कि मनुष्यो ने शब्द की उत्पत्ति करने का ज्ञान अपने और जानवरोंके मुख से लिया। प्राकृतिक नियमानुकूल मनुष्यों और जानवरो के भीतर स्वास द्वारा ली गई वायु गले के छिद्रसे दबावके साथ बाहर निकाली जाती है और इनके गले के छिद्र पर ठीक उसी प्रकार की एक कंपन उत्पन्न करने वाली जीभ लगी रहती है जिसको 'वोकल कार्ड' (Vocal Cord) कहते हैं। यह जीभ बोलते समय घटती बढ़ती है और स्वर अक्षरों का उच्चारण करती है फिर मनुष्य होठों, दांतों गले और जिह्वा आदि की सहायता लेकर व्यञ्जन अक्षरों का उच्चारण करता है। भारतीय वैज्ञानिकों ने इस शब्द विज्ञान में उच्च निपुणता प्राप्त की हुई थी।

(४२) रुई ओटने की चर्खी—यह यन्त्र कपास से बिनौले निकालने का भारतवर्ष का प्राचीन यन्त्र है। यह मैकेनिक्स मैशिन (Mechanics-Machine) के सिद्धान्त पर बनाया हुआ है और अपनी उपयोगिता के कारण मौजूदा आकृति और बनावट में आज तक ज्यों का त्यों चला आ रहा है। इसी सिद्धान्त पर आधुनिक काल मे बड़ी २ जिनिंग मशीनें (Ginning Machine) उच्च प्रकार की बनाई जा रही हैं जो मिलों में

शक्तिशाली एनजनों से कार्य में लाई जाती है।

(४३) चोरी सीने का सुयॉ—यह भारतवर्ष में बहुत पुराने समय से बनता और उपयोग में लाया जाता रहा है आकृति और रचना मे कपड़ा सीने की आधुनिक काल की विदेश की बनी हुई सुई के समान है। ऐसा कहा जाता है कि अस्सी वर्ष पहिले विदेशी सुइयां यहाँ ठीक इसी सुएँ के समान वस्तु बनाई जाती थी परन्तु क्योंकि अब नहीं दिखाई देती इस कारण हम सुई का कोई निर्देष यहां नहीं करेंगे परन्तु 'सुएँ' का कथन अवश्य करेंगे। सुये का दूसरा रूप हमारे प्राचीन यन्त्रों के समुदाय में मोची के जूते सीने वाली सुइ में मिल जाता है और इस जूते सीने वाली सुई की भी प्राचीनता के प्रमाण हमारे पास सुये के समान मौजूद है। इसकी रचना और आकृति 'मैकेनिक्स के वैज' (Mechanics Wedge) के सिद्धान्त पर निर्धारित की गई है। रचना कार्य की पूर्ति के लिये अति उत्तम और कार्य के अनुसार हैं। इसी सुए के सिद्धांत पर आधुनिक काल की सुइयें बनाई गई और मोची की सुई के सिद्धांत पर कपड़ा सीने का मशीन की सुइ बनाई गई।

(४४) कंघी (बाल बाहने वाली) यह छोटा सा यांत्रिक उपकरण बाल साफ करने के हेतु प्राचीन काल से भारत मे बनाया जाता रहा है। संभल आदि उत्तर प्रदेश के शहरों मे यह कंघी बनाने के कारीगर चार सौ पाच सौ वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी यही कार्य करते चले आ रहे हैं। यह बालों को ब्रुश के समान केवल माड़कर ही साफ नहीं करती एवं बालों के दोनों ओर इसके दाते चले जाते हैं और बालों को दाब लेते हैं और फिर उनको खींच कर साफ कर देते हैं। कघी भिन्न २ दातो की मोटाई की बनाई जाती हैं। भारत के ग्रामों में भी स्त्रिया इस छोटे से उपकरण की रचना के सिद्धान्त को खूब समझती हैं और जब इससे किसी के अधिक बारीक बालों को यदि साफ करना होता है तो उसके हर चौथे या तीसरे दातों मे आवश्यकता अनुसार छोटी २ सींखों के टुकड़े तोड़कर लगा दिये जाते हैं तो इससे बीच वाले दाँते स्वय भिचकर अधिक घन हो जाते हैं और बारीक कार्य करने मे उपयोगी बन जाते हैं आधुनिक काल में विभिन्न प्रकार की

सुन्दर २ आकृतियों मे कढ़िएँ रबड़ आदि की बनाई जाती हैं।

(४५) मिठाई के खेल बनाने के लकड़ी के सांचे, मिट्टी के खेल बनाने के पत्थर और पकी हुई मिट्टी के सांचे—यह दोनों प्रकार के सांचे हमारे देश में प्राचीन काल से प्रयोग में लाए जा रहे हैं। हलवाई इन साँचो के दो २ टुकडों को आमने सामने रख कर धागे से बाँध देते हैं और उनमे गली हुई खाँड़ भर कर ठंडे कर लेते हैं और खाँड के विभिन्न खिलौने बना लेते हैं इसी प्रकार मिट्टी के खेल बनाने वाले कारीगर अपने खिलौनो के चेहरों आदि के साँचे मिट्टी मे एक बार परिश्रम से बनाकर उनको सावधानी से पका लेते हैं फिर गीली मिट्टी के टुकड़ों को इन सांचों में भर २ कर ढालते और निकालते रहते हैं जिससे उनके खिलौनों के चेहरे शीघ्र बन जाते है और सदृश्य बन जाते हैं। यह मशीन बना ली जाती है और इस साधनसे वही मशीन वाले तीनों लाभोंकी प्राप्ति होती है अथवा शीघ्रता सदृश्यता और मितव्ययता। इनके बनानेमें वैज्ञानिक प्रति अनुकरण (*Opposite Copying*) के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। आधुनिक काल में विभिन्न प्रकार के धातुओं, मिट्टी, मोम लकड़ी के सांचे बनाये जाते हैं।

(४६) कपड़े छापने के लकड़ी के छापे—यह कपड़े के छापने के बहुत प्रकार के लकडी के छापे भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से बनते और कपड़ा छापने के प्रयोग में आते चले आये हैं यह भी वैज्ञानिक प्रति अनुकरण (*Opposite Copying*) के सिद्धान्त पर बनाये गये थे और आज भी इसी प्रकार बनाये जाते हैं। यह पकी शीशम आदि लकड़ी को आड़े रुख काटकर उसको खोद २ कर बनाये जाते है। यह वस्त्रों की छपाई के प्रयोग में आते हैं और इस कार्य को इस देश में छिपी लोग करते रहे हैं। आज दिन यह वस्त्रो की छपाई का कार्य बड़ी प्रतियोगता से फर्रुखाबाद आदि शहरों में किया जाता है। इस सिद्धान्त पर आधुनिक काल मे बहुत उन्नति हो चुकी है। छापेखाने आदि सब इन्हीं सिद्धांतो पर निर्धारित है। रबड़ की मुहरें लिथो और टाइप की मशीनों के बहुत प्रकार के आविष्कार इन्हीं के सिद्धांतों पर हो चुके हैं।

(४८) भभका सत निकालने का यंत्र—यह यन्त्र एक ओरसे बाँस की मोड़कर बनाई हुई धुइनी की आकृति का नली होती है जिसका एक सिरा छोटा और दूसरा बड़ा होता है। इसको पसारी और अत्तार लाग विभिन्न औषधियों का अर्क निकालने अथवा सत और इत्र आदि के निकालने के प्रयोग में लाते हैं। यह भारतवर्ष का बहुत प्राचीन यन्त्र है और अत्तारों पंसारियों और विशेष कर वैद्यों के बड़े उपयोग की वस्तु है। जिस औषधि या अन्य पदार्थ का अर्क या सत निकालना होता है उसको कुछ समय तक जल में भिगो कर फिर बन्द बर्तन में चूल्हे के ऊपर पकाने को रख दिया जाता है और उसके ऊपर के ढकने में भभके का छोटा सिरा लगा दिया जाता है फिर चूल्हे से कुछ दूरी पर इस भभके का लंबा सिरा साफ काँच की बोतल में लगाकर बोतल को ठंडे जल की बालटी में रख दिया जाता है और इस बालटी का जल गरम होने पर बदलते रहते हैं। चूल्हे पर औषधि पककर इसकी जल वाष्प बनने लगती है और वह उस बर्तनसे इस नली के रास्ते निकल कर उस बोतल में आ जाती है और वहां ठंडक पाकर वाष्प से फिर जल में परिणित हो जाती है। इसके अतिरिक्त शुष्क परिवर्तन शील (उड़ने वाले) पदार्थोंकी वाष्प भी इस यन्त्र से निकलकर दूसरी जगह पर ले जाई जाती है और वहाँ ठंड के संपर्क में लाकर वही पदार्थ फिर स्वच्छ रूप में परिणित कर लिया जाता है। यह वाष्प बरतन से निकलते समय औषधि के सत् के सूक्ष्म कणों को भी अपने साथ ले जाती है जिससे यह बोतल में इकट्ठा हुआ जल उसका अर्क या सत कहलाता है। इसी प्रकार इत्र आदि सुगंधियें भी खैंची जाती है—इस यन्त्र को वैद्य लोग पाताल यंत्र भी कहते हैं। परन्तु साधारणतः इसको 'भभका' कहा जाता है। यह यंत्र अपनी प्राचीन आकृति में ही देश में आज तक ज्यों का त्यों प्रयोग में लाया जा रहा है।

यह वैज्ञानिक 'वाष्पीकरण' (Vaporisation) और 'जलीकरण' (Condensation) के सिद्धान्तों की पूर्ति के निमित्त एक उपयोगी साधन है। इस नली के ऊपर रस्सी आदि लपेट कर वायु मण्डल के ताप-मान से सुरक्षित रखा जाता है। यह यन्त्र हजारों वर्षों से भारतवर्ष में

अग्नि और जल के सामयक संपर्कों से उष्णता और शीतता प्राप्त करके जल का 'बाष्पीकरण' और जलीकरण करने का बड़ा परमोपयोगी साधन है जिस विज्ञान कला में भारतीय पूर्वज विश्व भर में विख्यात रहते हैं इसी यंत्र के सिद्धान्त पर आधुनिक काल में अनेक प्रकार के सत निकालने वाले और पदार्थों को शोधने वाले बड़े २ यन्त्र बनाये गये हैं। आधुनिक काल के ९० प्रतिशत यन्त्रों में सिद्धांत इस भभके का ही रखा गया है।

(४७) सिंगी यह भारतवर्ष का प्राचीन और बड़ा उपयोगी यन्त्र केवल खोखले सींग के टुकड़े का बना हुआ होता है। लगभग सात आठ इन्च लम्बी होती है और ऊँचा सींग का सिरा होता है जिसमें एक छिद्र होता है। यह स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र में शरीर के किसी भाग से दूषित रक्त निकालने और रक्त सचार को सुधारने के उपयोग में लाई जाती है। इसको दूषित शरीर के भाग पर रख कर ऊपर के छिद्र से वायु मुख से खैंची जाती है और जब शरीर की त्वचा फूलकर इस सिंगी के भीतर उठ जाती है तो दोनो प्रकार के कार्य किए जाते हैं यदि दूषित रक्त निकालना तो एक बार सिंगी लगाकर त्वचा फुला ली जाती है और उसको हटाकर इस फूले हुए स्थान पर तेज चाकू से दो चार पछने मार दिए जाते हैं। और फिर उसी स्थान पर सिंगी रखकर दूषित रक्त को मुख से खैंचकर निकाल दिया जाता है। चाहे जितना और जब तक चाहे रक्त निकाला जा सकता है फिर सिंगी उतार कर पछनों म मरहम लगाकर उनको ठीक कर दिया जाता है। यदि केवल रक्त सचार के सुधारने मात्र क्रिया करनी होती है तो सिंगी बारम्बार लगाकर त्वचा को फुलाया जाता है और बारम्बार सिंगी हटा ली जाती है और यह कार्य तब तक जारी रखा जाता है जब तक वहाँ का दर्द कम नहीं हो जाता। इस बारम्बार त्वचा के फुलाने से त्वचा के नीचे रक्त सचार की नालियें बारम्बार के झटकों से साफ हो जाती है और रक्त सुविधा से प्रवाह करने लग जाता है। पहिले प्रकार के प्रयोगों को 'भरी सिंगी लगाना' और दूसरी प्रकार को 'खाली सिंगी लगाना' कहते हैं। यह यन्त्र बड़ा वैज्ञानिक महत्व रखता है और (न्यूमैटिक्स सकशन पम्प ' (Pneumatics Suction Pump) के सिद्धांत पर रखा

गया है। आज कल भी इसका प्रयोग ग्रामों और जंगलों में किया जाता है परन्तु शहरों में बहुत से लोगों ने इसको देखा भी नहीं। बड़ी उपयोगी वस्तु है।—इसी सिद्धांत पर आधुनिक काल में सक्शन पम्प और अन्य प्रकार के डाक्टरी औज़ारों के आविष्कार हुए हैं। सिंगी के यंत्र को आज दिन भी इतना महत्व प्राप्त है कि हज़ारों मनुष्यों की चोट और वाय आदिके कष्ट सिंगी लगवाने से तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। और उसकी दोहरी उपयोगता भी इसके महत्व को बढ़ा देती है। भारत में शरीर से दूषित रक्त को कृत्रिम साधनों से निकलवाने के सिंगी से अतिरिक्त दो अद्भुत साधन और भी हैं। एक फुसद खुलवाना जिसको यूनानी हकीमों ने अपने समय में बहुत प्रचलित रखा और दूसरा 'जोंक' लगवाना है जो कि दोनों प्राचीन साधन है परन्तु सिंगी का साधन सर्वश्रेष्ठ इस कारण माना गया है कि इसमें स्वेच्छा के अनुकूल रक्त निकलवाने की सुविधा रहती है। चाहे जितना रक्त निकालो और चाहे जब बंद करके मरहम लगा दो।

(५३) दाँतों को साफ करने की दातुन—भारतवर्ष में दांतों को साफ और स्वच्छ और बलिष्ट करने के लिए दातुन करने की प्रथा हमारी प्राचीन वैज्ञानिक प्रथा है जिसमें बबूल नीम या अन्य साधारण वृक्षोंकी छोटी सी टहनी लेकर उसका ब्रश बनाकर उससे नित्य प्रति सुबह को मनुष्य अपने दाँतों को दो चार मिनट रगड़ कर साफ कर लिया करते थे। यह प्रयोग एक बहुत सस्ता और बहुत थोड़ा समय लेने वाला प्रयोग था जिससे न केवल दाँतों की सफाई ही हो जाती थी एव दांतों और मसूड़ों में उच्च प्रकार की स्वच्छता और बलिष्टता भी आ जाती थी।

आज भी इस 'दातुन' का प्रयोग भारत में लाखों मनुष्य करते हैं। परन्तु इनमें से बहुत से महानुभाव इस 'दातुन' का प्रयोग करते हुए भी इसकी महत्वता को सभवत नहीं समझते होंगे और पाश्चात्य ढंग के टूथ पेस्ट' और टूथ ब्रशों' के दांतों को साफ करने के विदेशों के आदेश और विज्ञापनों को नित्य प्रति देखते होंगे इस कारण हम थोड़ा सा वैज्ञानिक उल्लेख 'दातुन' का करे देते हैं। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने स्वास्थ्य

सम्बधी एक भी क्रिया ऐसी नहीं को (कम से कम लेखक परिचित नहीं है) जा शरीर की प्राकृतिक क्रियाओं के प्रतिकूल पड़ती हो। दाँतों की स्वच्छता करने के लिए ऐसे किसी पदार्थ की वास्तविकता में आवश्यकता है जो मुख में लगाने से किसी प्रकार का विषैला प्रभाव न उत्पन्न करे और दाँतो और उनके मसूड़ों पर रगड़ने से कोई आघात भी न करे। दूसरे शब्दों में उस दाँत साफ करने वाले पदार्थ के दोनों प्रकार के प्रभाव (यांत्रिक और रासायनिक) मुख जैसे स्थान में इस क्रिया को करते हुए स्वास्थ्य के हानिकारक न होने चाहिए यदि हितकारी न हो तो न सही। अब हम अपनी प्राचीन भारत के वैज्ञानिक उपकरण 'दाँतुन' की आधुनिक काल के 'टूथ ब्रश' से केवल स्वास्थ हानि और हित की परिमित सीमा में ही(खर्चे की दृष्टिकोण को छोड़ते हुए) तुलना करते हैं। 'टूथ ब्रश' प्रत्येक आकृति और बनावटों के सैकड़ों विदेशी कम्पनियें बना २ कर दिन रात ला रही हैं और बड़े २ विज्ञापन देकर प्रचार कर रही हैं कि उनके यह 'टूथ ब्रश' जो आज उन्होंने भारतीयों के लिए वैज्ञानिक ढगों से रचना करके निर्माण किये हैं ये दाँतों की सफाई अधिक परिमाण में करेंगे और 'पाइ-रिया' इत्यादि बीमारियों से लोगों को मुक्त रखेंगे। यह 'टूथ ब्रशों' की बनावट भी हर साल कोट पतलूनों के समान बदलती रहती है और हर साल इनकी बनावट में भी कोइ नई बात उत्पन्न कर दी जाती है। अब 'दातुन' को देखिये और निम्नलिखित इसके उपयोगों को भी थोड़ा सा ध्यान में रखिये कि यह एक साधारण वृक्ष की टहनी से मनुष्यों के शरीर पर क्या २ प्रभाव पड़ते हैं और यह भी देखिये कि यह कितनी उपयोगी 'उपकरण' है।

बबूल (कीकर) की दाँतुन से दाँत साफ होते हैं और मसूड़े बलिष्ट होते हैं।
नीम की 'दातुन' से दाँतों की सफाई होती है और मुख की दुर्गन्ध दूर होती है।
बरगद ... ... हिलते हुए दाँतो में शक्ति आ जाती है।

सिर्ष की दातुन से दाँतो में सफाई और दृढ़ता आती है।

आम ... ... मुँह की दुर्गन्ध दूर होती है और दृष्टि तीव्र होती है।

मौलसरी ... ... दाँतो में शक्ति आती है

पीपल ... ... शरीर से कुछ परिमाण में में विष को दूर करती है। दाँतो के दर्द को बद करती है। दृष्टि को तीव्र करती है दोर्घ ज्वर में हितकारी है।

आक की दातुन दाढ़ के दर्द को तुरन्त बद करती है परन्तु इस दातुन के प्रयोग करने में ध्यान यह रखना चाहिये कि इसका रस भीतर पेट में न निगला जावे। इसको बारम्बार थूका जाता रहे।

अब हम दातून' के विषय में विशेष उल्लेख न करते हुए इसकी आधुनिक काल की 'विजय' के सकेत म इलाहाबाद से २२ ६ ५२ के 'लीडर' मे निकले हुए एक लेख से निम्नलिखित महत्व समाचार का विवरण देते है जिससे आपको बहुत प्रसन्नता होनी चाहिये।

यह समाचार 'बैटर होमस और गार्डनस' से नवम्बर सन् १९५१ के अक से जो अमेरिका से निकलता है और जिसको 'हव वैली' ने प्रकाशित किया है लिया गया है। इस समाचार की विशेष बातें यह है —

वृक्षों की टहनियों और पत्तो की हरियाई (Chlorophyll) कुदरत की ओर से मनुष्यो के दाँतो के लिये एक उपहार है। इस हरियाइ को अमेरिका के दाँतो के बड़े २ अस्पतालो में टूथ पेस्टो में मिलाकर तजरबे किये गये जिससे हजारो दाँतों के मरीजो को लाभ पहुँच चुका है। इससे मुख की दुर्गन्ध तुरन्त दूर हो जाती है। अब भविष्य में अमेरिका की बनी हुई टूथ पेस्टो में यह हरियाई सबमें मिलाई जाया करेगी और भारतवासियों को भी यह टूथ पेस्ट शीघ्र ही प्रयोग करने के लिये मिलने लगेगी।

आदेश

लेखक का भारतीय शिक्षित नवयुवकों को आदेश

भारत में शिक्षित नवयुवको की बेकारी की समस्या यहाँ की कला कौशल की कमी के साथ साथ बढती जा रही है। लेखक ने इस विषय पर बहुत लम्बे समय तक विचार और अध्ययन किया है। यह बेकारी की समस्या जितनी वास्तविकता मे जटिल है उतनी ही भाग्यवश सुलझने में सुलभ भी है। यद्यपि केवल आप लेखक से थोडा सहयोग करें और उसके इस आदेशानुसार कार्य करने का साहस करें। आपके पास विद्या है, साहस है, पराक्रम है, और बुद्धि है और परिश्रम करने की शक्ति भी है। साराश म आप में विदेशी नवयुवको से कोई बात कम नहीं है केवल एक बात के अतिरिक्त कि आपको हस्त कला के कार्य करने म थोड़ा सकाच होता है जबकि विदेशी शिक्षित नवयुवकों को किसी भी हस्तकला के कार्य करने में सकोच नहीं होता है। यहाँ पर यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इस त्रुटि का हमारे भीतर कैसे और कब सचार हुआ केवल इतना अवश्य बतायेंगे कि इस त्रुटि का उत्तरदायित्व केवल अकेले आप पर ही नहीं वरन हम सब पर है। आवश्यकता आज इस बात की है कि यह छोटी सी त्रुटि शीघ्र से शीघ्र निकाल दी जावे जिससे हमारी दोनों कामनायें सिद्ध हो जावें देश की कला कौशल में जागृति आ जावे और साथ साथ ह [illegible]

धन उपार्जन शक्ति म उन्नति हो जावे। लेखक का दृढ विश्वास है कि यदि इस हस्त कला के कार्यों से घृणा और सकोच करने की त्रुटि को आप कल ही से निकाल दें तो आप एक या दो वर्षों म ही काया पलट होती हुई देखेंगे। इस कार्य को करने के लिये निम्नलिखित सरल साधन आपको बताया जाता है और आशा की जाती है आप इस साधन को लेखक के आदेशानुसार प्रयोग करेंगे लाभ उठायेंगे और साथ २ भारत की भविष्य म आने वाली सन्तानों का भी धन्यवाद प्राप्त करेंगे।

(१) आप जहा पर भी हों और जो भी कार्य कर रहे हों, जिस भी कालिज या स्कूल म विद्या अध्यन कर रहे हों या जिस भी दफ्तर आदि में जो भी कार्य कर रहे हों उसको बड़ी दृढता और धैर्य स करते रहें केवल थोडा सा समय बचा कर एक या दो घटा नित्य प्रति हस्त कला कार्यों म अभ्यास करना तुरत प्रारंभ कर दें। और इसके लिये थोडा सा रुपया बचा कर तुरंत बढई, लुहार फिटर या रान के (अपनी रुचि के अनुकूल) उपकरण (औजार) खरीद लें। परन्तु ध्यान रहे कि यह औजार ऊच श्रेणी के होने चाहिये। विदेशी उच्च श्रेणी के औजार कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली और कानपुर आदि शहरों में बहुत मिलते हैं। जब औजार आ जावें तो आप एक या दो घटा प्रतिदिन अपने २ घरों पर नियम पूर्वक अपने हाथों से उन औजारों को पकड़ कर चलाने का अभ्यास करना सारें और उनसे उलटा सीधा कार्य करना तुरन्त आरम्भ कर दें। यह अभ्यास कार्य बराबर करते रहें और बस आदेश यही है और कुछ नहीं।

(२) इसके सबन्ध म कुछ आवश्यक चेतावनियें दी जाती हैं जो इस कार्य पूर्ति म आपको सहायक होंगी और अनेक बाधाओं म आपको बचायेंगी।

(अ) यदि कभी कोई व्यक्ति आपके 'हस्त कला अभ्यास' कार्य का उपहास करे कहे (जैसा कि डर है कि बहुत कहेंगे) कि इस मशीनों के युग में आपको यह क्या हस्तकला अभ्यास करने की सूझी है तो आप ऐसे उपहास का बड़ी दृढ़ता और शान्ति पूर्वक छोटा सा उत्तर अवश्य देदें कि मैं इस हस्तकला अभ्यास ही से तो इस मशीनों के युग को भारतीयों के समीप शीघ्रता से लाने का प्रयत्न कर रहा हू और अपना अभ्यास कार्य दृढ़ता से करते रहें।

(क) यदि अपना अभ्यास कार्य किसी दिन विवशता से किसी के सामने करना पड़ जावे तो इस कार्य को बड़ी सावधानी और स्वाभिमानता से अपने माथे में बल डाल कर करते रहो।

(ख) अपने निर्णित भविष्य के कार्य कर्मों में इस अभ्यास की क्रिया से कोई परिवर्तन न आने दो। जिस परीक्षा को या चुनाव आदि में बैठने या पास करने का आप विचार और अभ्यास कर रहे हों। उनको ज्यों का त्यों करते रहो जब कभी कार्य विशेष के कारण से अभ्यास करने का पूरा समय न मिले तो कुछ दिनों के लिये अभ्यास का समय घटा कर कुछ कम कर लो परन्तु बिलकुल बन्द न करो। कार्य समाप्ति के समय के उपरान्त फिर अपने इस 'हस्तकला' अभ्यास के समय का नित्य के समान पूरा कर लो।

(ग) विद्याध्ययन के उपरान्त यदि आपने जीवका उपार्जनार्थ कोई नौकरी या व्योपार आदि भी कर लिया हो और चाहे आप उससे संतुष्ट हों या न हो दोनों ही परिस्थियों में इस अभ्यास को जारी रक्खा जाना चाहिये। समय को घटा बढ़ा लेना चाहिये।

(घ) यदि आपको कुछ पुस्तकें कहीं से इन 'हस्त कला' कार्यों पर (बढ़ई, लोहार, फिटर, राज आदि के कार्यों पर) मिल जावें तो उनका अध्यन भी साथ २ करना प्रारभ कर

दीजिये। यदि आपको कोई शिक्षित या अशिक्षित कारीगर इस 'हस्त कला' करने का थोड़ा सा अभ्यास अपने सामने दे दें तो बहुत अच्छा है परन्तु आपको इसकी चिन्ता कदाचित न करनी चाहिये।

(२) लेखक का आशा है कि आपके एकही वर्ष के अभ्यास करने पर आपका अपने भविष्य का प्रकाश स्वय ही अनुभव होने लगेगा और आपके अन्य साथी भी आपका अनुकरण करना आरंभ कर देंगे। यह आदेश यद्यपि केवल शिक्षित नवयुवकों और छात्रों को दिया जा रहा है परन्तु इस पर अन्य शिक्षित महानुभाव भी कार्य करेंगे तो उनको भी लाभदायक होगा।

सूचना—

लेखक का जनता को मकानोंकी मरम्मत सवन्धी जटिल समस्याओं पर "निशुल्क परामर्श।"

पुराने मकानों की मरम्मत सवन्धी जटिल समस्याओं में जनता को निशुल्क परामर्श देना भी लेखक के रिटायर्ड जीवन का एक कार्य क्रम है। मौखिक परामर्श एक घंटा नित्य प्रति लेखक के मकान पर दिये जाते हैं। बाहर वालों को ऐसे परामर्श पत्र द्वारा दिये जाते है।

लेखक—

माधो प्रसाद

रिटायर्ड एग्ज़िक्युटिव इन्जिनियर

———

प्रथम प्रकरण

भारतीयों की दृष्टि कोण से 'अग्नि' की महत्वता और विलक्षणता

तत्वविज्ञान में अग्नि की महत्वता सब तत्वों से ऊँची इसी कारण मानी गई है कि अग्नि ही भूस्थल पर प्राकृतिक पदार्थों में से वह तत्व है जो केवल सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का ही आधार नहीं हैं एवं सब मनुष्यों और अन्य जीवधारियों के जीवन का और सब रचित पदार्थों का चाहे वह प्राकृतिक हैं या मनुष्यकृत उनका भी आधार है। इसके अतिरिक्त भूस्थल पर जितनी भी बड़े से बड़ी और छोटी से छोटी गति (Motion) विभिन्न तत्वों और पदार्थों में प्राकृतिक और मनुष्यकृत दोनों में दीख पड़ती है सबका मूलाधार यह 'अग्नि' ही है। अग्नि के बिना किसी भी प्रकार की भूस्थल पर गति नहीं हो सकती। जल का ऊंचे स्थानों से नीचे स्थानों की ओर बहना, वायु का चलना, मेघ का बर्सना, ऋतुओं का परिवर्तन, जीवधारियों का श्वांस लेना और शरीरों के स्थितत्व को रखना भोजन का पचाना सभी कुछ अग्नि पर निर्धारित है।

मनुष्यों ने इसी के आधार पर वैज्ञानिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के एन्जिन और मशीनें बनाई। विद्युत के जितने यंत्र बने उनमें इसी सूक्ष्म अग्नि (तेज मूर्ति अग्नि) का प्रयोग किया गया। अब प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को देखिये उन्होंने अपना स्वास्थ्य रक्षा की पूर्ति में जलवायु के घरों में शुद्ध करने के हितार्थ भी अग्नि का ही प्रयोग किया था। नित्य प्रतिदिन एक प्रज्वलित अग्नि की अंगीठी लेकर उसपर अनेक प्रकार के रोगनाशक, सुगंधित और पौष्टिक पदार्थों को जलाकर उनके धूम्र से चारों ओर के वायुमंडल को स्वच्छ करते थे और उ[illegible]

अग्निकी उपरकी ओर उठती हुई उष्ण वायु के प्रभाव से वायुमडल मे उथल पुथल उत्पन्न करके घरों की विशाक्त वायु को आकाश की स्वच्छ वायु से बदल देते थे और यही क्रिया सामहिक रूप मे बड़े परिमाण में 'होली' के नाम से हर मोहल्लों और गलिया के चौराहों पर वर्ष में एक बार करते थे। "अग्नि ही से मनुष्य अपने भोजन पकाते हैं और अग्नि ही से शरीर में जानधारी अपना भोजन पचाते हैं और अग्नि ही मृतक मनुष्य शरीरों के दाह सस्कार के करने के प्रयोग में लाई जाती है। मनुष्यकृत प्रयोगों से अग्नि (तेज महा मूर्ति प्रत्यक्ष अग्नि) के अप्सार्ण गुण से लाभ उठाते हुए आज वैज्ञानिकों ने वाष्पएन्जिन (Steam Engine) और तेल एन्जिन (Doisel-oil Engines) मोटर एन्जिन (Petrol Engine) गैस इन्जिन (Gas Engine) बनाये और उस अग्नि (तेज मूर्ती परोक्ष अग्नि) के आकर्षण गुण का लाभ उठाते हुए आज वैज्ञानिको ने विद्युत के एन्जिन और विद्युत के हजारों प्रकार के अन्य पदार्थ बनाए। साराश में जितने भी शक्तिउत्पादक यन्त्र (Engine and Motor) बने सब अग्नि के ही प्रयोग से बनाए गये।

लेखक का यहा पर 'अग्नि' के विषय म थोडा मतभेद आधुनिक वैज्ञानिकों और भारतवर्ष के आधुनिक सस्कृत पुस्तकों के ज्ञाता पडितों दोनों से है। इस कारण जो कुछ भी इस अग्नि के प्रकरण में लिखा जा रहा है वह मेरे निजी विचारो पर आधारित है। जहा तक लेखक की अन्वेषन खोज पहुचा है वहा तक यह देखा गया है कि सस्कृत के मुख्य ग्रन्थों में एक चौथाई से अधिक मत्र ऐसे प्रतीत हुए हैं जिनमें मुख्य वर्णन 'अग्नि' का है। बहुत से अनुवाद हुए और आप महानुभावों ने इनमें से बहुत मत्रों मे 'अग्नि' से या तो अग्नि देव और या ईश्वर के अर्थ मान कर सब ही मंत्रों का अर्थ स्तुति और पूजा का किया है। कुछ विदेशी अनुवादकों ने अग्रेजी के अनुवादों म

इस 'अग्नि' के शब्द की कोई महत्वत्ता ही नहीं दी और छोड़ ही दिया हैं। उधर आधुनिक वैज्ञानिकों ने विदेशों मे बिना किसी प्राचीन पूर्वजों के बताए हुए संकेतों के अन्वेषन कर के दोनों प्रकार की अग्नि (प्रत्यक्ष और परोक्ष) के गुणो को थोड़े थोड़े टुकड़ों में जानकर अनेक प्रकार के यंत्र बना डाले और अपने देशों को उन्नति के शिखिर की ओर ले जाने के दिन रात प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु यह आजतक विद्युत को अग्नि से भिन्न ही कोई पदार्थ मानते चले आ रहे हैं। अब लेखक एक दृष्टान्त देकर दोनो का ध्यान आकर्षित करता है और आधुनिक संस्कृत विद्वानों से और आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के अनुयाइयों दोनो से प्रार्थी है कि संस्कृत की भारतीय इन पुस्तकों के इन मंत्रों के ऊपर एकबार भारतीय वैज्ञानिक दृष्टि से फिर विचार किया जावे जिनमें "अग्नि" का वर्णन मिले। इससे विश्व भर का लाभ हो जायगा और आश्चर्य नहीं कि किसी स्थान पर आपको कुछ विशेष बातें प्रत्यक्ष अग्नि और परोक्ष अग्नि के संबंध में मिल जावें। लेखक का दृढ विश्वास है कि प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक उन दयालु दादा जी के तुल्य थे जो विश्व का उपकार किया करते थे और जो अपनी उच्च विद्या और अनेक अन्वेषनों से प्राप्त किए तत्व-ज्ञान के सिद्धान्तों का नुस्खा लिखकर नोट बुक मे अपने पुत्रों की सतति के पास छोड़ गये। उन दोनों पुत्रों में से एक ने तो दादा जी के लिखे हुए नुस्खे का ओर ध्यान ही नहीं दिया परन्तु अपने पुरुषार्थ से एक घटिया प्रकार की औषधि बनाकर तैयार कर ली और दूसरे पुत्र ने जिसके हाथ दादाजी की नोटबुक लगी थी उसने उसको रेशमी रूमाल में बांध कर ऊपर के तिखाल मे उठा कर रख दिया। परिणाम यह हुआ कि दादाजी के नुसखे की यथार्थ औषधि एक को भी नहीं मिली।

—अब आगे हम प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के सिद्धान्त जो वे

पच भूतों और विशेषत "अग्नि" भूत के प्रति रखते थे संचित में उल्लेख करते हैं।

अग्नि हमारे पचतत्वों में से एक मध्यान्ह तत्व है जिसके ऊपर दो तत्व जल और पृथ्वी होती है जो दोनों इससे स्थूल है (पृथ्वी जल से भी स्थूल है) और नीचे दो तत्व वायु और आकाश होते हैं जो दोनों उससे सूक्ष्म हैं (आकाश वायु से सूक्ष्म है)। पाचों तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश है जो पंच भूत या पच तत्व कहलाते हैं और इन पाचों में हर पहिले वाला तत्व अपने से पिछले वाले सब तत्वों से घनत्व और तुलना दोनों में स्थूल है और हरएक से पीछे वाले तत्व अपने से आगे वाले तत्वों से घनत्व और तुलना दोनों में सूक्ष्म हैं। जैसे आकाश पाचो भूतों मे सबसे सूक्ष्म भूत है। वायु केवल आकाश से स्थूल और अग्नि, जल, पृथ्वी तीनों से सूक्ष्म है। अग्नि आकाश और वायु से स्थूल और जल और पृथ्वी से सूक्ष्म है। जल, आकाश, वायु और अग्नि तीनों से स्थूल परन्तु केवल पृथ्वी से सूक्ष्म है और पृथ्वी चारो भूतो अथवा आकाश, वायु, अग्नि और जल में स्थूल है।

एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि कोई भी सूक्ष्म पदार्थ अपने से स्थूल पदार्थ में प्रवेश करके उसमें व्यापिक होकर रह सकता है परन्तु विपरीत इसके एक स्थूल पदार्थ अपने से सूक्ष्म पदार्थ में न तो प्रवेश ही कर सकता और न व्यापिक होकर रह ही सकता है। व्यापकता वहीं होती है जहा पर दो पदार्थों में घनत्व में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ से सूक्ष्म हो जैसे मिट्टी और जल में जल मिट्टी से सूक्ष्म होने के कारण मिट्टी के ढेलों में प्रवेश हो जाता है परन्तु मिट्टी जल में प्रवेश नहीं हो सकती। जहा पर दो पदार्थ एक दूसरे से स्थूल या सूक्ष्म न होकर बराबर की घनत्व रखते हों तो आपस के संयोग में एक दूसरे के भीतर प्रवेश नहीं करेगा

और दोनों स्थान घेरेंगे इस प्रकार के मिलने को "मिश्रणता" कहते हैं और जहां पदार्थ एक दूसरे के भीतर प्रवेश करके व्यापक होकर मिलते हैं उसको 'संयोगता' कहते हैं।

इसी सिद्धान्त पर आधारित होकर पच महा भूतों में (पच भूतों मे नहीं) वायु में आकाश व्यापक रहता है अग्नि में आकाश और वायु व्यापक होकर रहती है, जल मे आकाश, वायु और अग्नि व्यापक होकर रहती हैं और पृथ्वी में आकाश वायु अग्नि और जल चारा व्यापक होकर रहते हैं।

आकाश का गुण शब्द है, वायु का गुण स्पर्श है, अग्नि का गुण रूप (और उष्णता आकर्षणता, संयोगता, अप्सार्णता) जल का गुण रस (और शीतता) और पृथ्वी का गुण गंध है। यह इन पांचों तत्वों के अपने निजी गुण हैं।

जैसा ऊपर बता आए हैं कि पच महाभूतो में हरएक महाभूत अपने से सूक्ष्म महा भूतों को अपने भीतर प्रवशित करके रखता है इस कारण आकाश में तो केवल एक उसी का निजी गुण 'शब्द' का होता है परन्तु वायु में दो गुण होते हैं स्पर्श + शब्द (स्पर्श अपना निजी गुण और शब्द आकाश का गुण)। अग्नि में तीन गुण होते हैं रूप + स्पर्श + शब्द (रूप अपना निजी गुण और स्पर्श वायु का गुण और शब्द आकाश का गुण। रूप निजी गुण के उपरान्त अग्नि में उष्णता, आकर्षणता संयोगता अप्सार्णता यह चार निजी गुण और भी होते हैं जिनका पूर्ण विवरण आगे करेंगे)। जलमें चार गुण रस + रूप + स्पर्श + शब्द (रस अपना निजी गुण और रूप अग्नि का गुण, स्पर्श वायु का गुण और शब्द आकाश का गुण इसके उपरान्त जल में अग्नि के अन्य चार गुण उष्णता, आकर्षणता सयोगता और अप्सार्णता भी विशेष अवस्थाओं में होती हैं और अपना दूसरा निजी गुण शीतता भी विशेष अवस्थाओं में होते हैं जिसका

विवरण आगे करेंगे, और पृथ्वी में पांच गुण होते हैं गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द (गंध अपना निजी और रस जल का गुण रूप अग्नि का गुण, स्पर्श वायु का गुण और शब्द आकाश का गुण होते हैं। इसके उपरान्त अग्नि के चार गुण उष्णता, आकर्षणता संयोगता और अप्सारणता और जल का दूसरा गुण शीतता भी विशेष अवस्थाओं में होते हैं जिसका पूर्ण विवरण आगे करेंगे।

परमाणु भारतीय वैज्ञानिकों ने किसको माना है और वह क्या है यह भी हम सरल भाषा में समझा देते हैं। भारतीय विज्ञान वेत्ताओं ने पांच भूतों के पांच भिन्न २ प्रकार के परमाणुओं से सृष्टि की रचना मानी है। आकाश, वायु अग्नि जल और पृथ्वी के पांचों भूतों में हर भूत के सबसे छोटे २ कणों को जिनका फिर आगे विभाग न हो सकता हो 'परमाणु' के नाम से संबोधित किया है। किसी भी स्थूल पदार्थ का क्रमशः विभाग और विश्लेषण होते २ अंत में एक ऐसे परम सूक्ष्म अवयव में उपस्थित होना पड़ेगा जिसका कल्पना से भी विभाग नहीं हो हो सकेगा। अवयवी का विभाग करते २ चाहे वह कल्पना द्वारा ही हो जब एकावयव में पहुँचते हैं यो परम सूक्ष्म एकावयव विशिष्ट वस्तु को 'परमाणु' कहते हैं। इसी को कुछ वैज्ञानिकों ने 'तन्मात्रा' के नाम से भी कहीं २ पुकारा है। पांच तत्वों या भूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) में पांच प्रकार के अलग २ 'प्रमाणु' या 'तन्मात्रा' होते हैं। यह पांचों प्रकार के भूतों के 'परमाणु' छै २ परमाणुओं के गुच्छों मे मिलकर आपस में संयोगित होकर हिलने जुलने योग्य होते हैं। दूसरे शब्दों में यह मान लीजिये कि जो 'परमाणु' हमारे वर्णन में आवेगा हम विभाग करते करते उसका भी छै हिस्सों में विभाग कर गये यहां जाकर हमने इन कणों को 'परमाणु' संबोधित किया। पहले यह सूक्ष्म परमाणु दो २ करके संयोगित होते हैं और 'द्विणिक'

के नाम से पुकारे जाते हैं और फिर तीन २ 'द्विगुक' आपस में संयोगित हो जाते है, और 'त्रिसरेगु' के नाम से पुकारे जाते हैं। जिनको हम जहां पर आगे 'परमाणु' कहकर संबोधन करेंगे उनको वास्तविकता में त्रिसरेगु ही समझ लेना चाहिये यह दो द्विगुकों को आपस में मिलकर त्रिसरेगु बन जाने की कल्पना हमारे मूल सिद्धान्त में कोई अन्तर उत्पन्न नहीं करती। आप हमारे सिद्धान्त को समझने के हितार्थ त्रिसरेगु को 'परमाणु' ही करके मानिये।

जबतक यह पांचो भूतों के 'परमाणु' (त्रिसरेगु) अलग २ रहते हैं यह 'सूक्ष्म भूत' या 'पंच भूत' कहलाते हैं। परन्तु जब इन पांचों प्रकार के सूक्ष्म भूती या पंच भूती परमाणु (त्रिसरेगु) अपने से स्थूल भूतों के सूक्ष्म भूती या पच भूती परमाणुओं में में समावेश कर जाते हैं (जैसे आकाश के परमाणु वायु के परमाणुओं में, वायु के परमाणु अग्नि के परमाणुओं में अग्नि के परमाणु जल के परमाणुओं में और जल के परमाणु पृथ्वी के परमाणुओं मे) तो 'स्थूल भूत' या 'पच महाभूत' कहलाने लगते हैं। जब यह स्थूल भूत या 'पच महाभूती' परमाणु दूसरी बार फिर अपने से स्थूल भूत मे समावेश करते हैं तो 'दृष्य' 'महा भूत' अथवा 'पंचीकृत महा भूत' कहलाते हैं। वास्तविकता में केवल तीन ही दृष्य महा भूत होते हैं और चार ही 'महा भूत' होते हैं। क्योंकि पाच भूतों में से आकाश तो वायु में समावेश कर जाता है तब तो चार ही महा भूत बनते हैं (वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) और जब दूसरी बार फिर मिले तो वायु भी अग्नि में समावेश हो जाती है तो तीन ही दृष्य महा भूत रह जाते हैं (अग्नि, जल और पृथ्वी)। इन दो सौंदियों की संयोगिता करने के उपरान्त भी यह परमाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि बड़े शक्तिशाली सूक्ष्म दर्शक शीशों से भी अभीतक नहीं देखे जा सकते हम निम्नलिखित इन

परमाणुओं की परिभाषा भारतीय वैज्ञानिकों के शब्दों में देते हैं कि उन्होंने इनकी सूक्ष्मता का किस प्रकार से वर्णन किया है।

'परमाणुओं' के संबन्ध में बतलाया गया है कि जब संसार में स्थूल पदार्थों को देखा जाता है तो हम इन स्थूल पदार्थों की बनावट में सूक्ष्म अवयवों के जोड़ देखते हैं और फिर सूक्ष्मों में भी सूक्ष्मतर अवयवों के जोड़ देखते हैं। तथा फिर सूक्ष्मतर पदार्थों में भी अन्य सूक्ष्मतम अवयवों के जोड़ देखते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म जिससे परे अन्य सूक्ष्म न हो उस पदार्थ का नाम 'परमाणु' है। यह परमाणु ऐसे अनंत है कि मनुष्य उनको गिन नहीं सकते इस कारण वे किसी प्रकार से संख्या में नहीं आ सकते। यह 'परमाणु' अप्रज्ञात, अलक्षण, अतर्क्य अविज्ञेय और अव्यक्त होते हैं। इन्हीं परमाणुओं को 'प्रकृति' के नाम से पुकारा जाता है।

अब इन 'पंचतत्त्वों' के गुणों पर विचार करते हैं। गुण तीन प्रकार के हुआ करते हैं एक तो अपने निजी गुण जिनको 'स्वाभाविक गुण' कहा जाता है दूसरे जो अन्य वस्तु के समावेश या संसर्ग द्वारा आ जाते हैं ऐसे गुणों को 'नैमित्तक गुण' कहा जाता है और तीसरे प्रकार के गुण 'औपाधिक गुण' कहलाते हैं जो दूरी से प्रभाव मात्र ही डालकर एक विशेष गुण की उत्पत्ति कर लें जैसे श्वेत रंग के शीशे के नीचे लाल रंग का कागज लगाकर शीशे को लाल रंग का शीशा कहा जावे। स्वाभाविक गुण आकाश में शब्द, वायु में स्पर्श, अग्नि में रूप, आकर्षणता, संयोगता अप्सारणता, उष्णता, जल में रस और शीतता और पृथ्वी में गंध होते हैं। यही गुण पंचभूतों में तो केवल स्वाभाविक गुणों के रूप में ही रहते हैं क्योंकि पंचभूतों में पाँचों भूत सूक्ष्म भूतों के रूप में अलग अलग रहते हैं परन्तु पंच महाभूतों में हर भूत का अपना गुण स्वाभाविक गुण के नाम से पुकारा जाता है और उसमें सूक्ष्म भूतों के जो उसमें समावेश किये हुए होते हैं उनके

स्वाभाविक गुण उस महाभूती पदार्थ में नैमित्तक गुणों के नाम से पुकारे जाते है जैसे वायु में दो गुणो में स्पर्श इसका स्वाभाविक गुण है और शब्द इसका नैमित्तक (आकाश का स्वाभाविक) गुण है, अग्नि में रूप आकर्पणता स्योगता अप्सारणता उष्णता उसके स्वाभाविक गुण है और स्पर्श और शब्द इसके नैमित्तिक गुण है जो (आकाश और वायु के सयोग से आये और जो उनके स्वाभाविक गुण थे) जल में रस और शीतत्व तो उसके स्वाभाविक गुण है और रूप स्पर्श और शब्द (अग्नि वायु और आकाश के सयोग से आये जो उनके स्वाभाविक गुण है) इसके नैमित्तक गुण है। इसी प्रकार पृथ्वी मे केवल गध तो उसका स्वाभाविक गुण है और रस, रूप, स्पर्श और शब्द इसके नैमित्तक गुण हैं (जो जल, अग्नि वायु और आकाश के सयोग से आये और जो उनके स्वाभाविक गुण हैं)

स्वाभाविक गुण भी दो प्रकार के हैं एक तो मुख्य गुण और दूसरे साधारण। आकाश का मुख्य स्वाभाविक गुण केवल एक है और वह शब्द। साधारण स्वाभाविक गुण 'पोल' है। वायु का मुख्य स्वाभाविक गुण केवल एक स्पर्श है साधारण गुण कुछ नहीं। अग्नि के मुख्य स्वाभाविक गुण रूप सयोगता और आकर्पणता तीन तो सूक्ष्म भूती अग्नि के रूप मे होवे है और उष्णता, वियोगता और अप्सार्णता तीन स्थूल भूती अग्नि के रूप म होते है और 'वेग' और प्रवाह, साधारण गुण होवे है, और जल म रस और शीतता दो गुण तो मुख्य स्वाभाविक होते है 'द्रवत्व और स्नेह' साधारण गुण होते है। पृथ्वी म मुख्य स्वाभाविक गुण गध होता है और साधारण स्वाभाविक गुण कठोरत्व, गुरुत्व होवे हैं।

अब पच भूतों की याली व्याख्या करते है :—

आकाश सबसे सूक्ष्म पदार्थ है। उसमे पोल और अवकाश होता है और जिसमे निकलने और प्रवेश करने की क्षमता होती

है। सबसे सूक्ष्म होने के कारण चारों शेष भूतों में यह सुविधा से प्रवेश कर लेता है। इसका मुख्य स्वाभाविक गुण केवल एक शब्द ही होता है साधारण स्वाभाविक गुण पोल होता है, नैमित्तिक गुण कुछ नहीं होता इसमें कोई दूसरा पदार्थ न प्रवेश कर सकता है और नहीं व्यापक हो सकता है। परन्तु इसके संयोग में आकर अन्य भूत मिश्रणता अवश्य कर सकते हैं। आकाश को आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ईथर (Ether) के नाम से पुकारा है।

वायु एक क्रिया हीन सूक्ष्म द्रावक पदार्थ है जो पृथ्वी के चारों ओर ५० मील की ऊंचाई में लिपटा हुआ है। यह पदार्थ दबाने से दबने वाला और लचकीला होता है। वायु मंडल में वायु का घनत्व भूस्थल पर पृथ्वी से छूती हुई वायु की तह में ऊपर की तहों की अपेक्षा में अधिक होता है। ज्यों २ ऊपर को जाइये वायु का घनत्व वेगसा होता चला जायगा। पृथ्वी पर से केवल २ ही मील की ऊंचाई पर जाने से मनुष्यों को स्वांस लेने में बाधा प्रतीत होने लगती है। वायु भूस्थल पर स्वछन्द रूप से चारों ओर बहती है परन्तु इसमें गति की उत्पत्ति अग्नि की उष्णता से ही होती है जैसे जहां भी कहीं प्राकृतिक वेगों से अधिक उष्णता उत्पन्न हो जाती हैं वहीं पर वायु उष्णता के कारण हलकी होकर ऊपर उठने लगती है और इस ऊपर के उठने की क्रिया से ही चारों ओर से वायु उस स्थान की ओर बहने लग जाता है। इसी को वायु का गतिवान होना कहते हैं। ठीक इसी प्राकृतिक नियम के सिद्धान्त पर—भारतीय वैज्ञानिकों ने हवन और होली के कृत्रिम साधनों का अविष्कार किया था जिससे चाहे जब और जिस स्थान पर प्रज्वलित अग्नि के एक ढेर या अंगीठी में भूस्थल पर रखकर वायु मंडल के किसी स्थान में कृत्रिम उष्णता की उत्पत्ति करके अशुद्ध वायु को ऊपर फेंक कर चारों ओर की शुद्ध वायु को वहाँ पर खींच लिया जाता था। वायु सूक्ष्म भूतों अग्नि के

परमाणुओं में मिलकर उनको स्थूल अग्नि (भौतिक अग्नि) में परिणत कर देती है और भौतिक अग्नि के परमाणुओं से मिलकर अग्नि की उष्णता को अति तीव्र कर देती है। सूक्ष्म भूती जल के परमाणुओं में (अग्नि के सहयोग से) मिलकर स्थूल भूती जल (भौतिक जल) में परिणित कर देती हैं। भौतिक जल के परमाणुओं में मिलकर जल की शीतता को अति तीव्र कर देती है। अग्नि का सबसे सूक्ष्म रूप 'सूक्ष्म भूती अग्नि' है जिसको पंच भूती अग्नि भी कहा जाता है। इस रूप में अग्नि केवल अग्नि भूत के परमाणुओं (त्रसरेणुओं) में ही होती है इसमें आकाश और वायु का समावेश नहीं हुआ रहता। इसी अग्नि को आधुनिक काल में 'बिजली' या 'विद्युत' (Electricity) करके माना जाता है। इस सूक्ष्म भूती अग्नि के तीन मुख्य स्वाभाविक गुण होते हैं जैसा पीछे बता चुके हैं रूप, संयोगता और आकर्षणता। इन तीनों गुणों में सबसे बड़े महत्व के गुण रूप और संयोगता हैं। यह भूस्थल पर जितने पार्थिव और जलीय पदार्थ हैं उनके परमाणुओं में मिलकर संयोगता उत्पन्न करके उन पदार्थों में रूप प्रदान करती है। तीसरा गुण आकर्षण इसके पंच भूती परमाणुओं में आपस में होता है जिसके कारण यह सूक्ष्म भूती अग्नि के परमाणु एक स्थान से दूसरे स्थान के परमाणुओं को अपनी ओर आकर्षण कर लेते हैं। जैसा आगे विस्तृत प्रकार से वर्णन करके बताया जावेगा यह आकर्षणता का गुण इस सूक्ष्म भूती अग्नि के परमाणुओं में पार्थिव और जलीय पदार्थों के परमाणुओं की 'संयोगता' के टूटने पर (प्राकृतिक या मनुष्यकृत साधनों से दोनों प्रकार से) जागृत होता है या यों समझ लीजिये कि यह परमाणुओं की शक्ति जो आकर्षण शक्ति है वह पार्थिव और जलीय पदार्थों के परमाणुओं में वास्तविक में जोड़ने के हेतु उनमें संयोगता उत्पन्न करने में परिणित हुई रहती है। जब किन्हीं साधनों से यह संयोगता तोड़ डाली जाती है तो यह शक्ति अपने वास्तविक

रूप आकर्षणता में आ जाती है। उपरोक्त गुण तो सूक्ष्म अग्नि (विद्युत) के हैं। जब सूक्ष्म अग्नि मे आकाश और वायु समावेश हो जाते हैं तो यह सूक्ष्म अग्नि तुरन्त स्थूल अथवा भौतिक अग्नि में परिणित हो जाती है (इस रूप में अग्नि को महा भूती अग्नि कहते हैं)। इस अवस्था मे इसके मुख्य स्वाभाविक गुण उष्णता वियोगता और अस्पर्शणता आ जाते हैं जो सूक्ष्म अग्नि के गुणों से विपरीत हैं। जितने स्थूल पदार्थ रूपवान हैं और दिखाई पडते हैं इन सब में अग्नि सूक्ष्म रूप में (विद्युत रूप मे) संयोगता किए हुए और व्यापक होती है। इस सूक्ष्म अग्नि की पदार्थों के परमाणुओं की संयोगता को हम आगे इस सिद्धान्त को पूर्णत' समझाने के हेतु 'पक्के टाके की जुडाई' या पक्की जुडाई के नाम से सम्बोधित करेंगे। सूक्ष्म भूती अग्नि की उत्पत्ति चार विधियो से होती है और स्थूल भूती (भौतिक) अग्नि की उत्पत्ति पाच विधियों से होती है। इन विधिया के विवरण आगे दिए जायेंगे। भौतिक अग्नि अपनी उष्णता के गुण को तो अपने सा र प्रारभ मे अपनी समाप्ति तक रखती है। वास्तिव वता म भौतिक अग्नि का स्थिवर उष्णता के ही गुण से पहिचाना जाता है। सर्व प्रथम यह भौतिक अग्नि पार्थिव और जलीय पदार्थों के सम्पर्क में आने पर उनमें अपनी उष्णता क रूप में समावेश करके पदार्थ के अवयवों में जो सूक्ष्म अग्नि वहाँ पहले से व्यापक रहकर उनमें संयोगिता किए रखती है उस संयोगता को आघात पहुचाती है। ज्यों ज्यों उष्णता बढ़ती जाती है त्यों त्यों संयोगता टूटती जाती है और ज्यों ज्यों संयोगता टूटती जाती है त्यों त्यों सूक्ष्म अग्नि के परमाणु स्थूल भौतिक (भौतिक) अग्नि के परमाणुओं में परिणित होते चले जाते हैं। यहा तक कि एक समय ऐसा आ जाता है कि पदार्थ के परमाणुओं की संयोगता पूर्णत नष्ट हो जाती है और सूक्ष्म अग्नि पूर्णत स्थूल (भौतिक) अग्नि म परिणित हो जाती है। उष्णता बहुत वेग से व्यापिक

हो जाती है पदार्थ का 'दहन' हो जाता है और पार्थिव और जलीय परमाणुओं की छिन्न भिन्नता हो जाती है और भौतिक अग्नि इस समय कभी कभी प्रज्वलित अग्नि का रूप धारण करके जलती दिखाई देने लगता है। इस अवस्था में इस भौतिक अग्नि की उष्णता का तापमान बहुत ऊंचा हो जाता है और उसके दोनों शेष स्वाभाविक गुणों 'वियोगता' और 'असारणता' का उद्गार हो जाता है। यही प्रज्वलित रूप भौतिक अग्नि का 'आलोप' अथवा रोशनी' कह कर पुकारा जाता है। इससे जलती हुई भौतिक अग्नि का भास्वर रूप जो केवल दहन के समय उत्पन्न होता है यह पदार्थों के प्रमाणुओं की 'संयोगता' को 'वियोगता' और 'असारणता' से नष्ट करके उनके भीतर समावेश हुए सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं के भौतिक अग्नि में परिणित होने का कारण होता है और केवल तभी तक रहता है जबतक भौतिक अग्नि को सूक्ष्म अग्नि के प्रमाणु मिलते रहते हैं या सरल शब्दों में या कह लीजिये कि जबतक प्रज्वलित अग्नि के जलने वाले पदार्थ मिलते रहते हैं जैसे काष्ट या तेल इत्यादि। जब इन पदार्थों का प्रज्वलित अग्नि को मिलना बन्द हो जाता है तो अग्नि शान्ति हो जाती है और लोप होकर उसके परमाणु भी सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं के समान पृथ्वी में समावेश कर जाते हैं। भौतिक प्रज्वलित अग्नि के दहन को वायु का संसर्ग और अधिकता से देने पर इसकी उष्णता का तापमान और अधिक बढ़ जाता है और उसकी दहन शक्ति और अधिक ऊंची हो जाती है।

जल—के स्वाभाविक गुण 'रस' और शीतता होते हैं इसके अतिरिक्त उसके साधारण स्वाभाविक गुण 'द्रावता' और स्निग्धता और तरलता होते हैं जिसके कारण यह ऊंचे स्थान से नीचे स्थान की ओर बहता रहता है। इन गुणों के अतिरिक्त इसमें पार्थिव पदार्थों के परमाणुओं में एक प्रकार की 'संयोगता'

प्रदान करने का गुण भी होता है। यह जल की संयोगता कच्ची संयोगता होती है 'सूक्ष्म अग्नि' की पक्की संयोगता के समान पुष्ट नहीं—होती। सूक्ष्म अग्नि की संयोगता तो जितने पार्थिव और जलीय दीखने वाले स्थूल पदार्थ हैं उन सबके परमाणुओं में स्थाई रूप से होती है। परन्तु साथ साथ यह जल के परमाणुओं की सयोगता भी केवल पार्थिव पदार्थों के परमाणुओं में अनस्थाई रूप में होती है। इस जल से उत्पन्न करी हुई 'संयोगता' को हम अपने इस विवरण में 'कच्चे टांके की जुड़ाई' या 'कच्ची जुड़ाई' के नाम से संबोधित करेंगे। पार्थिव पदार्थों में दोनों प्रकार की 'संयोगता' उनके परमाणुओं में मौजूद रहती है (सूक्ष्म अग्नि की संयोगता और जल संयोगता) केवल पदार्थों में श्रेणी के अनुकूल यह दो प्रकार की संयोगता में न्यूनाधिक होती है जैसे धातु आदि खनिज पदार्थों में अग्नि की संयोगता (पक्की जुड़ाई) अधिक होती है और जल संयोगता (कच्ची जुड़ाई) थोड़ी होती है परन्तु इसके प्रतिकूल-काष्ट और फल आदि वनास्पतिक पदार्थों में जल संयोगता (कच्ची जुड़ाई) अधिक और अग्नि की संयोगता (पक्की जुड़ाई) थोड़ी होती है। इन पदार्थों की 'संयोगता' को तोड़ने के दो प्रकार के साधन होते हैं एक तो पदार्थ को नष्ट करके उसके परमाणुओं को छिन्न-भिन्न करके और दूसरा पदार्थ को विना नष्ट करे उसमें से सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं किन्हीं विशेष प्रयोगों से खैंच कर बाहर निकाल कर। पहिला साधन पदार्थ को दहन करके जलाना या गलाना, सड़ाना दो कार्यों से पूर्ण किया जाता है और दूसरा साधन विद्युत प्राप्ति की चार विधियों में से किसी भी एक विधि का प्रयोग करके पूर्ण किया जाता है जैसा आगे वर्णन किया जा रहा है।

प्रथम साधन में पदार्थ की नष्टता अग्नि (भौतिक अग्नि) से दहन करके या जल से गला, सड़ाकर की जाती है। अग्नि के

दहन से जैसा पीछे बता चुके हैं दोनो प्रकार की 'संयोगता' (पक्की और कच्ची जुड़ाई) पदार्थों के परमाणुओं की खुल जाती है। जल में पदार्थ को गलाने से साधारणतः कच्ची जुड़ाई (जल की संयोगता) खुल जाती है अथवा जल पदार्थ के परमाणुओं में समावेश करके उनकी जल संयोगता को नष्ट कर देता है। परमाणुओं को छिन्न भिन्न कर देता है और जल के परमाणुओं को अपने में मिला लेता है सूक्ष्म अग्नि की संयोगता परमाणुओं में ज्यों की त्यों बनी रहती है। केवल जब जल अम्लिक विलियन (Acidic Liquids) के रूप में प्रयोग किया जाता है जैसे बैट्री आदि में तो पक्की जुड़ाई पर भी केवल थोड़ी सी मात्रा में आघात पहुचता है।

जल के सूक्ष्म भूती परमाणु सर्व प्रथम निरे जल भूती परमाणु (त्रिसरेणु) ही होते हैं जो अति सूक्ष्म होते हैं। जब जब इन सूक्ष्म भूती जल परमाणुओं में आकाश और वायु सम्मिलित हो जाते हैं तो यह सूक्ष्म जल परमाणु की एक जलीय वायु बन जाती है प्रतीत होता है कि आधुनिक वैज्ञानिक जिसको हाइड्रोजन (Hydrogen gas) कह कर पुकारते हैं वह यही पदार्थ है। जब इस जलीय वायु में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु और मिल जाते हैं तो पंचमहा भूती जल के परमाणु बन जाते हैं। इस भौतिक जल के स्वाभाविक गुण उपर बताये हुए भौतिक जल की उत्पत्ति के साथ २ उत्पन्न हो जाते हैं। जल में एक विशेष गुण यह होता है कि यह केवल एक सीमित तापक्रम में ही अपने वास्तविक सरल रूप में रहता है (३२ अंश फैरनहीट से लेकर २९२ अंश फैरनहीट तक की सीमा के अंतरगत) इधर २१२ अंश की उष्णता से अधिक उष्णता हो जाने पर यह वाष्प रूप में परिणित हो जाता है और इधर ३२ अंश की उष्णता से कम उष्णता होने पर यह बर्फ के रूप में परणित हो जाता है

परन्तु जल के स्वाभाविक गुण इसकी तीनों अवस्थाओं में (वाष्पीय, तरल, स्थूल) ज्यूँ के त्यूँ रहते हैं।

पृथ्वी—सब भूतों से स्थूल पदार्थ है जिसके अंतरगत न्यूनाधिक मात्रों में अन्य चारो भूत व्यापिक रहते हैं। पृथ्वी का मुख्य स्वाभाविक गुण 'गंध' है। साधारण स्वाभाविक गुण 'कठोरत्व और गुरुत्व' है और नैमित्तक गुण सब जल, अग्नि वायु और आकाश के चारों भूतों में रहने वाले इनके (स्वाभाविक) गुण होते हैं। पृथ्वी के पदार्थों के परमाणुओं में जैसा जल के विवरण में बताया जा चुका है। सूक्ष्म अग्नि की और जल की बनी हुई दोनों प्रकार की 'संयोगता' होती है। यह दोनों प्रकार की संयोगता मिली जुली होती हैं। खनिज पदार्थों में अग्नि की संयोगता अधिक और जल की संयोगता कम परिमाण में होती है परन्तु काष्ट, फल, अन्नादि पदार्थों में इसके विपरीत जल की संयोगता अधिकता में और अग्नि की संयोगता कम परिमाण में होती है। यह संयोगता (विद्योतत्ति की विशेष विधि को छोड़ते हुए) भौतिक अग्नि से पदार्थ को दहन करके क्षणों में पदार्थ की नष्टता करके तोड़ी जा सकती है और पदार्थ को गला सड़ा कर धीरे २ पदार्थ की नष्टता करके जल से तोड़ी जा सकती है। यही दो साधन पदार्थों की नष्टता के भारतीय वैज्ञानिकों ने निश्चित किये हैं। यहां पर एक विशेष बात यह बता देते हैं कि जितनी भूस्थल पर गंदगी मनुष्यों और इनके पालतू जानवरों के शरीरों से उत्पन्न होती हैं उन सब में पार्थिव पदार्थों के अंश होते हैं और यह पार्थिव पदार्थ के अवयव ही हैं जो विषों में परिणित होते हैं। यही कारण है कि इन गंदगियों से प्रायः दुर्गन्ध होती है। यही कारण इस बात का भी है कि पदार्थों को सुरक्षित रखने के हेतु अग्नि, वायु और जल के समकालीन संपर्क को छोड़कर रखने का आदेश दिया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य यह है कि जल को या तो पदार्थ के संपर्क से हटाकर रखो जिससे इस पदार्थ की

संयोगता विसर्जन न कर डाले (गड़ा सड़ा न दे) और या वायु और अग्नि में से एक तत्व को निकालकर जल को शक्तिहीन करके रखो जिससे यह पूर्णत जल की किया न कर सके।

पृथ्वी के परमाणु सबसे स्थूल होने के कारण किसी दूसरे पदार्थ में न प्रवेश ही कर सकते हैं और न व्यापिक ही हो सकते हैं। केवल मिश्रण रूप में यह जल और वायु में मिल सकते है। जल में मिल कर जल को गन्दा बना देते है। और वायु में मिल कर वायु को आंधी का रूप दे देते है।

सूक्ष्म अग्नि के मुख्य स्वाभाविक गुण जैसा पीछे बता चुके हैं 'रूप' और 'संयोगता' होती है। सूक्ष्म अग्नि जिस पदार्थ में व्यापक नही होती उसमें रूप (दीखने की क्षमता) नही होता जैसे वायु और आकाश में जो दोनों अग्नि से सूक्ष्म भूत हैं। अग्नि से स्थूल केवल दो ही भूत होते है जल और पृथ्वी यही कारण है कि केवल यही दोनों दिखाई देते है। अग्नि दोनों ही अवस्थाओ में सूक्ष्म भूता अथवा स्थूल भूती अवस्थाओं में प्रज्वलित अग्नि की अवस्था के अतिरिक्त हर समय स्वय अदृष्य ही बनी रहती है परन्तु आश्चर्य जनक बात यह है कि उन पार्थिव और जलीय पदार्थों को जिनके परमाणुओं की संयोगता किये रहती है और जिनमें वह व्यापक रहती है उनको रूप प्रदान किये रहती है अथवा दृष्यमान बनाये रखती है। यह अग्नि का अद्भुत लीला का रहस्य इस लेख को पूरा पढ़ लेने से स्वय समझ में आ जायगा

विद्युत (बिजली) क्या वस्तु है।

विद्युत (बिजली) सूक्ष्म अग्नि ही है जिसमें आकाश और वायु की व्याप्ति नहीं हुई होती। इसके मुख्य स्वाभाविक गुण जैसा पीछे बता आये हैं रूप और संयोगता होती है। और जब किन्हीं मनुष्य कृत साधनों से इन सूक्ष्म भूतों अग्नि के परमाणुओं की संयोगता को नष्ट कर दिया जाता है तो यह संयोगता

शक्ति आकर्षणता में परिणित हो जाती है जो विद्युत का मुख्य स्वाभाविक गुण है। भूस्थल पर जितने पार्थिव और जलीय पदार्थ रूपमान दिखाई देते हैं सब में यह विद्युत (सूक्ष्म मूर्ती अग्नि के परमाणु) हर जगह और हर समय व्यापक रहते हैं। इन पदार्थों के परमाणुओं में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु बांधने का कार्य करते हैं इसी कारण यह पृथ्वी और जल के सूक्ष्म अदृश्य परमाणु इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं से बँधकर उनकी संयो शक्ति से ही स्थूल बड़े और रूपमान बन जाते हैं। सूक्ष्म अग्नि के परमाणु बंधकता या संयोगतामें ठीक 'सीमेन्ट' के समान कार्य करते हैं जैसे सीमेन्ट रेत और रोड़ी के अनन्त परमाणुओं को जोड़कर इनमें संयोगता उत्पन्न कर देता है। अग्नि का मुख्य भंडार पृथ्वी है जिस पर हम रहते हैं और *नियमानुकूल होना भी* चाहिये। सूर्यचक क्योंकि यह सबसे बड़ा रूपमान पदार्थ है (इस कारण इसकी संयोगता में सबसे अधिक मात्रा में सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को कार्य करते रहना चाहिये)

सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को जब भी आकाश और वायु के सूक्ष्म मूर्ती परमाणुओं से संयोगित कर दिया जायेगा तो यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु तुरन्त भौतिक अग्नि के परमाणुओं में (उष्णता में) परिणित हो गये हैं परन्तु भौतिक अग्नि के परमाणुओं को सूक्ष्म अग्निके परमाणुओं म परिणित नहीं किया जा सकता जिसका संभवत: कारण यह है कि भौतिक अग्नि के परमाणुओं में से आकाश और वायु के परमाणुओं को अलग नहीं किया जा सकता। इन सूक्ष्म अग्नि (विद्युत) के परमाणुओं में पार्थिव और जल के पदार्थों में संयोगता करने में इन सूक्ष्म मूर्ती अग्नि के परमाणुओं का वास्तविक मुख्य गुण आकर्षणता आलोप रहता है केवल थोड़ी सी आकर्षणता फिर भी मौजूद रहती है जो बड़े पदार्थ में रहने वाले अग्नि के परमाणु समुदाय में छोटे पदार्थ के परमाणु समुदाय के प्रति

रहती है। इसके अतिरिक्त इन परमाणुओं की आकर्षणता की सब शक्ति पार्थिव या जलीय पदार्थोंके परमाणुओंकी संयोगता करने में लगी रहती है। पर जब भी किसी भी मनुष्यकृत विद्युत उत्पत्ति करने वाले साधनों से (जो साधारण चार प्रकार के होते हैं जिनकी विधियों का पूर्ण विवरण आगे किया जावेगा) इस संयोगता को छेड़ा गया या पृथ्वी और जल के बँधे हुए परमाणुओंको हिलाया गया तो यह सूक्ष्म अग्निके परमाणु बड़ी वेगता से अपना वास्तविक गुण आकर्षणता धारण कर लेते हैं और उस दशा में यह बाहर से अपनेसे छोटे पदार्थों के सूक्ष्म अग्निके समान परमाणुओं को अपनी ओर (अपने पदार्थ की ओर) आकर्षण करने लग जाते हैं। और अपने से बड़े पदार्थों के सूक्ष्म अग्नि के समान परमाणुओं द्वारा उन पदार्थों की ओर स्वयं आकर्षित होने लग जाते हैं। क्योंकि यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं में आकर्षण शक्ति आपसमें परमाणुओंसे परमाणुओं में होती है। इस परमाणु संयोगता का कार्य जो सूक्ष्म अग्नि के परमाणु इन पृथ्वी या जल के पदार्थों के कणों में समावेश करके कर रहे थे उस कार्य (संयोगता कार्य) से छुटकारा दिलाने के यही चार विश्व विख्यात प्रयोग हैं जो वास्तविकता में विद्युत उत्पन्न करने के प्रयोग ही हैं। यह चार निम्नलिखित प्रयोग वह है जिनसे पदार्थों के भीतर से सूक्ष्म भूती अग्नि के परमाणु बिना पदार्थ को नष्ट किये हुये केवल संयोगता शक्ति की ही नष्टता करके (बिना उष्णता के प्रयोग में लाये) निकाल लिये जाते हैं और निकालने में उनको आकाश और वायु के संसर्ग से बचाकर रक्खा जाता है जिससे वे भौतिक अग्नि में परिणित न हो जावें।

(१) रगड़ के प्रयोग से (Electricity By friction)

(२) रासायनिक प्रयोग से (Electricity By Batteries)

(३) दो विभिन्न धातुओं के जोड़ पर उष्णता प्रयोग से (Electricity By Thermal process)

(४) चंुबकीय प्रभाव से (Electricity By Magnet)

पहिले तीन प्रकार के प्रयोगों में पार्थिव पदार्थों के उन परमाणुओं को नष्ट कर दिया जाता है जिनकी सयोगता में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु लगे हुए थे। इस नष्टता का परिणाम यह होता है कि उनमें लगे हुए सूक्ष्म अग्नि के परमाणु जो सयोगता कार्य कर रहे थे उन पार्थिव परमाणुओं की नष्टता हो जाने पर संयोगता कार्य से मुक्त हो कर तुरन्त अपनी वास्तविक शक्ति आकर्षण' को धारण कर लेते हैं जिसके कारण खैंचा तानी आरम्भ हो जाती है दूसरे शब्दों में विद्युत की धारा (Electric Current) वहने लगती है। चौथे प्रकार के प्रयोग में पार्थिव पदार्थ के परमाणुओंकी नष्टता नहीं की जातीएव उन सूक्ष्म अग्निके परमाणुओं को जो उसमें सयोगता का कार्य करने में लगे रहते हैं। (उनमें से कुछ को) उनको एक विशेष विद्युत उत्पादक यन्त्र के चबुकीय प्रभाव द्वारा शक्ति शाली आकर्षण (सयोगता का कार्य करते ही करते) डाला जाता है और अपने स्थान से हिला दिया जाता है। यह चबुकीय प्रभाव वास्तविकता में विद्युत के आकर्षण शक्ति का ही एक प्रकार का प्रभाव है जिसका पूर्ण विवरण आगे करेंगे। ज्यों ही यह प्रभाव कृत्रिम प्रयोगों से इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं पर डाल कर उनको थोडा झटका मिलता है त्योंही उनमें से कुछ थोडे से परमाणु सयोगता कार्य को छोड़ कर अपना वास्तविक गुण आकर्षणता धारण कर लेते हैं। यह चार प्रकार के विद्युत उत्पादक प्रयोग है जिनसे विद्युत की उत्पत्ति की जाती है। अब यहाँ से सूक्ष्म अग्नि (विद्युत) के परमाणुओं का वर्णन थोडा रोक देते हैं और भौतिक अग्नि का वर्णन लिये लेते है। उपरोक्त चार प्रकार के प्रयोगों से तो सूक्ष्म अग्नि के परमाणु ठंडे के ठंडे बिना उष्णता के प्रयोग में लाये और बिना पार्थिव पदार्थ को नष्ट किये निकाल लिये जाते है परन्तु पांचवा प्रकार इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को पार्थिव (और जल्दी)

पदार्थों से निकालने का उन पदार्थों की प्रज्वलित अग्नि से नष्टता करके निकालने से होता है में अवर इस पाचवे प्रकार के प्रयोग से पहिले चार प्रकारो से यह होता है कि इसमे यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु तुरन्त भौतिक अग्नि मे परणित हो जाते हैं और प्रज्वलित अग्नि मे मिल जाते हैं और पहिले चार प्रकार के प्रयोगों में पदार्थों में नष्टता नहीं होती और सूक्ष्म अग्नि के परमाणु सूक्ष्म अग्नि के ही रूप मे स्थिर रहते हैं जैसा पीछे बताया जा चुका है कि सूक्ष्म भूती अग्नि में केवल अग्नि भूत के ही परमाणु शुद्ध रूप में कार्य करते हैं और इन्हीं का नाम विद्युत या बिजली है।

स्थूल भूती या महाभूती अग्नि के परमाणुओं में वायु और आकाश के परमाणु व्यापक हो जाते हैं। जिस कारण से सूक्ष्म अग्नि के परमाणु तत्काल भौतिक अग्नि में परणित हो जाते हैं। सयोगता के स्थान पर वियोगता आ जाती है। आकर्षणता के स्थान पर अपसारणता आ जाती है और उष्णता जो भौतिक अग्निका विशेष गुण है ही वह तो भला आ ही जाता है। आलोप (रोशनी) केवल भौतिक अग्नि की प्रज्वलता की अवस्था में ही उत्पन्न होता है जब सूक्ष्म अग्नि के परमाणु भौतिक अग्नि के परमाणुओं में परणित होते हुए होते हैं।

सूक्ष्म अग्नि की दो अवस्थाएँ होती हैं एक वह अवस्था जिसमें सूक्ष्म अग्नि के परमाणु केवल पदार्थों में (पार्थिव और जलाय पदार्थों मे) उनके परमाणुओं की सयोगता करने मे सलग्न रहते हैं और दूसरी वह अवस्था जिसमें यह परमाणु सयोगता के कायसे हटाकर आकर्षणता में लगा दिये जाते हैं। इसी प्रकार भौतिक अग्नि की भी दो अवस्थाएँ होती हैं। एक तो केवल 'उष्णता रूपी' अवस्था होती है जिसमें केवल उष्णता की उत्पत्ति हो जाती है और जिस पदार्थ में भी यह उष्णता समावेश हुई होती है उसमें केवल परमाणुओं में अपसारणता और वियोगता का

प्रभाव उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करती और दूसरी 'दहन अवस्था' जिसमें भौतिक अग्नि प्रज्वलित रूप धारण कर लेती है।

ज्योंही इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को वायु का संसर्ग मिलता है (आकाश वायु मे व्यापिक ही होता है) त्योंही यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु उष्ण होकर अपने पहिले स्वाभाविक गुणों को (संयोगता और आकर्षणता) का परित्याग कर डालते हैं और भौतिक अग्नि के गुण (वियोगता और अपसार्णता) धारण कर लेते हैं। और इसी क्षण से भौतिक अग्नि की उत्पत्ति मानी जाती है। केवल उष्णता भी भौतिक अग्नि की प्रथम अवस्था का रूप है। यद्यपि यही उष्णता भौतिक अग्नि का मुख्य स्वाभाविक गुण भी है क्योंकि उष्णता म थोडे परिमाण में प्रज्वलित भौतिक अग्नि के सब गुण मौजूद रहते हैं। जितनी कम मात्रा की उष्णता होगी उतने ही मंद परिमाण में भौतिक अग्नि के सब गुण उस उष्णता मे होंगे और जितनी अधिक मात्रा म उष्णता होगी उतने ही तीव्र परिमाण मे भौतिक अग्नि के गुण उसमें होंगे। भौतिक अग्नि की प्रथम अवस्था (उष्णता अवस्था) में यह आवश्यक नहीं कि उष्णता के साथ २ दूसरी दहन' या प्रज्वलित अवस्था भी मौजूद रहे परन्तु इसके विपरीत भौतिक अग्नि की दूसरी अवस्था (दहन या प्रज्वलित अवस्था) में पहिली अवस्था (उष्णता) का रहना परमावश्यक और अनिवार्य है। प्रथम अवस्था (उष्णता अवस्था) से दूसरी अवस्था (दहन या प्रज्वलित अवस्था) मे भौतिक अग्नि के परमाणुओं का परिणित हो जाने का निर्भर केवल उस पार्थिव पदार्थ की बनावट के प्रकार पर है जिसमें वह उष्णता के रूप में प्रवेश कर बैठी है कि वह पदार्थ किस प्रकार का है। यदि वह पदार्थ खनिज प्रकार की पृथ्वी या लोहा पीतल आदि धातु का है (जिसमें अग्नि के संयोगता अधिक मात्रा में होती है और जल की संयोगता कम

मात्रा में होती है) तो दूसरी अवस्था (दहन या प्रज्वलित अवस्था) उत्पन्न होने में बहुत देर लगेगी जब तक उष्णता की मात्रा इतनी न बढ जावे कि उस संयोगता को नष्ट कर दे और यदि पदार्थ काष्ठ आदि वानस्पतिक पदार्थों में से है (जिसके परमाणुओं में सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं की हुई संयोगता केवल बहुत थोडी सी मात्रा मे होती है और जल की संयोगता अधिक मात्रा मे होती है) तो दूसरी अवस्था (दहन या प्रज्वलित अवस्था) की उत्पत्ति होने में बहुत कम देर लगेगी। क्योंकि जहां उष्णता का तापक्रम उस संयोगता को तोडने वाली मात्रा पर पहुँचा कि दहन क्रिया उत्पन्न हुई।

पार्थिव पदार्थ वैसे तो सैकडों प्रकार के होते हैं परन्तु हम उन सबको दो श्रेणियों मे विभाजित करते हैं एक तो खनिज पदार्थ जिनमें सब प्रकार की धातुएँ लोहा पीतल, रांगा इत्यादि और पत्थर, मिट्टी इत्यादि सब आ जाते हैं और दूसरे वानस्पतिक पदार्थ जिसमें सर्व प्रकार के काष्ठ, धातु, वृक्ष, अन्न, फल जीवधारियों के शरीर, हड्डी, मांस आदि पदार्थ आ जाते हैं। यह पीछे भली प्रकार बताया जा चुका है कि जैसे सूक्ष्म अग्नि के परमाणु पार्थिव और जलीय पदार्थों के परमाणुओं मे संयोगता करके रखते हैं उसी प्रकार थोडी सी मात्रा मे जल भी अपनी तरलता के आधार पर उन परमाणुओं में संयोगता करके रखता है। खनिज पदार्थों लोहा इत्यादि मे अग्नि के परमाणुओं की संयोगता अधिक परिमाण में और जल के परमाणुओं की संयोगता केवल कहीं २ और वह भी नाम मात्र ही होती है। इसके प्रतिकूल वानस्पतिक पदार्थों में अग्नि के परमाणुओं की संयोगता बहुत अल्प मात्रा में होती है केवल जल के परमाणुओं की संयोगता अधिक होती है। यही कारण है कि काष्ठ आदि पदार्थों से सूक्ष्म अग्नि रूपी विद्युत परमाणु नहीं निकाले जा सकते हैं परन्तु लोहे आदि धातुओं में से निकाले जा सकते हैं

और यही कारण है कि लोहे आदि धातुएँ विद्युत चालक (Electric Conductor) होती हैं और काष्ठ आदि नहा जैसा पीछे बताया जा चुका है भौतिक अग्नि पदार्थों को दोनों प्रकार की सयोगताओं को तुरन्त नष्ट कर डालती है परन्तु जल बहुत धीरे २ करता है। दहन में भौतिक अग्नि अपने भौतिक अग्नि परमाणुओं को और सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को तुरन्त भौतिक अग्नि के परमाणुओं म परिणित करती हुई दोनों प्रकार की अग्नि के परमाणुओं को पदार्थों में से निकाल लेती है और अपने में सम्मिलित कर लेती है जिसके कारण इस प्रज्वलित अग्नि की तीव्रता अधिक प्रबल हो जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि यह भौतिक अग्नि फिर दहन को और अधिक शक्ति से करने लग जाती है इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि का परिमाण बढ़ता ही चला जाता है जबतक इसको दहनशील पदार्थों का सम्पर्क मिलता रहता है या कह लीजिए कि जबतक इसको नष्टता के लिए पार्थिव पदार्थ मिलते रहते हैं। जब सपर्क टूट जाता है या कृत्रिम साधनों से तोड़ दिया जाता है तो यह प्रज्वलित अग्नि स्वय शान्त हो जाती और इसके परमाणु सूक्ष्म में लोप हो जाते हैं। भौतिक अग्नि जल के परमाणुओं को भी तुरन्त अपनी उष्णता की शक्ति से वायु में परिणित करके वायु मडल में विचरा देती है।

भौतिक अग्नि की उत्पत्ति पाच प्रकार के प्रयोगों मे की जा सकती है।

(१) सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को केवल वायु संसर्ग में लाने से—जैसे मोटरों के इञ्जिनों और बिजली के चूल्हों में किया जाता है।

(२) दो पदार्थों को आपस की रगड़ देने से या चोट देने से जैसे सान का पत्थर, सिगरेट लाइटर (Cigarette Lighter)

दो बासों की आपस की रगड़ से जंगलों में आग लग जाती है। रेल के पहियों में आग लग जाती है।

(३) रसायणिक प्रयोगों से—जैसे गंधक के तेजाब में पानी मिलाने से, बे बुझे चूने में पानी मिलाने से, गंधक का तेजाब शक्कर पर डालने से और गंधक+नौसादर+लौचून को मिश्रित करने पर।

(४) सूर्य की किरणों को आतशी शीशे आदि से एकत्रित करने से।

(५) अन्य भौतिक अग्नि से।

सूक्ष्म अग्नि की उत्पत्ति करने के चार प्रकार के प्रयोग पीछे बताए जा चुके हैं।—भौतिक अग्नि की उत्पत्ति उपरोक्त पांचों विधियों में से किसी से भी की जा सकती है। भौतिक अग्नि की उपरोक्त प्रथम अवस्था (उष्णता की अवस्था) से दहन की दूसरी अवस्था में परिणित हो जाने के सिद्धांत पर ही अग्नि शस्त्र, कारतूस और दीप शलाका आदि वस्तुओं को बनाया गया। सर्व प्रथम प्रयोग नं०२ के आधार पर दो पदार्थों में आपस में रगड़ या चोट देकर अल्प मात्रा में क्षणिक उष्णता उत्पन्न कर ली जाती है और उसके संसर्ग में कोई ऐसा दहन शील पदार्थ रखा जाता है कि जिसमें केवल उस क्षणिक उष्णता से ही दूसरी अवस्था की दहन या प्रज्वलता उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिये दीप शलाका ले लीजिये। इनमें बहुत नरम प्रकार के काष्ठ की शलाकाएं बनाई जाती हैं और उनको रसायणिक पदार्थों से दहन शील वस्तुओं में शोषित करके सुखा लिया जाता है फिर इनके एक सिरे पर ऐसे मसाले लगाये जाते हैं जिनका दहन तापक्रम बहुत नीचा हो (केवल ६२ अंश सैन्टीग्रेड के लगभग हो) जैसे फास्फोरस (हड्डियों में रहने वाला एक पदार्थ), क्लोरेट-आफ पोटास (पोटास और क्लोरिन का एक यौगिक पदार्थ) फुल्मीनेट आफ मर्करी (जो विभिन्न नाइट्रेटों को एलकोहोल में संयोगित करके बनाया जाता है। यह तीनों पदार्थ कृत्रिम रसायणिक पदार्थ हैं जो केवल ६३°

सैन्टीग्रेड की उष्णता पर दहन करने लगते हैं। इन तीनों पदार्थों में से कोई सा एक शलाकाओं में सिरों पर लगाया जाता है। उष्णता केवल रेतीले कागज पर शलाका को रगड़ने से उत्पन्न हो हो जाती हैं फिर उस अल्प कालिक और अल्प मात्रा की उष्णता से इस मसाले में दहन हो जाता है और उसमें शलाका का काष्ठ अग्नि पकड़ लेता है जिससे वह शलाका थोड़ी देर तक प्रज्वलित अग्नि को बनाये रखती है। यद्यपि शलाका के काष्ठका दहन तापक्रम २५० अंश सैन्टीग्रेड का होता है परन्तु फिर भी अग्नि पकड़ लेने का कारण यह है कि जब अग्नि एकबार प्रज्वलित हो जाती है तो उसका तापमान (उष्णता) स्वयं बढ़कर ऊँचा हो जाया करता है। ६३ अंश का तापमान तो केवल मसाले में प्रज्वलित अग्नि के उत्पन्न करने के लिये था। जब एक बार प्रज्वलित अग्नि उत्पन्न हो गई तो फिर भौतिक अग्नि की बढ़ी हुई उष्णता उस काष्ठ शलाका को भी प्रज्वलित अग्नि के दहन क्षेत्र में सम्मिलित करके उसका भी दहन कर डालती है। इस बात की यहाँ पर और व्याख्या करेंगे कि केवल शलाका के रेतीले कागज पर रगड़ने मात्र से ही ६३ अंश सैं० ग्रे० की उष्णता कैसे उत्पन्न हो जाती है।

दो पदार्थों की रगड़ से बड़ी ऊँचे तापमान की उष्णता की उत्पत्ति हो सकती है। जैसे रेलों के पहियों में तेल की कमी के कारण और कमी ब्रेक के लोहों के रगड़ने से प्रज्वलित अग्नि उत्पन्न हो जाती है। चाकू छुरों के सान पर पैनाने के समय बड़ी वेगता से चिनगारियां उड़ती हैं। एक पदार्थ पर दूसरे पदार्थ की चोट मारने या रगड़ने से उष्णता रूपी अग्नि और विद्युत उत्पन्न होने के सिद्धान्तों की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में की जाती है।

पदार्थों से (पार्थिविक और जलीय पदार्थों से क्योंकि अग्नि इन दो ही प्रकार के पदार्थों में व्यापक रहती है।) सूक्ष्म अग्नि के परमाणु जो उन पदार्थों के परमाणुओं में संयोगता कार्य

करते हुए होते हैं दो प्रकार की रगड़ों से बाहर निकाले जा सकते हैं और दोनों प्रकार की रगड़ों में इन परमाणुओं की नष्टता अवश्य होती है। जिनमें से यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु खींच कर बाहर निकाले जाते हैं परन्तु अन्तर यह होता है कि एक प्रकार की रगड़ से तो इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं पर आघात नहीं पहुंचाई जाती केवल इनको अपने स्थान पर हिला ही दिया जाता है जिससे इनकी संयोगता थोड़ी टूट जाती है और इस पर उन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं का ज्यों का त्यों आकर्षण की शक्ति से निकल जाने का मार्ग विद्युत चालक द्रव्यों के तार लगा कर दे दिया जाता है। इस सूक्ष्म रूप में यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु जैसा पीछे बताया जा चुका है (सूक्ष्म अग्नि करन के चार प्रकार के प्रयोगों में से पहिले प्रयोगमें) विद्युत धारा के रूप में निकलते हैं। यह प्रथम प्रकार की रगड़ या तो शीशे और रेशम से होती है या रबड़ या सैलोलाइट और उन से होती है। इन पदार्थों में विशेषता यह है कि दोनों पदार्थ शीशा और रबड़ अधिक चिकने होने के कारण उष्णता की उन्नति को रगड़ाई में रोकते हैं और दोनों ही रगड़ने वाले पदार्थ रेशम और उन अति नरम होते हैं जिससे रगड़ाई पूर्ण रूप से होती है। दूसरी प्रकार की रगड़में अलक्षित रगड़ या चोट देकर पदार्थ के परमाणुओं को नष्ट करने के साथ साथ इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं पर भी आघात पहुंचाई जाती है और वह आघात इतनी तीव्रता और आकस्मिकता से दी जाती है कि इन सूक्ष्म अग्निके परमाणुओं को भाग निकलने की सुविधा नहीं मिलती और इतने ही में इनमें वायु संसर्ग कर जाती है जिस कारण तुरन्त यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु अपनी संयोगता और आकर्षणता गुणों को खो बैठते हैं और उष्णता ग्रहण कर लेते हैं। उष्णता लिये हुए यह भौतिक अग्निमें परिणत हुए परमाणु उसी पदार्थमें बने रहते हैं। सूक्ष्म अग्नि की प्रथम अवस्था में वो इसके सूक्ष्म पर-

माणु संयोगना को लिए हुए होते हैं । सूक्ष्म अग्नि की दूसरी अवस्था में ही यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु सयोगता को तोडकर आकर्पणता का गुण धारण कर लेते हैं । और इसी अवस्था में यह परमाणु उपरोक्त चार प्रकार के प्रयोगों से पदार्थों से बाहर निकाले जाते है और विद्युत के नाम से सबोधित किये जाते हैं। इन चारों में से किसी प्रयोग से यह अग्नि के सूक्ष्म परमाणु पदार्थों से बाहर निकाले जा सकते हैं ज्योंही यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु पदार्थों के भीतर सयोगता का कार्य करते हुए विशेष प्रयोगों द्वारा (चार प्रकार के प्रयोगों से जिनका वर्णन कर चुके हैं) हिला दिए जाते हैं और ज्योंही इस हिलाने की क्रियाओं से उनकी सयोगता टूटती है त्योंहीं इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं में उनके वास्तविक गुण आकर्पणता का तत्काल उद्गार हो जाता है । और क्योंकि जैसा पहिले बता चुके हैं कि इन परमाणुओं में आकर्पणता आपस में परमाणुओं से परमाणुओं में होती है अथवा एक बडे पदार्थ के भीतर भरे हुए यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को यदि छोटे पदार्थके भरे हुए परमाणुओंके ससर्ग में ले आया जावेगा तो बडे पदार्थ के अधिक मात्रा वाले परमाणु छोटे पदार्थके थोडी मात्रा वाले परमाणुओं को अपनी ओर आकर्पित कर लेंगे । इसी सिद्धात पर यदि इन पदार्थों को जिनकी सयोगता नष्ट करके सूक्ष्म परमाणुओं को हिला दिया गया है पृथ्वीसे धातुओं के तार द्वारा जो विद्युत चालक (Electric Conductor) होते हैं ससर्गित कर दिया जावेगा तो स्वय आकर्पित होकर पृथ्वीमें लोप हो जायंगे (क्योंकि पृथ्वी सूक्ष्म अग्नि परमाणुओंका सबसे बडा भडार है) और या यह पदार्थ अपने से छोटे पदार्थों से सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को उनमें सयोगता रहते हुए भी उनसे नष्ट करते हुए भी अपने ओर खैंच लेते हैं । साराश में यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु विद्युत चालक धातुओं के तारों में जिनके द्वारा यह खेंचने खिचाने की क्रिया होती है उसमें यह

आकर्षणता के प्रभाव से दूसरे पदार्थ के सूक्ष्म अग्नि के परमा-णुओं को अपनी ओर खेंचते रहते हैं।

सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को विद्युत के रूप में पदार्थोंसे निकालने के चारों प्रकार के प्रयोगों में से केवल दूसरे (रसायनिक प्रयोगों) अथवा बैट्री इत्यादि के साधनों से और चौथे (जिसमें चुम्बकीय प्रभाव से विद्युत परमाणु निकाले जाते हैं) दो ही प्रयोगों से विद्योत्पत्ति बहुधा की जाती है। दूसरे प्रयोग में बैट्री से काम लिया जाता है और चौथे प्रयोग में 'डाइनामो' (Dynamo)से। 'बैट्री' और 'डाइनामो' दोनों को विद्युतोत्पत्ति के कार्य में भूमि से जल निकालने वाले सकशन और फोर्स पम्प (Suction and Force Pump) समझ लीजिये। जल निकालने वाले पम्प भूमि से आकर्षण द्वारा जल को ऊपर खेंचते हैं और फिर उसको भूमि से ऊपर दो मंजिले मकानों पर फेंकते हैं परन्तु 'बैट्री' और 'डाइनामो' अपने भीतर के तारों में उत्पन्न हुई आकर्षण शक्ति से इन सूक्ष्म अग्नि अथवा विद्युत के परमाणुओं को एक पदार्थ से खेंचकर निकालते हैं और दूसरे पदार्थ में उनको फेंकते रहते हैं। जब धातुओं (लोहा, ताँबा इत्यादि) के तारोंके द्वारा बैट्री या डाइनामों लगाकर उनमें विद्युत परमाणुओं (सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं) को आकर्षण किया जाता है तो उन धातुओं के तारों के भीतर आकर्षण के प्रभाव से यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु बाहरी ओर से बैट्री और डाइनामो की ओर बड़ी वेगगति से प्रवाहन करते हैं। और इस तार के भीतर सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं के प्रवाहन से ही एक दूसरी आश्चर्यजनक क्रिया की उत्पत्ति हो जाती है कि इन तारों के चहुँ-ओर चुम्बकीय प्रभावकी गोलाकार और वृत्ताकार छल्लों के रूप में उत्पत्ति हो जाती है। यह चुम्बकीय प्रभाव भी सूक्ष्म भूती अग्नि के परमाणुओं की आकर्षणता का ही उपप्रभाव होता है। सारांश में पदार्थों के परमाणुओं की संयोगता टूटते ही क्षण से सूक्ष्म

अग्नि के परमाणुओं में दूसरे समान परमाणुओं को आकर्षण करने के मुख्य स्वाभाविक गुण की, जैसा कि पीछे बताया जा चुका है उत्पत्ति हो जाती है और जिस भी पदार्थ के भीतर इन अग्नि के परमाणुओं की गति (चालकता) होती है उसके चहुँ-ओर चंबुकीय प्रभाव की उत्पत्ति साथ २ ही हो जाती है। यह तारों के चहुँओर उत्पन्न हुआ हुआ चंबुकीय प्रभाव ही वह शक्ति है जिसका डाइनामो (Dynamo) के भीतर पदार्थों के परमाणुओं की 'संयोगता' को तोड़ने और सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं में आकर्षणता उत्पन्न करने में प्रयोग किया गया था।

वास्तविकता में यह तारों के चहुँओर गोलाकार रूप में चंबुकीय (मकनातीसी) प्रभाव ही वह शक्ति है जिससे पार्थिव और जलीय पदार्थों के सूक्ष्म परमाणुओं में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु 'संयोगता' किये रखते हैं। जब सूक्ष्म अग्नि के परमाणु प्रथम अवस्था से (संयोगता की अवस्था से) निकल कर दूसरी अवस्था में आते हैं तो (विद्युत उत्पत्ति में चौथे प्रकार के प्रयोग द्वारा) इसी चंबुकीय शक्ति का प्रयोग किया जाता है (डाइनामो इत्यादि के भीतर) और यह चंबुकीय (मकनातीसी) प्रभाव डाइनामो इत्यादि में या तो किसी स्थान पर विद्युत उत्पन्न करके उससे इकट्ठा किया जाता है और या लोहेकी धातुसे बनाये हुए स्थाई चंबुक (Permanent Magnet) का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रभाव को पदार्थों के संयोगता किये हुए परमाणुओं पर डालकर इनकी संयोगता ढीली कर दी जाती है (जैसे गोंद से जुड़ा हुआ और सुखाया हुआ कागज फिर जल में गला देने से खुल जाता है) और इस चंबुकीय प्रभाव को डालने के साथ २ थोड़ा सा दोनों पदार्थों में से एक को (चंबुक प्रभाव वाला या दूसरा परमाणु वाला) हिला दिया जाता है। इन दो ही क्रियाओंसे प्रयोग नं ४ से विद्युतकी उत्पत्ति हो जाती है (एक तो चंबुकीय प्रभाव को पदार्थ के परमाणुओं पर डालना

और दूसरा थोड़ा सा हिलाना। चंवुकीय प्रभाव से (हिलाने की क्रिया के साथ २) विद्युत धारा की उत्पत्ति और प्रवाहन और विद्युत उत्पत्ति और प्रवाहन से चवुकीय प्रभाव की उत्पत्ति यह एक से दूसरे की उत्पत्ति होना अनिवार्य है। यह सकलि बरावर चलती रहेगी जब तक कि हर स्थान पर विद्युत उत्पत्ति की दोनो क्रियाओं में से किसी एक में बाधा न आ जावे। यदि किसी स्थान पर एक धातुक पदार्थ को चवुकीय प्रभाव मे लो ले आया जावे परन्तु उसको हिलाया न जावे तो परिणाम यह होगा कि उस पदार्थ में विद्युतोत्पत्ति होना रुक जायगी और केवल चंवुकीय प्रभाव से दूसरे पदार्थ में भी चवुकीय प्रभाव ही उत्पन्न होकर रह जायगा। अथवा एकचंवुक से दूसरा चंवुक बन जायगा। यहाँ यह बात और बता देना चाहते हैं कि लोहा ही ऐसा पदार्थ क्यों है जिसको चवुक (मक्नातीस) सबसे अधिकता से आकर्षित करता है धातुएँ न्यूनाधिक परिणाम मे सब ही चवुकीय प्रभाव मे आनकर चंवुकीय गुण धारण कर लेती है। (धातुओं में सूक्ष्म अग्नि क परमाणुओं की अधिक्ता और विशेष बनावट के कारण) परन्तु लोहे (और इस्पात) में एक तो सूक्ष्म अग्नि के परमाणु बहुत अधिक्ता मे होते हैं और दूसरे इस धातु में इस चवुकीय प्रभाव को शोषण कर लेने की क्षमता होती है जो किसी भी अन्य धातु मे नहीं होती।

उपरोक्त चार प्रकार के प्रयोग जो सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं (विद्युत) के पदार्थों में से निकालने के हितार्थ आधुनिक काल मे प्रचलित हैं उनका आविष्कार एक बहुत सर्व साधारण सिद्धात पर निर्धारित है कि जब किसी पदार्थ के कणों में रमी हुई किसी वस्तु को उस पदार्थ से निकालना हुआ करता है तो चार ही प्रकार के प्रयोगों से उसको निकाला जा सकता है।
(i) पदार्थ को तोड़कर। (ii) पदार्थ को जल में गलाकर। (iii) पदार्थ को जला कर। (iv) किसी यत्र से खैंचकर। ठीक

यही चार विधियां इन सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को पदार्थों से निकाल कर विश्व में विद्युत उत्पत्ति करने के कृत्रिम साधनों द्वारा करने के लिये प्रयोग में लाई गई।

सबसे बड़ा चंबुक (Magnet) पृथ्वी के भीतर प्रकृति ने उत्पन्न किया हुआ है जिसकी स्थित्व को विभिन्न आकृतियों में विभिन्न वैज्ञानिकों ने माना है। लेखक इस चंबुक को एक सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं के छल्ले (Electric Ring)के रूप में मानता है जो पृथ्वी के भीतर इसकी भूमध्य रेखा से थोड़ा सा पूर्व से पश्चिम की ओर झुका हुआ है। यह छल्ला भूस्थल से नीचे पृथ्वी में उपस्थित है और इसमें सूक्ष्म अग्नि के परमाणु गोलाकार चक्र में घूमते रहते हैं। यही विद्युत प्रवाह का छल्ला पृथ्वी पर उत्तरीय चंबुकीय प्रभाव की उत्पत्ति करता है। और इसी के प्रभाव से दिशा सूचक यंत्र (क़ुतुबनुमा) बनाये जाते हैं।

विद्योतपत्ति के उपरोक्त चार प्रकार के प्रयोगों में से पहिले तीन प्रकार के प्रयोगों में तो सूक्ष्म अग्नि के परमाणु पदार्थों के भीतर से ही निकाले जाते हैं परन्तु चौथे चंबुकीय प्रयोग में (जो डाइनामो से विद्युत बनाने के काम में आता है) यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु पृथ्वी से खैंचकर निकाले जाते हैं और पदार्थ को केवल इन परमाणुओं को अपने परमाणुओ की आकर्षण शक्ति से खैंचकर निकालने का साधन मात्र बनाया जाता है। पृथ्वी जो अग्नि के सूक्ष्म परमाणुओं का अथाह भंडार है उसमें से यह परमाणु आकर्षणता द्वारा निकाले जाते हैं और यदि कार्य की पूर्णता पर कुछ विशेष बचते हैं उनको पृथ्वी में ही लौटा दिया जाता है। यह सूक्ष्म अग्नि के परमाणु निकालने का कार्य बन्द चक्र के तारों में (Closed Circuit Wires) तो डाइनामो के ऊपर लगे हुए भू संसर्ग तार (Earth Wire) से निकाले जाते हैं और वहां से उलटे कार्य क्षेत्रों मेंभेजे जाते है और खुले चक्र के तारोंमें (Open Circuit Wires)

कार्य क्षेत्रों में लगे हुये भू संसर्ग तारों से (Earth Wires) के द्वारा पृथ्वी से निकाले जाते हैं। अब भौतिक अग्नि (स्थूल अग्नि के परमाणुओं का उल्लेख करते हैं।

भौतिक अग्नि के परमाणुओं की भी दो अवस्थाएँ होती हैं। दूसरी दहन या प्रज्वलित अवस्था होती है जिसका वर्णन विस्तृत रूप में पीछे किया जा चुका है प्रथम (उष्णता अवस्था) अवस्था मे भौतिक अग्नि के परमाणु पीछे बताई हुई पाच प्रकार की विधियों से उत्पन्न किये जा सकते हैं। इन पांच विधियों में से सर्व प्रथम विधि में तो यह सूक्ष्म अग्नि (विद्यु त) के परमाणुओं में वायु संसर्गता देकर उत्पन्न किये जाते हैं। दूसरी और तीसरी विधियों मे सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को ही पहिले पार्थिव और जलीय पदार्थों से बाहर निकला जाता है और फिर उनमे वायु की संसर्गता देकर उनको उष्णता रूपी भौतिक अग्नि में परणित कर दिया जाता है। चौथी और पाचवीं विधियों मे यह परमाणु भौतिक अग्निके परमाणुओं के ही रूप मे सूर्य और अन्य भौतिक अग्नि से ले लिये जाते है भौतिक प्रज्वलित (दूसरी अवस्था वाली) अग्नि भी उष्णता के समान इसी प्रकार पाचों विधियों से उत्पन्न की जाती है। प्रथम विधि में विद्यु त परमाणुओं से दूसरी और तीसरी विधियों में पदार्थों से सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं को निकाल कर और उनको वायु संसर्गता से भौतिक अग्नि में परणित करके। चौथी और पाचवीं विधियों में सूर्य और अन्य भौतिक अग्नि के सम्पर्क से यह प्रज्वलित भौतिक अग्नि उत्पन्न की जा सकती है। सूर्य भौतिक प्रज्वलित अग्नि का प्राकृतिक भंडार है जिसमें प्रज्वलित भौतिक अग्नि बड़े अथाह परिमाण में हर समय बनी रहती है और इस सूर्य की प्रज्वलित अग्नि से भूस्थल पर जीवधारियों के पालन पोषण के हितार्थ अनेक प्रकार की क्रियाएँ प्रकृति की ओर से सदा होती रहती हैं और जीवधारियों को इसी से आलोप (रोशनी) और उष्णता दो आवश्यक वस्तुएँ

मिलती रहती है। सूर्य के सम्बन्ध में केवल हम इतना ही कह सकते हैं कि यह भौतिक और सूक्ष्म दोनों प्रकार की अग्नि या प्राकृतिक भंडार है जो मनुष्यों को प्रकृति की एक महान उपकारी देन है। इसमें इस अथाह अग्नि की मात्रा कहां से आती है और कैसे आती है कम से कम हमारे लिए तो अभी तक यह एक रहस्य मय विषय ही है। इतना अवश्य कह सकते हैं कि इसमें सूक्ष्म अग्नि के परमाणु है जिनसे उत्पन्न हुई आकर्षणता से पृथ्वी आदि लोकों को आधार दिया हुआ है और यह भी कह सकते हैं इसमें अथाह परिमाण में भौतिक अग्नि के परमाणु भी हैं जिससे भूस्थल पर जीवधारियों को रोशनी और उष्णता दोनों मिलती है। हम सूर्य की क्रियाओं के सम्बन्ध में न तो आधुनिक वैज्ञानिकों के सौ या दो सौ वर्षों के निकाले हुए नवीन सिद्धांतों को मानने के लिए तय्यार हैं और न अभी तक प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों की तोड़ी मरोड़ी हुई तलछट को। संभव है कि शीघ्र ही हमको इन सूर्य की क्रियाओं की सत्यता का पता भी चल जावे। भूले हुए पथिक को जंगल में किसी जगह बैठकर समय बिताना उसके अंधाधुंद किसी भी मार्ग पर चले चलने से अधिक लाभकारी होता है। अब प्रज्वलित अग्नि के विशेष गुणों का उल्लेख करते हैं। यह प्रज्वलित अग्नि अपने दहन के रूप की अवस्था में तीव्र उष्णता और प्रज्वलित भास्वर रूप धारण कर लेती है (भास्वर रूप सूर्य के रूप के समान ही होता है।) प्रज्वलित अवस्था में भौतिक अग्नि बिना किसी पदार्थ के (जिसके भीतर से सूक्ष्म अग्नि के परमाणु निकाल कर अपने स्थित को रखती है) दहन और नष्टता करे नहीं रहती। यह नियम सूर्य की प्राकृतिक अग्नि का छोड़कर सब प्रकार की प्रज्वलित भौतिक अग्नि पर लागू होता है। जिस भी पदार्थ का दहन भौतिक अग्नि करती है उसके पार्थिव या जलीय परमाणुओं को तो छिन्न भिन्न कर देती है और उनमें से सूक्ष्म

अग्नि के परमाणुओं को निकाल कर भौतिक अग्नि के परमाणुओं में परणित कर लेती है और अपने में मिला लेती है और इनके सहारे अपने रूप को अधिक भीषण और प्रचंड बना लेती है। विज्ञान क्षेत्रों में काष्ठ, कोयले और विभिन्न प्रकार के जलने वाले तेलों के प्रयोग से प्रज्वलित अग्नि का विभिन्न कार्यों के लिए स्थिर रक्खा जाता है। भौतिक प्रज्वलित अग्नि अधिक वायु के संसर्ग से और भी तीव्रता धारण कर लेती है। वायुके संसर्ग से दहन में शीघ्रता आ जाती है और दहन होने वाले पदार्थों के संयोग से स्थिरता उत्पन्न होती है सारांश में दहन के लिए दोनों वस्तुयें परमावश्यक है। दाहक पदार्थ और साथ २ वायु दोनों में से किसी भी एक के न मिलने से प्रज्वलित अग्नि शान्त हो जाती है और कुछ समय के लिए फिर पहिली अवस्था (उष्णता अवस्था) में परणित होकर स्थिर रहती है फिर लोप हो जाती है और अग्नि के परमाणु अपने भंडार पृथ्वी में प्रवेश कर जाते हैं।

अग्नि के परमाणु परिचालक होते हैं। उनको विद्युत चालक (Conductor) कहते हैं और पृथ्वी और जल के पदार्थों में अग्नि की परिचालकता को विद्युत अग्नि का 'प्रवेश परिचालकता' (Conduction) कहते हैं। जलीय पदार्थों में भी दोनों प्रकार की अग्नि के परमाणु ठीक पृथ्वी के पदार्थों के समान परिचालक होते हैं केवल अंतर इतना है कि प्रज्वलित भौतिक अग्नि के परमाणु में जल में नहीं रहते और केवल उष्णता में परिणित हो जाते हैं। धातुयें (लोहा, ताँबा, चाँदी, पीतल आदि) केवल विद्युत या अग्नि परिचालक इस कारण से होती है कि इनमें सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं की मात्रा बहुत अधिकता में होती है और जल परमाणुओं की संयोगता केवल नाम मात्र ही होती है। दूसरे धातुओं की भीतरी बनावट और घनत्व न तो इतनी ठोस ही होती है कि उसमें विद्युत या उष्णता के परमाणुओं के घुसने का अवकाश ही न मिले, जैसे काँच, रबड़ आदि में और न इतनी ढीली और कोरी होती है कि वायु प्रवेश करती रहे जैसे काष्ट आदि पदार्थों में। काष्ट इत्यादि पदार्थों के विद्युत और उष्णता परिचालक न होने के कारण यह है कि पहले तो सूक्ष्म अग्नि के परमाणु इन पदार्थों में धातुओं की अपेक्षा से कम होते हैं और जल की संयोगता अधिक होती है। दूसरे कुछ पदार्थो के परमाणुओं का घनत्व तो इतना ठोस और घना है कि उनमें अग्नि के परमाणुओं को प्रवेशता के लिये अवकाश नहीं मिलता दूसरे प्रकार के पदार्थों में जैसे काष्ट, कागज आदि हैं। परमाणुओं का घनत्व इतना ढीला और वेगरा होता है कि उनमें वायु प्रवेश हो जाने के कारण विद्युत संचालन या उष्णता संचालन नहीं होता परन्तु इस दूसरी श्रेणी के पदार्थों में जो विद्युत प्रचालक होते हैं प्रज्वलित अग्नि की प्रदाहनता अधिक होती है।

पार्थिव और जलीय पदार्थों में दोनों प्रकार की अग्नि के परमाणु (विद्युत प्रचालक पदार्थों को छोड़ते हुए) सब में प्रवेश होकर प्रवाहन कर सकते हैं। सूक्ष्म अग्नि अपने सूक्ष्म भूती अग्नि (विद्युत) के रूप में और भौतिक अग्नि अपनी दोनों अवस्थाओं में उष्णता रूप में अथवा प्रज्वलित अग्नि के रूप में। जहाँ पर दोनों प्रकार की अग्नि में दो २ अवस्थाएँ हरेक में होती हैं वहाँ पर दोनों प्रकार की अग्नि में एक २ प्रकार का प्रभाव भी होता है। सूक्ष्म अग्नि में इस प्रभाव को चंबुकीय (मकनातीसी) प्रभाव कहते हैं और भौतिक अग्नि के प्रभाव को आलोप (रोशनी) कहते हैं। इस प्रकार से दोनों प्रकार की अग्नि की चार अवस्थाएँ और दो प्रभाव कुल छैः रूप हो जाते हैं पार्थिव और जलीय पदार्थों में इन दोनों प्रकार के प्रभावों की परिचालकता पर और विचार करना है। सूक्ष्म अग्नि का चंबुकीय प्रभाव पृथ्वी के पदार्थों में केवल इस्पात और लोहे में सबसे अधिक परिचालक होता है और शेष धातुओं में से कुछ में केवल नाम मात्र और शेष पृथ्वी और जलीय पदार्थों में बिलकुल नहीं। आलोप (रोशनी) जो प्रज्वलित अग्नि का प्रभाव है वह साधारणतः पृथ्वी और जल दोनों में प्रवेश नहीं करती परन्तु शक्तिशाली रोशनी (जैसे एक्सरेज़ इत्यादि) बनाने पर हलके परिमाण के पृथ्वी और जल दोनों प्रकार के पदार्थों में प्रवेशण कर जाती हैं।

वायु में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु (विद्युत परमाणु) तो अपने विद्युत रूप में प्रवाहन कर ही नहीं सकते क्योंकि वे वायु के संसर्ग से तुरन्त भौतिक अग्नि के परमाणुओं में परिणित हो जाते हैं। सूक्ष्म अग्नि का चंबुकीय प्रभाव बिना किसी प्रकार की रुकावट के वायु में प्रवाहन कर सकता है। भौतिक अग्नि की प्रथम अवस्था में उष्णता के परमाणु वायु में प्रवेश तो कर ही नहीं सकते (क्योंकि वायु अग्नि से सूक्ष्म है) परन्तु

मिश्रण के रूप में वायु में बड़ी सुविधा से परिचालक हो सकते हैं। यह उष्णता के परमाणु वायु में मिलकर दो कार्य करते हैं एक तो वायु के संसर्ग से अपनी उष्णता की तीव्रता को खो वैठते हैं क्योंकि मिश्रण संयोग से उष्णता वायु में चली जाती है और 'दूसरा कार्य यह करते हैं कि जिस स्थान पर यह भौतिक अग्नि की उष्णता वायु में दी जाती है वहाँ पर वायु को उष्ण करके हलकी बना देते हैं जिसके कारण वहाँ की वायु एक गोलाकार कूप बनाती हुई ऊपर को हलकी बनकर चली जाती है और भूस्थल पर से चारो ओर की वायु उस स्थान की ओर प्रवाहन करने लगती है और उस गोलाकार (हलकी वायु के कूप) द्वारा ऊपर वायु मंडल में निकल जाती है जहाँ से शुद्ध वायु चारों ओर नीचे उतर आती है (यही प्रयोग भारतीय वैज्ञानिकों ने भूस्थल की गंदी वायु को शुद्ध करने के लिये काम में लिये हैं। खोज नं० २२ का वृत्तान्त दूसरे प्रकरण में देखिये।) प्रज्वलित अग्नि के परमाणु वायु लगने से अधिक दाहक बन जाते हैं और अपने ही रूप में वायु मे प्रवाहन नहीं कर सकते केवल उष्णता के रूप मे परणित होकर जैसा ऊपर बताया गया है सुविधा पूर्वक प्रवाहन कर सकते हैं। भौतिक अग्नि का प्रभाव अथवा आलोप (रोशनी) वायु में सुविधा से प्रवाहन कर सकती है।

आकाश में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु (विद्युत परिमाण) आकाश के परमाणुओं मे प्रवेश तो आकाश के परम सूक्ष्म होने के कारण कर ही नहीं सकते परन्तु आकाश के परमाणु (*Ether*) के साथ मिश्रित हो कर सुविधा से उसमें परिचालक हो सकते हैं। सूक्ष्म अग्नि का प्रभाव (चतुर्थीय प्रभाव) भी बड़ी सुविधा से आकाश में प्रवाहन कर सकता है। भौतिक अग्नि की दोनो अवस्थाओं के परमाणु आकाश में प्रवाहन नहीं कर सकते। इसी सिद्धान्त पर हमको इस बात मे अभी संशय है कि सूर्य

से उष्णता और आलोप (रोशनी) के परमाणु भौतिक अग्नि के रूप में सूर्य से चलकर पृथ्वी पर नहीं आते हमको प्रतीत पड़ता है कि यह अग्नि के परमाणु संभवतः सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं के रूप में वायु मंडल (जो लगभग ५० मील तक है) के ऊपरी तह तक आते हों और वहाँ से भौतिक अग्नि के परमाणुओं मे परिणत हो जाते हों। इस विषय पर हम इस तृतीय भाग की पुस्तक में कोई बात निर्णय रूप में नहीं कहेंगे। भौतिक अग्नि का प्रभाव आलोप (रोशनी) आकाश में बिना रोक के प्रवाहन कर सकती है।

यह 'अग्नि की महत्वता' पर लेख लिखने में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि इसको सर्व साधारण शिक्षित महानुभाव सरलता से समझ सकें इसी कारण वैज्ञानिक शब्दों और विधियों का प्रयोग नहीं किया गया है। ईश्वर ने सहायता की तो भविष्य में यही अग्नि का सिद्धान्त वैज्ञानिक रूप में लिखेंगे। परन्तु जो आधुनिक वैज्ञानिक इस लेख मे कहीं शङ्का समाधान करना चाहें वे बड़ी प्रसन्नता से लेखक को लिखें यथाशक्ति उत्तर दिया जायगा।

अब द्वितीय प्रकरण अपनी स्वास्थ्य विज्ञान की २७ खोजों पर लिखते हैं। इस प्रकरण में हर खोज की सत्यता की पुष्टि में विस्तृत विवरण दिये जा रहे है।

द्वितीय प्रकरण

भारतीय और पाश्चात्य स्वास्थ्य रक्षक विज्ञान के सिद्धान्तों में कौनसे विज्ञानिक सिद्धान्त हैं ?

स्वास्थ्य रक्षक विज्ञान के क्षेत्र में हम देखते हैं कि विज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ स्वास्थ्य विज्ञान माना जा रहा है जिस में बहुत से सिद्धान्त प्रकृति के पाश्चात्य नियमों की सत्यता के प्रतिकूल हैं। इसी पाश्चात्य विज्ञान को 'मौडर्न स्वास्थ्य विज्ञान' (Modern Health Science) के नाम की उपाधि देकर इसी का विश्व में प्रचार किया जा रहा है। इस आधुनिक स्वास्थ्य रक्षक विज्ञान में अन्य देशों के स्वास्थ्य वैज्ञानिकों को इस विज्ञान की त्रुटियें ज्ञात होती हों या नहीं परन्तु हम भारतीय विज्ञान के अनुयाई—भारत वासी विदेशियों के अनुकरण करने में सब से आगे रहते हुए भी इन त्रुटियों के विरुद्ध वाक्य उठाने से पीछे नहीं रह सकते। कारण इस का हमारे पास हमारे पूर्वजों की प्रदान की हुई सत्य प्राकृतिक विद्या का कुछ अंश अब भी है जिन में प्राकृतिक विज्ञान की सत्यता कूट २ कर भरी हुई है। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में भारतीय विज्ञान के सिद्धान्त अपूर्ण पुराने और रुक्ष माने जाते हों फिर भी वे जिस रूप में भी हैं और जिस दशा में भी विदेशियों के आक्रमणों और अपनी प्रमादधानी से पहुंचे हुए हैं उन में आज भी सत्यता और यथार्थता और अपक्षपात की सुगन्धि आती है और यही कारण है अन्य देशों के वैज्ञानिक भी उन का मान करते हैं।

हम नहीं कहते कि इस आधुनिक पाश्चात्य स्वास्थ्य विज्ञान के सब ही सिद्धान्त असत्य हैं। नहीं कदापि नहीं। इस में बहुत से सिद्धान्त विज्ञानिक नियमों के अनुकूल भी हैं जिन से जनता को लाभ भी होता है। हमारा प्रतिवाद केवल कुछ मुख्य सिद्धान्तों से है जो हमारी विज्ञान दृष्टि कोण से त्रुटि पूर्वित है।

(१) विषैले फैलने वाले स्वास्थ्य नाशक रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण मक्खी, मच्छर और अन्य कीटाणु बता कर केवल हमारे सिद्धान्तानुकूल गन्दगी की निवृत्ति का मनुष्यों के निवास स्थानों से कोई पर्याप्त यत्न न करना। केवल मक्खी, मच्छरों की ही नष्टता करने में लगे रहना और इस के बड़े २ प्रयत्न करने में विश्व का लाखों और करोड़ों रुपया खर्च कर डालना।

(२) मनुष्य समुदायों के रहन सहन वाली बस्तियों के जल और वायु को यथोचित शुद्ध करने या रखने पर कोई विशेष ध्यान न देना। केवल साधारण सी स्वच्छता की क्रियाओं को ही पर्याप्त समझ कर बैठे रहना कि जल वायु से स्वस्थता के ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(३) स्वास्थ नाशक रोगों की उत्पत्ति करने वाले विषों को निर्मूल करने में कोई विशेष प्रयत्न न करना। केवल उत्पन्न हुए रोगों की निवृत्ति में ही विशेष ध्यान रखना। कीटाणुओं के विषोत्पत्ति के कारण होने के लचर सिद्धान्त को ही मानते रहने की हठ रखना और कीटाणु नष्टता की ही विधियों पर अनेक अन्वेषण करते रहना।

(४) रोग ग्रसित (Infected) स्थानों की शुद्धि करने में केवल स्थूल (Solid) और जलीय (Liquid) पदार्थों का ही प्रयोग करना और वायव्य (Gascous) पदार्थों के प्रयोग की ओर कोई ध्यान न देना जो भारत वर्ष में सब से अधिकता में प्रयोगों में प्राचीन काल से अब तक लाये जाते रहे हैं।

विशेषता.—यह चार सिद्धान्त जो आधुनिक स्वास्थ रक्षक विज्ञान में उच्च स्थान लिए हुए हैं न केवल असत्य ही हैं एवं सृष्टि और प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल भी हैं। स्वास्थ विज्ञान में दो सौ वर्ष पहिले तो भारत देश और पाश्चात्य देशों, दोनों की परिस्थिति लग भग एक सी ही थी अथवा विदेशी वैज्ञानिक भी उतने ही अनभिज्ञ थे जितने की हम भारत वासी। अन्तर दोनों में यह था कि भारत के

लिए समय पराधीनता का था और विदेशों का समय स्वाधीनता का था। यद्यपि उस समय में भी भारतीयों के पासपूर्वजों के छोड़े हुए तत्त्व विज्ञानिक सत्यता के सिद्धान्त संस्कृत भाषा में लिखे हुए एक लुटी हुई सम्पत्ति के शेषांक के रूप में मौजूद थे परन्तु जिस घर की वस्तु से स्वय घर वाले ही घृणा करना प्रारम्भ कर दिया करते हैं तो बाहर वाले भी उसका विशेष सत्कार नहीं किया करते इसी से विदेशियों ने भी इन सिद्धान्तों से अपने को वंचित रक्खा। फिर भी जब उन को इस बात का पता चल गया कि विज्ञान का केन्द्र केवल प्राचीन भारत ही था और भारत से ही विज्ञान यूनान देश में गया तब उन विदेशी वैज्ञानिकों ने हमारे संस्कृत के अनेक ग्रन्थों के अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करे। उन अंग्रेजी के अनुवादों को देखने से पता चलता है कि इन संस्कृत की पुस्तकों से अपूर्व विज्ञानिक बातों के ज्ञान की प्राप्ति भी इन विदेशी वैज्ञानिकों ने की और साथ २ उनकी आलोचना भी करते गये जिससे कहीं भारतवासियों को यह लेशमात्र ज्ञान भी न हो जावे कि उन के पूर्वजों की पुस्तकों में इतने महत्त्व की बातें भरी पड़ी हैं। इस के साथ २ अपने पुरुषार्थ के बल पर अनेक प्रकार के अन्वेषन भी करते रहे जिस के कारण अपना एक प्रकार का नया विज्ञान और नये सिद्धान्त बना कर खड़े कर दिये। हमारी परस्थिति इस समय और हीन हो चुकी थी इस कारण हम को भी जितनी समझ आती रही उस से पाश्चात्य सिद्धान्तों को ही भूलसे सर्व श्रेष्ठ मानते रहे। हम को कुछ थोड़े ही समय से इस बात का ज्ञान होना आरम्भ हुआ है कि हमारी संस्कृत की पुस्तकों में बहुत बड़े परिमाण में विज्ञान के सिद्धान्तों के सत्य वृतान्त भरे पड़े हैं। क्यों कि बताता ही कौन। स्वय संस्कृत भाषा से अनविज्ञ रहे और दूसरों ने राजनीति के आधार पर प्रोत्साहन देना उचित न समझा, यहाँ तक कि अंग्रेज अनुवादक भी हम को यही आश्वासन देते रहे कि उन को उन पुस्तकों से कोई विशेष ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। आज जब देश को स्वतन्त्रता मिल चुकी है

म जब इन पुस्तकों की बची बचाई सम्पत्ति में से वैज्ञानिक सिद्धान्तों को पढ़ते हैं और उनके गूढ़ दृष्टि से विचार करते हैं तो हम को तुरन्त बोध हो जाता है कि आज अवनति के समय में भी हमारे विज्ञानिक सिद्धान्तों में उतनी ही सत्यता है जितनी हजारों वर्ष पहले थी और यह कि विदेशियों ने जो अपने सिद्धान्त उन विषयों के सम्बन्ध में अपने अन्वेषनों द्वारा इस दो सौ वर्ष के समय में बनाये हैं उन में से बहुत से सिद्धान्तों में उन्हों ने भूलें की हैं और इसी से वह सिद्धान्त प्राकृतिक सत्य नियमों के प्रतिकूल होने के कारण बहिष्कार करने योग्य हैं। अब हम अपनी २७ स्वास्थ रक्षक विज्ञानिक खोजों को सविस्तार वर्णन करते हैं।

लेखक की स्वास्थ विज्ञान पर २७ खोजें

(१) मनुष्यों के स्वास्थनाशकता का मूल कारण उनके रहन सहन के स्थानों की गन्दगी और दूषित मल हैं जो केवल उन की अज्ञानता और निरोग्य शास्त्र के सत्य नियमों की अनभिज्ञता के कारण उन की असावधानी से उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे शब्दों मे जितने विषैले और फैलने वाले रोग हैं वह सब किसी न किसी गन्दगी से ही उत्पन्न होते हैं और उस गन्दगी की उत्पत्ति का उत्तरदायित्व केवल मनुष्यों पर ही हैं।

यही दूषित और गन्दे पदार्थ समय पर न हटाये जाने की दशा में विषों में परिणित हो जाते हैं और इतने विषैले बन जाते हैं कि मनुष्यों के रहने के स्थानों की जलवायु में मिल कर उनके स्वस्थ शरीर को रोगग्रसित बना देते हैं। इस विषय में जो लोग पाश्चात्य वैज्ञानिकों के नवीन सिद्धान्तों के अनुसार गन्दगी से उत्पन्न

होने वाले रोगों की मक्खी, मच्छर या चूहे आदि कीटाणु और जानवरों से मनुष्यों के स्वास्थनाशक विषों या गन्दगियों की उत्पत्ति मानते हैं वह एक बड़ी भूल कर रहे हैं। इस विषय पर रसिक पाठकों का ध्यान दो बातों की ओर आकर्षित करता हूँ कि हमारे तत्व ज्ञानिक सत्यता के नियम यह बताते हैं कि भूखण्ड पर सब प्रकार के जीव धारियों में केवल मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ जीवधारी है जो स्वेच्छा पूर्वक और स्वतन्त्रता से कार्य (एक नियत समय तक और एक परिमित परिमाण्य के अन्तर्गत) कर सकता है। और इसी कारण मनुष्य ही अपनी स्वेच्छाधीनता से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य कर सकता है। अन्य जीवधारी जिन में मक्खी, मच्छर, कीड़े मकोड़े और हर प्रकार के जानवर आ जाते हैं स्वेच्छा पूर्वक कर्म न कर सकने के कारण प्रकृति के प्रतिकूल कोई भी कार्य नहीं कर सकते। अनिष्ट और अनुचित कार्यों के करने में मनुष्यों का ही हाथ हुआ करता है अतएव अन्य जीवधारियों का नहीं। दूसरी बात यह है भारतीय आरोग्य शास्त्र हजारों ही वर्षों से इस अटल सत्यता के सिद्धान्त को बताता चला आ रहा है कि मिथ्या आहार विहार केवल दो ही मनुष्यों की अस्वस्थता के कारण होते हैं तीसरा कारण नहीं होता। मनुष्यों का अपने रहने सहने के स्थानों की पर्याप्त स्वच्छता का न रखना भी मिथ्या विहार की श्रेणी में आ जाता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों को इस सिद्धान्त को मानने में अभी कुछ समय लगेगा। जैसे सौ वर्ष की हठधर्मी के उपरान्त एटम (Atom) के सूक्ष्म परमाणु एलैक्ट्रन (Electron) केवल सन् १९१३ में एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक की खोज द्वारा माने गये हैं। इस कीटाणु सिद्धान्त को भी पाश्चात्य वैज्ञानिक जब भी मानेंगे तब किसी पाश्चात्य वैज्ञानिक की खोज ही का नाम धरते हुए मानेंगे। इन बातों को देखते हुए भारतीय वैज्ञानिकों को तो इस तत्व विज्ञान से वंचित न रहना चाहिये। हमारे सिद्धान्तानुकूल मनुष्य समुदाय अवश्य ही अपने आप को सब प्रकार के विषों और गन्दगियों से जो रोग उत्पत्ति का वास्तविक कारण हानी हैं सुरक्षित रख सकते हैं। मक्खी, मच्छर आदि कीटाणु तो (जैसा आगे बताया जावेगा) उन विषों और गन्दगियों कि निवृत्ति करने के प्राकृतिक साधन हैं और इनके कार्य मनुष्यों के प्रति सब मित्रता के कार्य होते हैं शत्रुता के नहीं क्योंकि प्रकृति तो इन कीटाणुओं के कार्यों की अध्यक्ष (Controller) है स्वयं मनुष्यों की हितैषी है।

(२) दूषित मल और गन्दगी का एक परिमित मात्रा में मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के रहने के

स्थानों में उत्पन्न होना अनिवार्य है क्योंकि आगे बताई हुई तीनों अवस्थाओं में दूषित और गन्दे मलों की उत्पत्ति मनुष्य जीवन के हितार्थ आवश्यक है और उन की उत्पत्ति को निमूल नहीं किया जा सकता केवल इन दूषित पदार्थों का विनाश उनकी उत्पत्ति के साथ २ ही कर देना और रहने के स्थानों को इन के दूषित प्रभाव से बचाकर रखना ही आरोग्य शास्त्र का मुख्य आदेश है।

इस खोज का रहस्य भली प्रकार से समझने के लिये खोज न० ७ को पहले पढ़ लेना चाहिये जिस से खाद्य पदार्थों की तीन अवस्थाओं का परिचय हो जावे। लेखक ने सर्व प्रकार के खाद्य पदार्थों की तीन अवस्थाएँ मानी हैं। प्रथम अवस्था को खाद्य पदार्थों (अन्न, फल फूल इत्यादि) की उत्पत्ति के समय से लेकर उस समय तक का माना है जब उस पदार्थ को खा लिया जाता है। द्वितीय अवस्था खा लेने के समय से इनको शरीर में पाचन करके विष्टा आदि मलों के रूप में अपने शरीर से बाहर निकालने तक मानी गई है। और तृतीय अवस्था उस की विष्टा बनने के समय से उस विष्टा या मल की पूर्ण निवृत्ति करने के समय तक मानी गई है। यद्यपि इस के उपरान्त भी एक चतुर्थ और अन्तिम अवस्था होती है जो इस विष्टा या मल के परमाणुओं के छिन्न भिन्न हो जाने के समय से उनसे दूसरे पदार्थों की पुनरुत्पत्ति के समय तक रहती है। उस चतुर्थ अवस्था का हम कोई कथन न करेंगे क्योंकि इस समय इस का हमारे स्वास्थ रक्षा के विधान से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अवस्था न० १. में जिस को खाद्य पदार्थों की सुरक्षता की अवस्था कहा जाता है उस में मनुष्यों को अन्न और फलों को एकत्रित करके उन का भण्डार रखना ही पड़ता है। अवस्था न० २. में जिस में अन्न शरीर के भीतर पाचन अवस्था में होता है और अवस्था न० ३. में मनुष्य शरीर से निकले हुए मलमूत्र को थोड़ी बहुत देर तक मनुष्य के रहने के स्थानों में रखना ही पड़ता है और इन में जलवायु और अग्नि तीनों का समकालीन सम्पर्क थोड़ी बहुत मात्रा में हो ही जाता है जिससे गलन और सड़न होकर दूषित विषों की उत्पत्ति हो जाती है। अवस्था न० २ में शीघ्र से शीघ्र खाने को शरीर में पचा कर उस में से गन्दे और दूषित मल को बाहर

निकाल कर अलग करना तो मनुष्य शरीर का काय ही है । अवस्था नं० ३ में मनुष्य और उनके पालतू जानवरों के शरीरों से निकले हुए दूषित मलों को एकत्रित करके नष्ट करने में थोड़ी बहुत देर हो ही जाती है जिससे यह मल और गन्दे पदार्थ जलवायु और अग्नि के समकालीन सम्पर्क में आकर और भी अधिक सड़ जाते हैं और दूषित मलों से विरल मलों में परिणित हो जाते हैं। इस कारण गन्दगी और दूषित पदार्थों की उत्पत्ति को भूस्थल पर न तो बिल्कुल रोका ही जा सकता है और न निर्मूल ही किया जा सकता है परन्तु इनको शीघ्र से शीघ्र नष्ट करके विषैले पदार्थों में परिणित होने से अवश्य रोका जा सकता है और रोकना ही चाहिये । यदि इन गन्दे और दूषित पदार्थों को तत्काल उत्पन्न होते ही नष्ट कर दिया जावे या कम से कम रहने वाले स्थानों से तत्काल हटा कर जङ्गल आदि में लेजाया जावे या फिर नष्ट कर दिया जावे तो यह गन्दे और दूषित पदार्थ विषों में परिणित न हों और जल और वायु को दूषित न कर सकेंगे।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के रहने सहने के स्थानों में गन्दगी की उत्पत्ति को पूर्णतः रोक देना सर्वथा असम्भव है और प्रकृति के नियम के विरुद्ध भी है। हर खाद्य पदार्थ की अवस्था नं० १ में केवल भण्डारों में रखने से भी तीनों तत्वों (अग्नि, जल, वायु) के सम्पर्क में आने के कारण पदार्थों में थोड़ी बहुत क्षीणता हर क्षण होती रहती है । और यही क्षीणता गन्दगी की उत्पत्ति का कारण होती है। क्षीणता का वेग और परिमाण का निर्भर इन पार्थिव पदार्थों की जलवायु और अग्नि की सम्पर्कता की मात्रा के ऊपर होता है। इन तीनों पदार्थों अथवा जलवायु अग्नि के समकालीन सम्पर्क में से किसी भी एक पदार्थ का सम्पर्क हटा दिया जाता है तो पदार्थ का क्षीणता (और गन्दगी की उत्पत्ति) तुरन्त रुक जाती है (इस सुरक्षिता करने के सिद्धान्त का विस्तृत विवरण ग्रन्थ नं० ८ में किया गया है)।

इस के प्रतिकूल द्वितीय अवस्था में जिसमें यह खाद्य पदार्थ शरीर के भीतर पाचन होती हुई दशा में होता है तो क्योंकि हर मनुष्य यही चाहेगा कि उसकी पाचन शक्ति बलिष्ट हो और भोजन शीघ्र से शीघ्र और पूर्णता से पच जाय। इसी कारण से इस अवस्था नं० (२) में बड़ी शीघ्रता से क्षीणता (और साथ साथ गन्दगी का उत्पत्ति) होती है । मनुष्यों के शरीर में पाचन करते समय भी यह पदार्थ (भोजन) अग्नि, जल और वायु तीनों तत्वों के सम्पर्क में लाया जाता है और इस बात का बड़ा ध्यान रक्खा जाता है कि किसी भी कारण से इन तीनों में से किसी एक तत्व का भी सम्पर्क हट न जावे । यदि हट जाता है तो पाचन क्रिया में बाधा पड़ जाती है

(दूसरे शब्दों में गलन सड़न रुक कर स्वरिक्षिता आ जाती है)। इस को ठीक करने के हेतु औषधियों का प्रयोग कराया जाता है और जो तीनों तत्वों में से एक तत्व न्यून हो गया था उस की पूर्ति की जाती है (आगे खोज नं० ७ में बताया जावेगा कि इस अवस्था नं० २. में अग्नि, जल, वायु के ही वैद्यक नाम पित्त, कफ और वायु है)। हर शरीर में स्वस्थता के हितार्थ यह परमावश्यक माना जाता है कि यह तीनों तत्व (तीनों दोष पित्त, कफ, वायु यथोचित मात्रा में बने रहें)। शरीर के भीतर खाद्य पदार्थ (भोजन) के पाचन (गलन सड़न) की शीघ्रता का कारण तीनों तत्वों अथवा अग्नि, जल, वायु (पित्त, कफ, वायु) के ससर्ग के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के गलाने वाले रसों का सम्पर्क भी साथ २ ही होता है। यह भारतीय वैद्यक विज्ञान की बड़ी आश्चर्यजनक और महत्वशील खोज है कि जिस प्राकृतिक नियम से (अग्नि, जल वायु के समकालीन सम्पर्क से) बाहर खाद्य पदार्थों की क्षीणता होती रहती है ठीक उसी सिद्धान्त से शरीर के भीतर भी क्षीणता की क्रिया होती रहती है केवल अन्तर इतना है कि बाहर इस क्रिया को क्षीणता (और साथ २ गदगी की उत्पत्ति) कह कर पुकारा जाता है शरीर के भीतर इसी क्रिया का नाम पाचन (और साथ २ गदगी की उत्पत्ति) के नाम से पुकारा जाता है। श्री जहाँ पर बाहर भण्डार में रक्खे हुए खाद्य पदार्थों की क्षीणता से बचा कर रखने के प्रयोग किये जाते हैं वहाँ पर शरीर के भीतर उसी क्षीणता को अधिक वेग से बढाने के प्रयत्न किये जाते है। इतना सरल और स्पष्ट सिद्धान्त भारतीय विज्ञान के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलेगा।

तृतीय अवस्था में तो शरीरों के भीतर की क्षीणता (पाचनता) से उत्पन्न हुई विष्टा, मल मूत्र को बाहर निकलने पर और अधिकता में सड़ने गलने से बचाने के प्रयोग किये जाते है।

(३) मनुष्यों के स्वास्थ पर उपरोक्त विष दो प्रकार से आक्रमण करते हैं एक तो अपने शरीर ही के भीतर से (यह विष अवस्था नं० २ में स्वयं अपने शरीर की अस्वस्थता के कारण उत्पन्न हुए होते हैं) और दूसरे शरीर के बाहर से (यह विष अवस्था नं० ३ और १ से दूसरे मनुष्यों के कार्यों द्वारा उत्पन्न किये हुए होते हैं)। यह

यथा-शक्ति घटा कर रखना और दूसरे उत्पन्न हुए मलों को उत्पत्ति के साथ-साथ ही नष्ट करते रहना या उन दूषित पदार्थों और मलों को व्याधि रहित करते रहना। तीसरी एक और परमावश्यक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि इन उत्पन्न हुऐ विषों से जल और वायु का सम्पर्क हटा कर रखना जिस से इन विषों के प्रमाणुओं को जलवायु एक स्थान से दूसरे स्थानों पर बहा कर या उड़ा कर न ले जा सकें।

* इस खोज न० ४ में जो तीन प्रकार की विधियें इस कार्य पूर्ति के हेतु वर्णित की जा रही हैं उन में से प्रथम विधि से विषों की उत्पत्ति को यथा शक्ति कम करना है जो गन्दगी में से उत्पन्न होते हैं। इस विधि में अवस्था न० १ में रक्खे हुए खाद्य पदार्थों में से तीनों तत्वों (अग्नि, जल, वायु) में से किसी एक को कृत्रिम साधनों और उपायों से हटा देने से सुरक्षिता आ जाती है। जब सुरक्षिता आ गई तो क्षीणता कम हो गई और साथ २ गन्दगी की उत्पत्ति भी कम हो गई। अवस्था न० ३ में विष्टा आदि गन्दे पदार्थों को मनुष्यों के शरीर से निकलने के समय से ही उस समय तक जब तक उस को गढ़ों में बन्द न कर दिया जाय या अग्नि से भस्म न कर डाला जावे वायु के सम्पर्क को काट कर (अथवा हवा बन्द बक्सों में बन्द करके) रखना और इस की शीघ्र से शीघ्र नष्टता कर देना प्रथम विधि में ही आ जाता है। इन गन्दे पदार्थों अथवा मल विष्टाओं के वायु सम्पर्क के कट जाने से इन गन्दे पदार्थों में क्षीणता (और साथ २ विशेष गन्दगी (सड़न) की उत्पत्ति) रुक जाती है जिस से भूस्थल की जलवायु पर इस की विशेष गन्दगी के विषों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अवस्था न० २ में भी तीनों प्रकार की गन्दगियें जो मनुष्यों के शरीर से निकलती हैं (स्थूल, तरल, वायुवीय) उनके कम करने के भी पर्याप्त साधन उत्पन्न किये जा सकते हैं अथवा स्वस्थ पाचन शक्ति वाले मनुष्यों के शरीरों से यह गन्दे पदार्थ कमी के साथ निकलते हैं।

दूसरी विधि इन उत्पन्न हुए हुए विषों को व्याधि रहित कर देने की है। खोज न० ३ में बताए हुए तीनों अवस्थाओं से उत्पन्न होने वाले विषों को तुरन्त

अगली योग न० १८ में बताए हुए साधनों से नष्ट कर देना चाहिये । जैसे अवस्था न० १ में जो थोड़ा बहुत गन्दगी खाद्य पदार्थों का भण्डार में रखने से उत्पन्न हो गई हो उस को आगे बताए हुए विभिन्न प्रयोगों से शीघ्र से शीघ्र नष्ट कर देना और इसी प्रकार अवस्था न० ३ में जो गन्दगी मनुष्यों के शरीरों से निकलती है उसको उतनी ही मात्रा में परिमित रखने के साधनों का प्रयोग करना चाहिये। अवस्था न० २ में भी मनुष्यों को ऐसे साधनों के प्रयोग करने और कराने चाहिये कि यह अनिवार्य गन्दगी शरीर के भीतर न रुक जावे और शरीर के बाहर सुभीते से निकल जावे। निकलने के उपरान्त जो भी गन्दे पदार्थ शीघ्र नष्ट किये जा सकते हैं उनको तो शीघ्र नष्ट कर देना चाहिये और जो न नष्ट नहीं किये जा सकते हैं उनको हवा बन्द बक्सों में थोड़े समय के लिये बन्द करके एकान्त स्थानों में रख देना चाहिये। गन्दी वायु जो मनुष्यों के शरीर से निकलती है उसकी तो नष्टता साथ २ ही योग न० १८ में बताए हुए 'विशोधन' क्रिया के सिद्धांत पर स्वयं ही होती रहती है। केवल विष्ठा और मूत्र ही इकट्ठा करके रख जा सकते हैं। 'विशोधन' क्रिया को बलिष्ठ बनाने के लिये मनुष्यों के रहन सहन के स्थान खुले होने चाहियें और घरों के भीतर पर्याप्त मात्रा में रोशनी और खुली वायु का संचार होना चाहिये।

तीसरी विधि से जब पहिली दोनों विधियों के प्रयोग में लाने पर भी विष और गंदगी के प्रभाव में कोई न्यूनता न आवे तो मनुष्यों की बसी हुई बस्तियों के जल और वायु को इन के प्रभाव से बचाना चाहिये अन्यथा यह जल और वायु विषाक्त हो जायगे और रोगों की उत्पत्ति अनेक स्थानों में व्यापक हो जावेगी।

(५) स्वास्थनाशक विषों की उत्पत्ति जो भूस्थल पर मनुष्यों के रहने वाली बस्तियों के जल और वायु को विषाक्त करती है वह केवल पार्थिव (वनास्पतिक तथा मासिक पदार्थ जैसे अन्न, फल, फूल, लकड़ी भूसा, मास, अण्डे, पाखाना, पेशाब आदि सब प्रकार के गलने और सड़ने वाले) पदार्थों में शेष तीनों तत्व यानी जल, वायु, अग्नि (आकाश को छोड़ते हुए) के सम-

कालीन (एक साथ) सम्पर्क करने से जो परिवर्तन उत्पन्न होते हैं (जो गलन सड़न उत्पन्न होती हैं) उनकी बढ़ोतरी के बेक़ाबू होजाने से होती है।

इस श्लोक में एक बहुत गूढ़ बात का उद्गार किया गया है कि जल वायु को बिगाड़ने वाले विषों की उत्पत्ति भूस्थल पर कैसे होती है। यह विष मल किया और अन्य विभिन्न प्रकार की गन्दगियों के सड़ने से उत्पन्न होते हैं। गन्दगियां खाद्य और वनस्पतिक पदार्थों में तीनों तत्व (अग्नि, जल वायु) के समकालीन सम्पर्क से उत्पन्न होती हैं जिस के कारण उन पदार्थों की साथ २ खराबी भी होना प्रारम्भ हो जाती है। जैसा पीछे श्लोक न० ४ में बता चुके हैं इस अग्नि जल वायु को खाद्य पदार्थों के सम्पर्क से बिल्कुल नहीं रोका जा सकता है क्योंकि अवस्था न० २ में हर मनुष्य और जीवधारी के शरीर में भोजन के पचने में यह सम्पर्क होता है और उसके कारण अवस्था न० ३ में विष्ठा और दूसरे प्रकार की गन्दगियों का शरीर में से बाहर निकलना भी अनिवार्य है है और अवस्था न० १ में भी थोड़ी बहुत गन्दगी अन्न आदि खाद्य पदार्थों के भण्डारों में रखने से अवश्य ही उत्पन्न हो जाती है। सारांश में तीनों अवस्थाओं में इस गन्दगी की उत्पत्ति को जड़ मूल से नहीं रोका जा सकता। दूसरे शब्दों में यह कह लीजिये कि मनुष्यों और जीवधारियों की जीवन यापन की क्रियाओं के हितार्थ थोड़ा बहुत गन्दगी की उत्पत्ति का होना परमावश्यक है और जिस को रोका नहीं जा सकता। वास्तव में रोकना बढ़ोतरी का होना चाहिये क्योंकि बढ़ोतरी ही विषोत्पत्ति का कारण बन जाती है। इस बढ़ोतरी को रोकने का सिद्धान्त यह है कि तीनों अवस्थाओं की उत्पन्न हुई गन्दगियों की नष्टता साथ २ और स्थान ही करते रहना चाहिये। तीनों तत्वों (अग्नि, जल, वायु) के समकालीन सम्पर्क को (अवस्था न० २ को छोड़कर) अवस्था न० १ और न० ३ में यथाशक्ति बन्द रखना चाहिये जिस के कारण यह गन्दगियें जो बन चुकी हैं वे विशेष सम्पर्क पाकर अधिक न गलें सड़ें और विषों में परिणत न हो जावें। और मनुष्यों के रहने की बस्तियों के जल वायु को विषैला न कर सकें। भारतीय वैज्ञानिकों ने मनुष्यों की स्वास्थ्य रक्षा के हितार्थ केवल जल और वायु की ही शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया है इसी कारण भारतवर्ष में कुवे बनवाने और हवन (यज्ञ) करने के और दीपक जलाने की तीनों प्राचीन प्रथाएँ आज तक चली आ रही हैं। जो मनुष्य के

स्वास्थ रखने के हिताथ तीनों परमावश्यक हैं एक से स्वच्छ जल मिलना है दूसरी और तीसरी से स्वच्छ वायु मिलती है। भारत में बहुत सी स्वास्थ विज्ञानिक क्रियाओं के आपत्ति कालों में हमारे पूर्वजों ने उनको धार्मिक कवच पहिना कर उन प्रथाओं की आक्रमणियों से रक्षा की है। हम अपने उन महानुभावों को किस मुख से धन्यवाद दें।

(६) पदार्थों की गलन और सडन जो जल वायु और अग्नि (५०° से १५०° फ. ह) के समकालीन सम्पर्क से उत्पन्न होती है इन तीनों मे से किसी भी एक तत्व के सम्पर्क को हटा देने से तुरन्त स्वरक्षिता हो जाती है। इस प्राकृतिक नियम का लाभ बहुत से विदेशी वैज्ञानिक हजारों प्रकार की खाद्य वस्तुओं को हवा बन्द टिनों मे बन्द करके बहुत से सुखाकर और बहुत से बर्फ मे दबाकर दूर २ के देशों मे भेज कर उठा रहे हैं।

इस खोज न० ६ का सिद्धात इसी पुस्तक के प्रथम प्रकरण को पढ़ लेने से भली प्रकार समझ में आ जायगा। यहा पर हम इन पार्थिव पदार्थों में तीनों तत्व (अग्नि, जल, वायु) की समकालीन सम्पकता के सिद्धात को सरल शब्दों में पाठकों को समझाने का प्रयत्न करते हैं। सृष्टि में जितने पदार्थ रूपवान (दृष्टि गोचर होने वाले) दिखाई देते हैं वे सब पचभूतों से बने हुए यौगिक पदार्थ हैं और इन में पाचों तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) न्यूनाधिक माना में मौजूद होते हैं। जैसा विस्तृत रूप में प्रथम प्रकरण में बताया जा चुका है इन पाचों भूतों में पाचों भूत एक दूसरे से स्थूल और सूक्ष्म होते चले जाते हैं और हरेक सूक्ष्म तत्व अपने से ऊपर वाले स्थूल तत्व में प्रवेश कर जाता है जैसे सब से सूक्ष्म आकाश, उससे स्थूल वायु उस से स्थूल अग्नि, उस से स्थूल जल और उस से स्थूल (पाचों से स्थूल) पृथ्वी। इस कारण जो खाद्य पदार्थ (फल, अन्न, फूल इत्यादि) हम को दीख पड़ते हैं इन सब में पार्थिव परमाणुओं के साथ २ अन्य चारों तत्वों (जल, अग्नि, वायु और आकाश) के परमाणु भी व्यापिक हैं। वास्तव में वायु में आकाश के परमाणु व्यापिक होते हैं, अग्नि में वायु के

और जल में (तेजभूती) अग्नि के और पृथ्वी में जल के परमाणु व्याप्त रहते हैं। इन पार्थिव और जल के परमाणुओं का पहिले तो (सूक्ष्म रूपी) अग्नि जोड़ कर रखती है और फिर इन अग्नि से जुड़े जुड़ाये स्थूल परमाणुओं को जल के स्थूल अणु जोड़ कर रखते हैं। प्रथम प्रकरण में सूक्ष्म अग्नि के परमाणुओं की जुड़ाई को पक्की जुड़ाई और जल के परमाणुओं की जुड़ाई को कच्ची जुड़ाई के नामों से सम्बोधित किया गया है। अन्न, फल आदि खाद्य पदार्थों में अग्नि के परमाणुओं से की गई पक्की जुड़ाई बहुत न्यून मात्रा में होती है और जल के परमाणुओं से की गई कच्ची जुड़ाई अधिक मात्रा में होती है। जो जब इन फल और अन्न इत्यादि खाद्य पदार्थों के सम्पर्क में जल भी अकेला ले आया जाता है तो तीनों ही तत्वों का सम्पर्क स्वय हो जाता है (क्योंकि जल में सूक्ष्म अग्नि भी व्याप्त है और वायु भी) परन्तु फिर भी अकेले जल के सम्पर्क से 'गलन' क्रिया पूरा कार्य नहीं कर सकती जब तक जल के साथ २ भौतिक अग्नि के रूप में थोड़ी उष्णता भी न हो और साथ २ थोड़ी भौतिक वायु भी न हो। भौतिक अग्नि के रूप में उष्णता बिना वायु के संयोग के अग्नि में उत्पन्न नहीं होती इस कारण यह कह सकते हैं कि जल, वायु और उष्णता तीनों का सम्पर्क में होना 'गलन' करने के लिये परमावश्यक ही है। उष्णता के होने की आवश्यकता इस कारण पड़ जाती है कि जल एक ऐसा विचित्र तरल पदार्थ है कि एक ओर तो ३२° फैरनहीट के तापमान पर जम कर बर्फ बन जाता है दूसरी ओर २१२° फैरनहीट के तापमान पर बाष्प भूत बनकर वायवीय रूप धारण करके व्याप्त बन जाता है। जल का सम्पर्क इन अन्न, फल आदि खाद्य पदार्थों में जल प्रवेशता करके इन खाद्य पदार्थों की जल संयोजना (कच्ची जुड़ाई) को तोड़कर पार्थिव परमाणुओं को छिन्न भिन्नता ही तो करता है। परन्तु यह छिन्नभिन्नता का खाद्य पदार्थों के 'गलन' सम्पन्न की अवस्था में जल सम्पर्क तभी कर सकता है जब यह पदार्थों के परमाणुओं में भली प्रकार प्रवेश कर जावे। न तो बहुत ठंडा जल प्रवेशकार्य को पूर्णता से कर सकता है और न बहुत उष्ण जल कर सकता है क्योंकि अधिक ठंडा होने पर स्थूल हो जाने के कारण प्रवेशता और परिचालकता के गुण कम हो जाते हैं और अधिक उष्ण होने पर सूक्ष्म हो जाता है और प्रवेशता और परिचालकता की शक्ति घट जाती है। इसी कारण जल की चंचलता को स्थिर रखने के लिये इसको ५०° फैरनहीट के तापमान से ऊपर रखना ही होगा। और दूसरी ओर १५०° फैरनहीट के तापमान से आगे नहीं बढ़ने दिया जायगा। तभी गलन सहन की क्रिया पूर्णता से हो सकेगी अन्यथा नहीं। यही कारण है

कि गलन और सड़न की क्रिया पूर्ण वेग से १००° फैरनहीट के ता ही होती है और इसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर दूध को भी १००° फैर तापक्रम की मध्याह्न उष्णता पर ही जमाकर दधि में परिणत किया जाता इसी सिद्धान्त पर सृष्टि के महान कारीगर विधाता ने मनुष्य और प्र धारियों के शरीर में रक्त का तापमान भी १००° फैरनहीट के लगभग र जिस से शरीर में गलन क्रिया (पाचन क्रिया) पूर्ण वेग से हो सके के स्वास्थ हितार्थ केवल उष्णता का तापमान ६८.४° फैरनहीट ई परमावश्यक है क्योंकि घटने व बढ़ने की दोनों अवस्थाओं में पाचन क्रि हो जायगी।

अब खाद्य पदार्थों के सुरक्षित रखने के साधनों पर दृष्टि डाल खाद्य पदार्थों की सुरक्षिता करने के तीन वैज्ञानिक साधन हैं। यह तीनों तीनों सम्पर्कता वाले तत्वों (अग्नि, जल, वायु) में से एक एक की सम्पर्क लेने में बन जाते हैं। इनके अतिरिक्त एक चौथा साधन भी होता है 'रसायणिक' साधन के नाम से पुकारा जाता है परन्तु यह साधन स्था नहीं है। पदार्थों में से जल का सम्पर्क हटा देने से 'सुखावट' (Desicc हाकर अग्नि का सम्पर्क हटा देने से 'शीतता' (Refrigeration) होक वायु का सम्पर्क हटा देने से 'वायु शून्यता' (Vacuum) होकर 'गलन क्रिया का होना बन्द हो जाता है क्योंकि इस क्रिया के लिये तीनों हैं का (अग्नि, जल, वायु का) समकालीन सम्पर्क होना आवश्यक है। भारत को इन चारों प्रकार के साधनों का भली प्रकार ज्ञान था। वे खाद्य को सुरक्षित रखने की कला में दक्ष थे। आज भी हमको निम्नलिखित इस कला के ज्ञान का पूर्णत संकेत दे रही हैं। प्राचीन भारतीय वै इन चारों प्रकार की सुरक्षिताओं के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को भी समझते थे का खाद्य पदार्थों से हटाकर उनको सुरक्षित करने के हेतु भारतवर्ष के ग्राम अनेक प्रकार की तरकारियों और फलों को सुखाकर रखने की प्रथा प्राचीन से आज तक चली आ रही है जैसे, करेले, कचरा, साग, आलू, ककड़ियें इत्यादि। अग्नि का हटाकर पदार्थों की सुरक्षिता करने का प्र अनुमान इन बातों से भली प्रकार लगाया जा सकता है कि खाने के नरम रोटियें, दूध आदि को भारतीय जाति न रहने वाले घरों में सब से ठण्डा स्थान रखने के लिये ढूंढते हैं और वहां रखते हैं। कभी भीगे हुए क ढककर खाद्य पदार्थ रखे जाते हैं। कहावत है कि उष्णता पाकर खाद्य

'उफान' आ जाता है। इस से उनको ठण्ड की आवश्यकता है। यह हमारी वर्षों की प्रचलित प्रथाएँ हैं। वायु व सम्पर्क हटाकर खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने का ज्ञान इस देश की प्रथाओं से भली प्रकार प्रमाणित होता है। (१) अचार आदि खाद्य पदार्थों का तेल से चुपड़ कर रखना (तेल के चुपड़ने से वायु का प्रवेश बन्द हो जाता है) (२) भारतीय अत्तारों और पंसारियों या सैकड़ों प्रकार के फलों के शरबतों को सरबन्द बर्तनों और बोतलों में वर्षों तक रखना। इन बोतलों की भीतरी वायु को उनमें तीव्र उष्ण शर्बत भर कर निकाल दी जाती है। (३) अन्न को वायु बन्द मकानों और कुठों (खात्तियों) में रखना जिस से बाहर की वायु की अधिकता अन्न पर न पड़े। इस के अतिरिक्त यान्त्रिक साधनों से भी प्राचीन काल से वायु शून्यता की जाती थी जिस का संकेत हमको पिचकारियें, हुक्के, सिंगी आदि भले प्रकार दे रहे हैं। रसायनिक प्रयोगों से अथवा मसाले लगाकर खाद्य पदार्थों को सुरक्षित करने की प्रथा आज तक भी चली आ रही है। अचार, मुरब्बे, खांड के पानी और अनवायन के जल में फलों को रखना इत्यादि। यहां पर एक प्रश्न उठ जाता है कि हम सुरक्षा कला को जानते हुए आज अन्य देशों से क्यों पिछड़े हुए हैं इसका कारण देश में केवल शिक्षित कारीगरों का अभाव है और अन्य कारण कुछ नहीं जैसा हम वक्तव्य में लिख आये हैं। आज भी देश में यदि शिक्षित नवयुवक हस्तकला का काम संभाल लें और देश में शिक्षित कारीगर मिलने लग जायें तो थोड़े ही समय में हम भारत के ग्रामों में छोटी २ उद्योग शालाएं हजारों और लाखों की संख्या में खोल सकेंगे। जहां तक विज्ञान का सम्बन्ध है हमको विदेशियों के आश्रित न होना पड़ेगा। क्योंकि हमारे घर में अब भी पर्याप्त मात्रा में विज्ञान की पूंजी मौजूद है और वह विज्ञान भारतीय विज्ञान है जो हर काल और दिशा में अखण्ड रहता चला आया है।

(७) हर खाने पीने वाली वस्तुएं अन्न, फल आदि (पार्थिव वनास्पतिक पदार्थ) अपने उत्पत्ति के समय से विनाश के समय तक तीन अवस्थाओं से निकलते हैं। साधारणतः हर अन्न का दाना और फल इत्यादि क्रम से इन तीन अवस्थाओं को पार करता है। कभी २ कुछ फल

इत्यादि अवस्था नं० १ से सीधे मनुष्यों की असावधानी से 'गल सड़' कर अवस्था न० ३ में परिणत हो जाते हैं ऐसी परिस्थिति में तीव्र विषों का उद्‌गार हो जाता है।

अवस्था नं० (१) खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने वाली अवस्था को कहते हैं। उस अवस्था का प्रारम्भ अन्न, फलादि के अपने पेड़ों की डाल से अलग होते समय से होता है और अन्त इस अन्न या फल को खाने के लिये मुंह तक ले जाने पर होता है।

अवस्था नं० (२) को स्वास्थिक अवस्था कहते हैं और यह अवस्था अन्न या फल आदि को मनुष्यों के खाने के क्षण से उसके शरीर से मल के रूप में बाहर निकलने के समय तक रहती है।

अवस्था नं० (३) को मल या विनाशक अवस्था कहते हैं। यह अवस्था मल के शरीर से निकलने के क्षण से उसके नष्ट किये जाने के समय तक रहती है।

इन तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त एक चौथी अवस्था भी होती है जो पदार्थ की नष्टता होने से लेकर उसकी पुनरुत्पत्ति तक रहती है। परन्तु उसके स्वास्थ विज्ञान के क्षेत्र से बाहर होने के कारण इस को छोड़ देते हैं। आरोग्य विज्ञान के क्षेत्र में अवस्था न० १ में नाज और अन्य खाद्य पदार्थों को गलने और सड़ने से सुरक्षित रखना एक विशिष्ट कार्य है जिस से दो कार्यों की सिद्धि होती है। एक तो खाद्य पदार्थों की सड़ने और गलने से बचत होती है जिस से देश की खाने पीने के पदार्थों की कमी में सहायता मिलती है दूसरे उनकी गलन और सड़न से जो स्वास्थ्य नाशक विषों की उत्पत्ति हो जाती है जिन

से जल और वायु विषाक्त होकर मनुष्यों को अस्वस्थ बना देते हैं उनसे छुटकारा मिल जाता है। अवस्था नं० २ इसके क्षेत्र में नहीं आती। अवस्था नं० ३ में जो मल मूत्र और दूसरे गन्दे पदार्थ मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के शरीर से निकलते हैं उनको शीघ्र से शीघ्र मकानों से बाहर जङ्गल में ले जाकर नष्ट कर देना और उनको मनुष्य के रहने वाले स्थानों में कम से कम समय तक रखना और वह भी ढक कर, जिस से वह जल, वायु और अग्नि तीनों के समकालीन सम्पर्क से बचे रहें और अधिक काल तक सड़ न सकें जिससे वायु विषाक्त न हो यह सब कार्य आरोग्य विज्ञान के क्षेत्र में आते हैं। वैसे तो आरोग्य विज्ञान के क्षेत्र में केवल दो ही अवस्था आती हैं यानी अवस्था नं० १ और ३ और अवस्था नं० २ हमारी सीमा से सर्वथा बाहर है परन्तु हम इतना इस अवस्था के विषय में अवश्य कहेंगे कि मनुष्य शरीर को यदि स्वस्थ रक्खा जावे तो इसके मल मूत्र में इतनी विशेष दुर्गन्ध नहीं होती जितनी एक अस्वस्थ के मल और मूत्र में होती है। सारांश यह है कि स्वयं मनुष्य और उस के पालतू जानवर भूस्थल का जल वायु बहुत थोड़े से परिमाण में गन्दा करते हैं और जो अनिवार्य भी है क्योंकि ऐसा तो सम्भव ही नहीं कि मनुष्य अपने जीवन को बिना शारीरिक गन्दगी उत्पन्न किये स्थिर रख सके।

मध्याह्न डिग्री की यदि होगी अथवा ५०° से लेकर १५०° फैरनहीट तक होगा तो यह सड़न गलन की क्रिया पर्याप्त वेग से होगी वरना रुक जायगा। इसी कारण यह मान लिया गया है कि मनुष्य की शारीरिक उष्णता ९८.४° डिग्री की सब से अधिक वेग से अवस्था नं० १ और ३ में सड़न और गलन और अवस्था नं० २ में पाचन करती है। यही कारण है कि बुखार में पाचन क्रिया कम हो जाती है।

(८) जल, वायु और अग्नि तीनों तत्त्व पार्थिव (वनास्पतिक और मांसिक) पदार्थों के सम्पर्क में इकट्ठा और समकालीन आने पर यथानुरूप गलन और सडन उत्पन्न करते हैं। जल और वायु एक सीमा के अन्तर्गत विशेष मात्रा मे तीव्र और न्यून मात्रा मे मन्द परिमाण मे। अग्नि में विशेषता यह है कि तीव्र प्रकार की गलन और सडन केवल मध्याह्न उष्णता मे ही उत्पन्न होती है जो ५०° और १५०° डिग्री फैरनहीट के भीतर होती है। इधर ५०° अंश पर और उधर १५० अंश पर गलन सडन की क्रिया पूर्णतः रुक जाती है यही कारण की दोनों के मध्याह्न उष्णता १८.४° फैरनहीट (मनुष्य के शरीर की उष्णता) पर यह गलन और सडन की क्रिया बडी तीव्रता के साथ होती है और यही कारण है मनुष्य शरीर की पाचन शक्ति ज्वर में दूषित हो जाती है।

इस का विस्तृत विवरण खान नं० ६ में किया जा चुका है। यह बात यहां पर बतानी है कि जैसे पार्थिव खाद्य पदार्थों में 'गलन' 'सडन' तीनों तत्त्वों (अग्नि, जल वायु) के समकालीन सम्पर्क से होती है तो इन तीनों तत्त्वों का मात्रा पार्थिव खाद्य पदार्थ की तुलना में कितनी होना चाहिये। इस अपक्षत्व का स्पष्टीकरण यह है कि जल और वायु यह दोनों तो एक सीमा के अन्तर्गत विशेष

मात्रा में तीव्र 'गलन' 'सड़न' उत्पन्न करते हैं और न्यून मात्रा में मंद (इस सीमा के बाहर निकलने पर बढ़ने और घटने दोनों ही अवस्थाओं में 'गलन' और 'सड़न' की क्रिया अति मन्द पड़ जायगी। इस सीमा का निरूपण प्रयोग द्वारा किया जा सकता है) परन्तु अग्नि की उष्णता के तापमान की मात्रा तो स्थिर मात्रा ५०° फैरनहीट से लेकर १५०° फैरनहीट तक की है चाहे पार्थिव पदार्थ का परिमाण कुछ भी क्यों न हो। इधर ५०° के निकट और उधर १५०° के निकट उष्णता के आने से 'गलन' क्रिया की वेगता अति मन्द पड़ जाती है और पूर्ण तीव्रता केवल १००° फैरनहीट के लगभग के तापमान पर ही आती है।

अग्नि, जल और वायु के प्रभावों का ज्ञान भारतीयों को आज से नहीं हजारों वर्षों से चला आ रहा है जब कि उन्होंने हर खाने पीने के पदार्थों और औषधियों सब के तीन २ गुण माने हैं (इस विचित्र पूर्वता का विश्व में और किसी दूसरी जगह उदाहरण नहीं मिलता) और इन तिहरे गुणों का प्रचार सर्व साधारण में भी इस अधिकता से किया जाता था कि बहुत से साधारण फलों और औषधियों के इन तिहरे गुणों से आज दिन भी लोग भारतीय ग्रामों में परिचित हैं और इस परिचय से लाभ उठाते हैं। पूछा जाता है कि गुलाब के फूलों के खाद्य पदार्थ की अवस्था में तिहरे गुण क्या २ हैं तो उत्तर मिलता है कि सरद तर और विरेचक इसी प्रकार 'पिस्ते' के तिहरे गुण गरम तर और पौष्टिक, बादाम के गरम तर और विरेचक किशमिश के सरद तर और हृदय पौष्टिक, हरड़ के सरद शुष्क और विरेचक इत्यादि। सब खाद्य पदार्थों और औषधियों के तीन २ गुणों की खोजें की हुई हैं। इन तीन प्रकार के गुणों के तीनों प्रकार के प्रभावों को साथ २ वर्णन करने का आशय यह है कि इन तीनों में से एक सम्भवतः तीसरा तो उस खाद्य पदार्थ या औषधि का मौलिक पार्थिव परमाणुओं का गुण है ही परन्तु दो गुण हर पदार्थ और औषधियों में जल और अग्नि के परमाणुओं के (जो उस पदार्थ में होते हैं) होते हैं जो पदार्थ के मौलिक गुण के साथ २ वर्णन कर दिये जाते हैं। अग्नि से उष्णता, सरदी और जल से तरी, शुष्कता उत्पन्न होती है। वायु अग्नि में अग्नि के गुण उष्णता को तीव्र कर देती है और जल में जल के गुण 'तरी' को तीव्र कर देती है। यह है अग्नि, जल, वायु के वैज्ञानिक प्रभावों की प्रयोगता का एक उदाहरण जो यह बात प्रमाणित करता है कि भारतियों के सिद्धान्त पूर्णतः विज्ञानिक थे। इन तीन गुणों की परिभाषा से मनुष्यों को कितना लाभ होता है कि एक ही औषधि के प्रयोग से शरीर में कई २ कार्य साथ २ ले लिये जाते हैं। जहां पर एक ओर भारत के वैज्ञानिकों ने खाद्य पदार्थों

और औषधियों में निहरे गुणों को मान कर 'अग्नि' और 'जल' के प्रभावों का। साथ पदार्थ पर पड़ने का प्रमाणित किया वहां दूसरी ओर इन्होंने स्वास्थ्य क्षय में क्रमशः 'वायु' और 'जल' के ही प्रभावों का हर ग्राम, बस्ति, और मनुष्य के रहने के स्थान पर पड़ने को भले प्रकार से प्रमाणित कर दिखाया।

(६) भारतीय आरोग्य विज्ञान में सब से अधिक महत्व वायु की स्वच्छता रखने पर इस कारण से दिया गया कि पृथ्वी, जल और वायु तीनों ही पदार्थ विषों से दूषित तो होते हैं परन्तु इन तीनों पदार्थों में पृथ्वी तो एक स्थानी होने के कारण अपने विष को भी एक स्थानी रखती है जिस से उसके दूषित प्रभाव अड़ौसी पड़ौसियों तक नहीं पहुँचते। जल में और वायु में चालकता होने के कारण यह दोनों पृथ्वी के उत्पन्न हुए विषों को दूर २ भेज देते हैं। इन दोनों में जल की चालकता एक परिमित प्रकार की और केवल पृथ्वी के स्थल पर ही फैलने वाली होने के कारण इतनी तीव्रता से विष को फैलाने वाली नहीं होती जितनी वायु की चालकता जो वायु के फैलने वाली लचकीली और दबने वाली होने के कारण से होती है।

यही कारण है कि भारतीय स्वास्थ्य वैज्ञानिक परम्परा से वायु की शुद्ध पर ही स्वास्थ्य की निर्भरता को मानते चले आये हैं और अब भी मानते हैं इनका अटल विश्वास है जो बिल्कुल सत्य है कि वायु की स्वच्छता ही आरोग्यता का मूल मंत्र है। तीनों प्रकार के विषों से (ठोस, तरल और गैसीय) पृथ्वी, जल, और वायु तीनों तत्व जो इन गन्दी वस्तुओं के सम्पर्क में आते रहते हैं दूषित हो जाते हैं जल और वायु से यह चारों ओर के वायु मण्डल में व्याप्त हो जाते हैं।

इस भारतीय वायु स्वच्छता के सिद्धांत पर हमारा आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों और उनके अनुयाई भारतीय वैज्ञानिकों से बहुत मतभेद है । एक ओर तो भारतीय विज्ञान केवल (जल की भी) वायु की स्वच्छता रखने के हेतु प्रत्येक उपाय और प्रयत्न करने का आदेश देता है दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान की दृष्टि वायु स्वच्छता पर आज तक नहीं पहुँची यदि पहुची तो केवल साधारण नाम मात्र परिमाण में ही पहुँची । इस के विपरीत आधुनिक वैज्ञानिकों ने हर रोग के कीटाणुओं की ढूढ करनी प्रारंभ की और लगभग सौ वर्षों से जब से दो एक यौरोपियन डाक्टरों ने यह वह सुनाया कि रोग कीटाणुओं से फैलते हैं तब से तो भारतीय वैज्ञानिकों की ओर जो गला फाड़ २ कर चिलाते रहे कि रोग अशुद्ध 'जल' 'वायु' से फैला करते हैं किसी किटाणु से नहीं उत्पन्न हुआ करते कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता है । अभी तक कोई छः सात प्रकार के रोगों के कीटाणुओं को तो ढूंढा जा चुका है और शेष रोगों के किटाणुओं की ढूढ पड़ी हुई है । यहा पर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि आज तक जितने रोगों के कीटाणु मिले हैं वे सब यौरोपियन वैज्ञानिकों को ही मिले हैं । एक रोग के कीटाणुओं के अतिरिक्त जो सन् १८९६ में एक जापानी वैज्ञानिक को भी मिले थे। भारतीय आधुनिक वैज्ञानिकों में से अभी किसी भी वैज्ञानिक को किसी रोग के कीटाणु आजतक नहीं मिले हैं । क्या इसका कारण यह तो नही कि इन वैज्ञानिकों ने उनको ढूढा ही न हो। प्रतीत होता है कि भारतीय वैज्ञानिकों ने इन कीटाणुओं को अभी तक ढूढा ही नहीं। वास्तव में देखा जावे तो भारतीय वैज्ञानिकों के पास उनके पूर्वजों के छोडे हुए इतने सत्य सिद्धान्त अभी भी मौजूद हैं कि इन को कीटाणुओं को ढूढ कर लचर सिद्धान्तों में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं है। भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान का दृढ सिद्धान्त है कि रोगों के कारण मनुष्यों के मिथ्या आहार विहार है और यह कि रोगों के विष अनेक स्थानों में जल, वायु के द्वारा ही फैलते हैं। और इन असावधानियों से उत्पन्न होने वाले विषों को तुरन्त नष्ट करके उनको जल, वायु के सम्पर्क से दूर कर दिया जावे जिस से जल, वायु पर इन विषों का प्रभाव न पडे और यह कि जहाँ यह विष थोडे बहुत परिमाण में जल वायु से संयोगित हो भी गये हों तो विभिन्न साधनों से जल वायु की शुद्धि कर दी जावे।

हम कीटाणुओं पर अपने सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन खोज न० २० और २६ में करेंगे। यहाँ पर केवल इतना अवश्य बताते हैं कि वायु स्वच्छता करने को

और औषधियों में निहित गुणों को मान कर 'अग्नि और 'जल के प्रभावों का हर खाद्य पदार्थ पर पड़ने का प्रमाणित किया वहां दूसरी ओर उन्होंने स्वास्थ्य के क्षेत्र में केवल 'वायु और 'जल के ही प्रभावों का हर ग्राम, बस्ति, और मनुष्यों के रहन के स्थान पर पड़ने को भले प्रकार से प्रमाणित कर दिखाया।

(६) भारतीय आरोग्य विज्ञान मे सब से अधिक महत्व वायु की स्वच्छता रखने पर इस कारण से दिया गया कि पृथ्वी, जल और वायु तीनों ही पदार्थ विषो से दूषित तो होते हैं परन्तु इन तीनों पदार्थों मे पृथ्वी तो एक स्थानी होने के कारण अपने विष को भी एक स्थानी रखती है जिस से उसके दूषित प्रभाव अड़ौसी पड़ौसियों तक नहीं पहुँचते। जल में और वायु मे चालकता होने के कारण यह दोनो पृथ्वी के उत्पन्न हुए विषों को दूर २ भेज देते हैं। इन दोनों में जल की चालकता एक परिमित प्रकार की और केवल पृथ्वी के स्थल पर ही फैलने वाली होने के कारण इतनी तीव्रता से विष को फैलाने वाली नहीं होती जितनी वायु की चालकता जो वायु के फैलने वाली लचकीली और दबने वाली होने के कारण से होती है।

यही कारण है कि भारतीय स्वास्थ्य वैज्ञानिक परम्परा से वायु की शुद्धि पर ही स्वास्थ्य की निर्भरता को मानते चले आये हैं और अब भी मानते हैं इनका अटल विश्वास है जो बिल्कुल सत्य है कि वायु की स्वच्छता ही आरोग्यता का मूल मन्त्र है। तीनों प्रकार के विषों से (ठोस, तरल और गैसीय) पृथ्वी, जल, और वायु तीनों तत्व जो इन गन्दी वस्तुओं के सम्पर्क में आते रहते हैं विषाक्त हो जाते हैं जल और वायु से यह चारों ओर के वायु मण्डल में व्यापक हो जाते हैं।

इस भारतीय वायु स्वच्छता के सिद्धांत पर हमारा आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों और उनके अनुयाई भारतीय वैज्ञानिकों से बहुत मतभेद है । एक ओर तो भारतीय विज्ञान केवल (जल की भी) वायु की स्वच्छता रखने के हेतु प्रत्येक उपाय और प्रयत्न करने का आदेश देता है दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान की दृष्टि वायु स्वच्छता पर आज तक नहीं पहुंची यदि पहुंची तो केवल साधारण नाम मात्र परिमाण में ही पहुँची । इस के विपरीत आधुनिक वैज्ञानिकों ने हर रोग के कीटाणुओं की ढूंढ करनी प्रारंभ की और लगभग सौ वर्षों से अब से दो एक यौरोपियन डाक्टरों ने यह बह सुनाया कि रोग कीटाणुओं से फैलते हैं तब से तो भारतीय वैज्ञानिकों की ओर जो गला फाड़ २ कर चिलाते रहे कि रोग अशुद्ध 'जल' 'वायु' से फैला करते हैं किसी किटाणु से नहीं उत्पन्न हुआ करते कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता है । अभी तक कोई छः सात प्रकार के रोगों के कीटाणुओं को तो ढूंढा जा चुका है और शेष रोगों के किटाणुओं की ढूंढ पड़ी हुई है । यहा पर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि आज तक जितने रोगों के कीटाणु मिले हैं वे सब यौरोपियन वैज्ञानिकों को ही मिले हैं । एक रोग के कीटाणुओं के अतिरिक्त जो सन् १८६६ में एक जापानी वैज्ञानिक को भी मिले थे। भारतीय आधुनिक वैज्ञानिकों में से अभी किसी भी वैज्ञानिक को किसी रोग के कीटाणु आजतक नहीं मिले हैं । क्या इसका कारण यह तो नहीं कि इन वैज्ञानिकों ने उनको ढूंढा ही न हो। प्रतीत होता है कि भारतीय वैज्ञानिकों ने इन कीटाणुओं को अभी तक ढूंढा ही नहीं। वास्तव में देखा जावे तो भारतीय वैज्ञानिकों के पास उनके पूर्वजों के छोड़े हुए इतने सत्य सिद्धान्त अभी भी मौजूद हैं कि इन को कीटाणुओं को ढूंढ कर लचर सिद्धान्तों में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं है। भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान का दृढ़ सिद्धान्त है कि रोगों के कारण मनुष्यों के मिथ्या आहार विहार हैं और यह कि रोगों के विष अनेक स्थानों में जल, वायु के द्वारा ही फैलते हैं। और इन असावधानियों से उत्पन्न होने वाले विषों को तुरन्त नष्ट करके उनको जल, वायु के सम्पर्क से दूर कर दिया जावे जिस से जल, वायु पर इन विषों का प्रभाव न पड़े और यह कि जहाँ यह विष थोड़े बहुत परिमाण में जल वायु से संयोजित हो भी गये हों तो विभिन्न साधनों से जल वायु की शुद्धि कर दी जावे।

हम कीटाणुओं पर अपने सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन खोज न० २० और २६ में करेंगे । यहाँ पर केवल इतना अवश्य बताते हैं कि वायु स्वच्छता करने को

प्राचीन भारतीयों ने इतना महत्व दे रक्खा था और इतनी पूर्णता से वे वायु स्वच्छता करते थे कि किसी भी रोग को फैलने से पहले ही उनके विषों की नष्टता कर दी जाती थी। यह प्राचीन भारत वासी प्रति दिन सब से पहला काम यह करते थे कि थोड़ी सी प्रज्वलित अग्नि एक अँगाठी में लेकर उस को पहले कुछ देर तक वैसे ही जलने देते थे और फिर थोड़े विभिन्न रोग नाशक, सुगन्धित और पौष्टिक पदार्थों (घृत, शक्कर, सामिग्री आदि पदार्थ) को जला कर उनका घरों में धूम प्रवाह करते थे। इस नित्य के वायु शोधक छोटे से प्रयोग के अतिरिक्त जिसको मनुष्य अपने २ घरों में रोज करते थे बड़े परिमाणों में भी कभी २ उसी प्रज्वलित अग्नि के बड़े २ ढेरों को मुहल्लों और ग्रामों में चौरास्तों आदि खुले स्थानों पर जला कर उसके प्रभाव से घरों की विषाक्त वायु की स्वच्छता भी किया करते थे। इस प्रज्वलित अग्नि के ढेरों से बड़े २ मुहल्लों की अशुद्ध वायु केवल तीन चार घण्टों में ही स्वच्छ हो जाती है (इस का पूर्ण विवर्ण आगे खोज नं० २२ में देखो)।

(१०) भूस्थल पर रोग फैलाने वाले विषों की उत्पत्ति केवल मनुष्य और उसके पालतू जानवरों से ही होती है न किसी जङ्गली जानवर से होती है और न किसी कीड़ों, मकोड़ों, मक्खी मच्छरों से होती है।

यहाँ पर कुछ भारतीयों के विज्ञानिक रहस्य की बातें बताई जाती है जिन की सत्यता आपको थोड़ा सा विचार करने से ही स्वयं सिद्ध हो जायगी । भारतीय तत्वज्ञान विश्व भर के मनुष्यों का पूँजा है इस का किसी के विशेष धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। जीवधारियों में केवल मनुष्य ही एक ऐसा जीवधारी है जो अपने हानि, लाभ, अवनति, उन्नति, अच्छे बुरे कर्मों का विचार करने की शक्ति अथवा बुद्धि रखता है। उसके अतिरिक्त इसको स्वेच्छा पूवक कर्म करने की भी (एक परमित सीमा के अन्तरगति) स्वतन्त्रता मिली हुई है । यह दोनों बातें (विचार करना और स्वेच्छा पूवक कर्म करना) अन्य जीवधारियों को नहीं मिली हुई हैं। छोटे और बड़े जीवधारी (मनुष्य को छोड़ कर) चाहे वह हाथी के तुल्य बड़े हों और चाहे मच्छर के तुल्य सूक्ष्म हों सब प्रकृति के इसी नियम से बधित हैं।

हम भारतीयों के विज्ञानिक सिद्धान्तों का आधार हमारे पञ्च भूतों की

सूक्ष्म और भौतिक विवरधाओं की अनेक व्यक्तिगत और सार्वजनिक [illegible] पर है जिन में कोई भी परिवर्तन देश या काल के प्रभाव से नहीं होता । इनके [illegible] की सत्यता में घटन बढ़न नहीं होती एवं यह सत्यता हजारों वर्ष पहले भी उतनी ही थी जितनी कि आज है और जितनी कि भविष्य में रहेगी। विज्ञान की उन्नति और लोपना का निर्भर प्रत्येक देश में उनकी विद्या, विद्या प्राप्त व प्रचार, और [illegible] प्राप्ति के पुरुषार्थों पर होता है। जिस मनुष्य समुदाय ने जितना पुरुषार्थ किया और जितने अन्वेषणादि विज्ञान विद्या की प्राप्ति के लिये किये उतनी ही उस मनुष्य समुदाय को अधिक विज्ञान विद्या की प्राप्ती होती है। विज्ञान के नियमों और सिद्धान्तों में अन्तर नहीं होता वह विश्व भर के लिए एक ही होते हैं क्योंकि प्रकृति को किसी विशेष देश से घृणा और दूसरे देश से प्रेम नहीं होता। अन्तर का दोष पड़ा करता है वह मनुष्यों की ज्ञान प्राप्ति की न्यूनाधिकता के कारण हुआ करता है। परन्तु इस से विज्ञान के नियमों और सिद्धान्तों की सत्यता में कोई अन्तर नहीं आता। इतिहास बताता है कि हमारा भारत वर्ष विज्ञान और कला कौशल में कितना उच्च शिखर प्राप्त कर चुका था जिसके लाखों चिन्ह [illegible] निर्दर्शनों का आज भी मिलते हैं और उन को विज्ञान विद्या के हजारों सत्य सिद्धान्तों का वर्णन भी हमारी प्राचीन संस्कृत की पुस्तकों में ज्यों का त्यों मिलता है। केवल यह पुस्तकें थोड़ी ही संख्या में भाग्य वश नष्टता से बच रही हैं।

जैसा पीछे खोज न० ७ में बताया गया है कि खाद्य पदार्थ तीन अवस्थाओं से निकल कर नष्ट होते हैं उन तीनों ही अवस्थाओं में गन्दगी की उत्पत्ति होती रहती है। अवस्था न० १ में तो मनुष्यों की सावधानी से इस गन्दगी उत्पत्ति को तो बहुत मात्रा में घटाया जा सकता है परन्तु अवस्था न० २ में तो कदापि नहीं घटाया जा सकता। एक ग्राम में जितने मनुष्यों के शरीर होंगे उतने ही अधिक परिमाण में वहाँ गन्दगी की उत्पत्ति का होना अनिवार्य है। किसी भी शरीर में उस की पाचन शक्ति को नहीं रोका जा सकता। और जब तक शरीर में पाचन शक्ति है खाद्य पदार्थों की क्षीणता (अथवा गलन) अग्नि, जल और वायु के सम्पर्क से (जो तीनों तत्व तीन दोषों के नाम से हर शरीर में विद्यमान होते हैं अथवा पित्त, कफ और वायु के नामों से) अवश्य ही होती रहेगी और जब तक क्षीणता होती रहेगी गन्दगी की उत्पत्ति भी होती ही रहेगा। शरीर के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर यह पाचन क्रिया अवस्था न० २ की समाप्त हो जायगी परन्तु अवस्था न० ३ का 'गलन सड़न' की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। ठीक शक्कर के मिलों के समान जैसे शक्कर बनाने के साथ २ दुर्गन्ध युक्त शीरे का तलछट के रूप में निकलना अनिवार्य है उसी प्रकार

मनुष्यों के शरीरों में भी खाद्य पदार्थों से शुद्ध रक्त बनने के लिये उन में से विष्टा, मूत्र, पसीना, और दसों प्रकार के अन्य मलों का तलछट के रूप में शरीरों से बाहर निकलना अनिवार्य है। अब यह तो भली भाँति प्रमाणित हो जाता है कि मनुष्यों के शरीर बिना गदगी उत्पन्न करे स्थिर नहीं रह सकते। अब जानवरों के शरीरों का निरीक्षण करते हैं। जानवरों के शरीरों में भी थोडी बहुत मात्रा में गदगी उत्पन्न करने के वही नियम लागू है जो मनुष्यों के शरीरों में होते हैं केवल इनकी उत्पत्ति करने के ढङ्गों और गदगी के प्रकारों और मात्रा में अन्तर होता है। अब जानवरों में भी दो प्रकार हैं एक तो मनुष्यों के पालतू जानवर जैसे घोड़े, बैल, ऊँट, गाय, भैंसे, गधे और बकरियें इत्यादि और दूसरे जङ्गली जानवरों की श्रेणी में आ जाते हैं जैसे, शेर, चीते, भेड़िये, नीलगाय, हिरन इत्यादि जो मनुष्यों के बधन से रहित रहते हैं। भारतीय विज्ञान के आश्रित यह बात दृढ़ता पूर्वक कही जा सकती है कि सब प्रकार के जानवर भूस्थल पर प्रकृति की अध्यक्षता में विभिन्न प्रकार के कार्य मनुष्यों के उपकारी ही करते हैं और अपकारी कोई कार्य नहीं करते। जहाँ जानवरों के काम मनुष्यों को अपकारी दिखाई देते हैं वहाँ ऐसा केवल उनके कार्यों के रहस्यों को न समझ सकना ही है। यही एक कारण है कि जैसा पीछे बता आये हैं कि जानवरों में विचार शक्ति और स्वेच्छा पूर्वक कर्म करने की शक्ति नहीं होती। यह जानवर भूस्थल पर हजारों प्रकार के कार्य करते रहते हैं और जिन सब का लाभ एक न एक रूप में मनुष्यों ही को पहुचता है। इस जानवरों और कीड़े मकोड़ों के बहुत से दल तो प्रकृति का स्वास्थ्य रक्षक फौज में कार्य करते हैं और विभिन्न स्थानों और विभिन्न पदार्थों में से विषों को (जो उन स्थानों या पदार्थों में पहले ही से मौजूद होता है) निवृत्ति करते रहते हैं और बहुत से प्रकृति के अन्य विभागों में शासन स्वय सेवक के तुल्य कार्य करते हैं जैसे मनुष्यों के लिये सवारी देना, सामान ढोना, खेतों के जोतने, पानी खींचने आदि कार्य करते हैं। इसी सिद्धान्तानुकूल बहुत से जङ्गली जानवरों की विष्टा तो गदगी ही नहीं होती इसका कारण उसको जङ्गल में मिट्टी के समान कहीं खोया जा सकता है। केवल बहुत थोडे जानवर ऐसे हैं जिनकी मल विष्टा में गदगी होती है और वह भी जानवर अपनी मल विष्टा को एक नियमित प्रकार से अपने शरीरों से निकाल कर फैंकते हैं जिससे मनुष्यों के रहने का वातावर्ण प्रभावित नहीं होता। यह प्रकृति के बनाये हुये नियम जिनका सब स्वच्छन्द जानवर और कीड़े मकोड़े पालन करते हैं मनुष्य अपनी अनभिज्ञता और अज्ञानता के कारण अपने पालतू जानवरों पर अपने हस्ताक्षेप द्वारा तोड़ डालता है। क्योंकि जहाँ मनुष्य अपनी विचार करने और

स्वेच्छा पूर्वक कर्म करने की शक्ति का दुरोपयोग अपने शरीर के प्रति करता है वहाँ अपने पालतू जानवरों के प्रति भी कर देता है । जिस का परिणाम यह होता है कि जहाँ मनुष्य अपने शरीर से उत्पन्न हुई गन्दगियों की समयानुकूल निवृत्ति और सफाई करने में आलस्य और प्रमाद दिखाता है वहाँ वैसा ही आलस्य और प्रमाद अपने पालतू जानवरों से उत्पन्न हुई गन्दगियों की सफाई करने में दिखाता है इसी से यह दृढ शब्दों में कहा जाता है कि गन्दगी की उत्पत्ति केवल मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों से ही होती है। जङ्गली जानवर और विभिन्न प्रकार के कीडे, मकौडे जैसा ऊपर बताया जाचुका है अपने मलमूत्र को जो बहुत ही थोड़े से जानवरों या कीडों का गन्दगी लिये हुये होता है, एक प्राकृतिक नियम के अनुकूल ऐसे एकान्त के स्थानों में शरीर से बाहर निकालते हैं कि उनसे मनुष्यों को कोई कष्ट या बाधा नहीं होती और यह मलमूत्र थोडे से ही समय में 'विकीर्ण' क्रिया से स्वय नष्ट होजाते हैं। यह तो हुआ जहाँ तक अपने जीवन यापन और शरीरों के अस्तित्व के लिये मलमूत्र के रूप में गन्दगी की उत्पत्ति करने का प्रश्न जिसको हम यहाँ बता चुके हैं कि जङ्गली स्वछन्द जानवर और कीडे मकौडे आदि कोई अपनी मलमूत्र से गन्दगी की उत्पत्ति नहीं करते । अब रहा मक्खी, मच्छर, कीटाणु और जङ्गली जानवरों के अपने कार्यों द्वारा गन्दगी और विषों के उत्पन्न करने का प्रश्न जैसा कि आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है। इसके सम्बन्ध में खोज न० २० और २६ में विस्तृत विवरण किया जा रहा है यहाँ केवल इतना अवश्य कह देते हैं कि यह प्राकृतिक फौज के सिपाही सब प्रकार के कार्य प्रकृति की नियमित मर्यादा के अनुकूल करते हैं उसके प्रतिकूल कोई कार्य नहीं करते और प्रकृति स्वय मनुष्यों की मित्र है शत्रु नहीं जिसका एक छोटासा दृष्टान्त यह है कि आप अपने शरीर की भीतरी रचना की यान्त्रिक क्रियाओं और रसायनिक रसों का विचार करें कि आपकी स्वास्थता को सुरक्षित रखने के लिये शरीर में कितने जटिल यन्त्र प्रकृति ने बनाये हैं और जब आप खाने पीने में कभी २ भूल भी कर जाते हैं तो प्रकृति किन २ विचित्र उपायों से उन भूलों से उत्पन्न हुए दोषों का समाधान करती है। यह सब देखते हुये फिर भी यदि हम केवल विज्ञानिक नियमों की अनभिज्ञता के कारण इन प्रकृति के सिपाहियों के ऊपर अकारण आरोपण लगावें और जिन विषों की यह कीटाणु नियमति रूप से निवृत्ति करते हों उन्हीं विषों के उनको फैलाने के आरोपण लगाने लगे तो ठीक वैसा ही होगा जैसा कि कोई व्यक्ति एक कम्पाउन्डर को यह आरोप लगाने लग जाय कि तुम रोगी को क्षति पहुचाते हो। इसी कारण भारतीय वैज्ञानिकों के समान यदि पाश्चत्य वैज्ञानिक भी अपने विज्ञान का आधार

पंच भूतों के सिद्धान्त पर ही रखे जाते तो सम्भवतः इस प्रकार की भूलें कदापि न की होती। मित्र और शत्रु की पहिचान करना तो भारतीय विज्ञान का वर्ण माला में सिखा दिया जाता है। यह कोई विशेष कार्य भी नहीं है। भारतीय वैज्ञानिकों ने मक्खी, मच्छर, कीड़े मकौड़ों को रहन सहन के स्थानों से दूर रखने के आदेश तो हजारों बार दिये हैं और साथ २ उनके हटाने के ढङ्ग और विधियें भी बनाई हैं परन्तु यह सकेत किसी ने एक बार भी कहीं नहीं दिया कि यह कीटाणु विषोत्पादक हैं और इस कारण इनकी तत्काल नष्टता कर देने से यह विष उत्पन्न नहीं होंगे।

(११) दूषित पृथ्वी और दूषित जल तो दृष्टिगोचर हो सकते हैं परन्तु दूषित वायु, वायु के अदृश्य होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं हो सकती। यही कारण है कि मनुष्य उन विषों के स्थित्व से अज्ञात बने रहते हैं और वायु में विष फैलता रहता है और पृथ्वी और जल की दूषितता इतनी हानिकारक और अपकारी भी नहीं होती जितनी वायु की दूषितता।

प्राचीन काल से आज तक भारतीय स्वास्थ्य रक्षक वैज्ञानिक भूस्थल पर मनुष्यों के स्वास्थ्य रक्षा के हितार्थ 'जल', 'वायु' की शुद्ध रखने का आदेश देते चले आये हैं और हम बड़े दृढ़ शब्दों में भारत जनता का ध्यान आकर्षित करते हैं कि यह बात सत्य है कि रोग जभी फैलते हैं जब पहिले जल वायु विषाक्त होजाते हैं। जल भी अनेक विषों के सम्पर्क में आने से विषाक्त होजाता है परन्तु इससे मनुष्यों के स्वास्थ्य पर अधिक प्रभाव इस कारण नहीं पड़ता कि पहिले तो जल स्वयं एक सीमाबद्ध स्थान में ही पृथ्वी स्थल पर बहाव करता है जिससे इसका प्रभाव भी सीमाबद्ध ही रहता है। दूसरे इस जल को लोग पीने के प्रयोग में बहुत कम लाते हैं क्योंकि उनको जल के विषैले होने का ज्ञान रहता है। तीसरे पृथ्वी पर मिट्टी रेत और वायु के संसर्ग में आने पर शीघ्र ही इस के विषों की स्वयं निवृत्ति होजाती है और जो प्रमाणु इसमें वनास्पतिक और खाद्य पदार्थों की गन्दगी और विषों के रूप में मिले होते हैं। उनको प्राकृतिक फौज के सिपाही मछलियें और मेंढक आदि खाकर साफ कर देते हैं। चौथे फिर भी लोग बहुत कम संख्या में ऐसे हैं जो इस जल का दांत है क्योंकि

थोडी २ दूर पर पीने के जल के कुवे बने हुये हैं। उत्तरीय भारत में तो जल की समस्या का नलों ने बड़ी श्रबूबता से हल कर दिया है क्योंकि जगह जगह पर भूमि पर यह 'हस्तपम्प' लगा लिये गये हैं और इनमें से जल स्वच्छ और निर्मल निकाला जा सकता है। दूसरे जल और वायु के शरीर स्थित्व के हेतु प्रयोगों में इतना अन्तर है कि मनुष्य जहा जल के बिना ६० घण्टों तक जीवित रह सकता है वहाँ वायु के बिना ६० सेकन्ड भी जीवित नहीं रह सकता। हर मिनट में १५ २० बार स्वाँस लेने में वायु की ही हर मनुष्य और जान धारी को आवश्यकता पडती है जिस को रोका ही नहीं जा सकता। वायु के स्वच्छ रखने की समस्या बड़ी जटिल है। सब से पहले तो वायु के अदृश्य होने के कारण इसकी ओर जल से एक चौथाइ ध्यान भी नहीं जाता। सर्व साधारण का तो ध्यान क्या ही जावेगा अभी तक पाश्चात्य वैज्ञानिकों का भी ध्यान इस की ओर इतना नहीं गया जितना आवश्यक है। भारतीय सिद्धान्तानुकूल वायु की स्वच्छता पर जल की स्वच्छता से चार गुणा विशेष प्रयत्न होना चाहिये परन्तु वास्तव में जल की स्वच्छता से चौथाइ प्रयत्न भी वायु की स्वच्छता पर इस समय नहीं किये जाते। प्रयत्न तो हो जाया करते हैं पहिले ज्ञान की आवश्यकता है। सर्व प्रथम यह विचारा जावे कि इस खोज में वर्णन किया हुआ हमारा कथन कहाँ तक सत्यता रखता है। यदि आप को इस बात पर विश्वास हो जाय कि वायु की ही अस्वच्छता मनुष्यों में फैलने वाले रोगों की वृद्धि करती है और इसी से मनुष्यों के स्वास्थ बिगड़ जाते हैं तो फिर इसकी स्वच्छता करने के भी सरल प्रयोग इसी पुस्तक में मिल जायगे। स्वच्छ वायु की जाच करने के लिये प्राचीन वैज्ञानिकों को अनेक प्रकार के साधन ज्ञात थे। हम आधुनिक विज्ञान के दो एक साधन यहा बताते है। चूने को पानी में घोलकर एक प्याले में कुछ समय तक रख देने से यदि 'कारबोनेट आफ लाइम' (Carbonate of Lime) की पपड़ी जल के ऊपर जम जावे तो समझ लो कि वायु में 'कार्बनन डायक्साइड' (Carbondioxide) की मात्रा .०४ प्रतिशद (जो मात्रा मनुष्य स्वास्थ को हानि कारक नहीं होती) से अधिक है और उस को निकाल देना चाहिये। एक छोटी सी शाशी में नमक का तेजाब भर कर डाट खोलो और बन्द की जावे जिन स्थानों में डाट खोलने पर शाशी से धूम्र बन कर उड़ता दिखाइ पडे वहां की वायु में 'अमोनिया' (Ammonia) विष व्यापक है जिस की निर्मूलता करनी ही चाहिये क्योंकि स्वच्छ वायु में 'अमोनिया' नहीं होना चाहिये। थोड़े से काशफरी झुकेदे को जल में घोल कर कागज या 'ब्लाटिंग पेपर' की छोटी २ कतरनों को इस घोल

में भिगोकर किसी शुद्ध स्थान पर रख कर सुखा देनी चाहिये। जहा की वायु की जाँच करनी हो वहा पर दो चार यह कागज़ की कतरनें कुछ घण्टों के लिये रख छोड़ी जावें। यदि इन कतरनों के सफ़ेद रङ्ग में स्याही आ जावे तो समझ लीजिये कि वायु में 'सल्फ्यूरेटेड हाइड्रोजन' (Sulphurreted Hydrogen) विष वर्तमान है। इस विष को तुरन्त हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। वायु में से विषाक्त परमाणुओं को निकाल कर वायु की शुद्धता करने के लिए हमारी खोज नं० २२ में वर्णित अग्नि की अंगीठी या ढेर लगाकर खुले हुए चौकों में प्रज्वलित अग्नि का रखना भारतीय विज्ञान में सब से अधिक उपयोगी प्रभावशालि सरल और सस्ता साधन है।

(१२) प्रकृति का अटूट नियम है कि जहाँ पर मनुष्य इन विषों की उत्पत्ति तो करते रहते हैं परतु इनके निवारण करने का कोई यत्न नहीं करते वहाँ पर तीनों प्रकार के (ठोस, तरल, गैसीय) पदार्थों में उनके विषों के निवारणार्थ एक विशेष अवधि के उपरान्त अपनी प्राकृतिक कीटाणुओं की आरोग्यता फौज भेज कर विष निवारण का कार्य प्रारम्भ कर देती है। यही कारण है कि गन्दे पदार्थों में विभिन्न प्रकार के कीड़े शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं।

इस भूमण्डल पर सैकड़ों कार्य नित्य प्रकृति की ओर से होते हुए देखते हैं जिन को देखने से यह विश्वास तुरन्त हो जाता है कि यह अलौकिक कार्य प्रकृति की ओर से केवल भूमण्डल पर रहने वाले मनुष्यों और अन्य जीव धारियों के हितार्थ किये जाते हैं और बड़ी बुद्धिमानी से किये जाते हैं। जैसे धूप का निकलना, वायु का चलना जल का बहना, भूमि में और कुवों में जल का निकलना, शरीर में भोजन का पचना, शरीर को रात्रि समय नींद आजाना। इसके अतिरिक्त अब इन प्रकृति के बनाए हुए मनुष्यों और जान धारियों के शरीरों में विचित्र प्रकार के विचित्र यन्त्रों का गूढ़ दृष्टि से निरीक्षण करते हैं तो तुरन्त विश्वास हो जाता है कि इन की रचना करने वाली शक्ति बड़ी गुणवान और बुद्धिमान है। यही महान शक्ति वाली प्रकृति भूमण्डल पर बसने वाले मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिये

एक बड़ा विचित्र कार्य यह करते हैं कि विभिन्न स्थानों और पदार्थों में से गंदगी और विष की निवर्तित अपने विभिन्न प्रकार के कीटाणु दलों को आवश्यकतानुसार भेज कर उन से कराती है।

यह विभिन्न प्रकृति और बनावट वाले कीटाणु या तो इन गदगियों और विषों को अपने शरीरों में प्रवेश करके या अपने शरीरों से किसी प्रकार के रसायनिक रस उनमें मिश्रण करके उनकी पूर्ण नष्टता कर देते हैं या उनको किसी मिट्टी जैसे पदार्थों में परिणत कर देते हैं। यह कीटाणु सेना नियमानुकूल खाद्य और वनस्पतिक पदार्थों में 'गलन सड़न' की क्रिया का आरम्भ होने से कुछ ही समय के उपरान्त मनुष्यों के कृत्रिम उपायों से उस विष का निवर्ति करने के प्रयत्न न करने की अवस्था में तुरन्त नियुक्त कर दी जाती है और विष निवर्ति का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है। इन कीटाणुओं के कार्य करने के रहस्यों का विस्तृत विवरण आगे की खोजों में किया जा रहा है। यह कार्य प्रकृति की कीटाणु सेना की नियुक्ति का अटूट नियम के साथ किया जाता है और इस कार्य पूर्ति के लिये विशेष कीटाणु या तो किसी अन्य स्थान से लाये जाते हैं और या प्रकृति अपने नियमानुकूल उनकी उत्पत्ति उसी गन्दगी या विष के स्थान पर ही कर देती है जैसे मनुष्य के शरीर में सिर और वस्त्रों की जुवें, घावों के कृमि, चारपाइयों में खटमल इत्यादि। जो महानुभाव हमारे इस सिद्धांत में आशङ्का करें उनसे यह प्रार्थना है कि वे इतना तो केवल विचार करलें कि इन भिन्न प्रकृति के जानवरों और कीटाणुओं की रचना करने वाली महान प्रकृति गुणवान और ज्ञानवान होती हुई कोई कार्य अकारार्थक या अनर्थक नहीं करेगी उसके सब कार्य सार्थक और साथ २ परमार्थक ही हुआ करते हैं। और विचार करने के साथ २ आप स्वयं अपने घरेलू प्रकार के अन्वेषण करके हमारे इस सिद्धान्त की सत्यता का निर्णय कर लें।

हम को बड़ा आश्चर्य और खेद होता है जब हम आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों और उनके अनुयाइयों को यह कहते सुनते हैं कि यह कीटाणु मक्खी, मच्छर आदि रोगों का विष फैलाते हैं। और यह कि रोकथाम करने का उपाय इन कीटाणुओं की नष्टता कर देना ही है और यह भी कि जब रोग फैलने वाले कीटाणुओं (उनके विचारानुकूल) की ही नष्टता कर दी जायगी तो रोगों का फैलना स्वयं बन्द हो जायगा। सबसे पहिले तो हम यह सरल प्रश्न इनसे करते हैं कि यह बात आपके चित्त में आई तो कैसे आई जब आप स्वयं यह देखते हैं कि प्रकृति सैकड़ों कार्य मनुष्यों के उपयोगी और हितकारी दिन रात बड़ी बुद्धिमानी

से कर रही है। तो एक कार्य अपकारी कैसे कर सकती है जब अन्य सौ कार्य मनुष्यों के हितकारी किये जा रहे हैं। आप को यह कदापि उचित न था। आपने न केवल इन कीटाणुओं विष शाधक ही नहीं माना एवं साथ २ यह आरोप भी लगा दिया कि यह कीटाणु मनुष्य मात्र के शत्रु हैं और भिन्न प्रकार के विष अपने शरीरों से उत्पन्न करके मनुष्यों को कष्ट पहुचाने के लिये फैलाते हैं। यदि इन कीटाणुओं के किये जाने वाले कार्यों में आप को शङ्का भी हो गई थी तो क्या आपका कर्तव्य साधारणतः यह न था कि पहिले तो कीटाणुओं के कार्यों के मनुष्यों के प्रति उपकारी होने की शङ्का करने के स्थान में आप इनके कार्यों के मनुष्यों के अपकारी होने से शङ्का करते क्योंकि आप स्वयं विश्वास करे बैठे हैं कि प्रकृति के अन्य सब कार्य मनुष्यों के उपकारी हो रहे हैं। दूसरे यदि यह कार्य आपको अपकारी ही दीखते थे तो आप उस विषय के ऊपर थोड़ा और गूढ़ विचार करते और थोड़े शान्तचित्त रहते और इनके कार्यों को यथार्थता जानने के प्रयत्न करते। कम से कम यह तो सोचना ही चाहिये था कि यदि यह इन कीटाणुओं के कार्य मनुष्यों के प्रति अपकारी और वास्तविकता में हानिकारक होते तो इस सिद्धांत के ऊपर आज तक कभी की भारतीय या प्रदेशी वैज्ञानिकों ने तो प्रतिवादिक आवाज उठाई ही होती। हम देखते हैं कि आज तक इन कीटाणुओं के विष फैलाने का किसी वैज्ञानिक ने संकेत नहीं दिया है। सैकड़ों कार्य उपकार के करने के उपरान्त एक सौ एक वा कार्य अपकारी कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करेगा भला प्रकृति जैसी महान शक्ति का तो कहना ही क्या है। हमारे विचार से तो इस बात का चित्त में लाना भी हमारी प्रकृति के प्रति कृतघ्नता होगी कि यह कीटाणु मनुष्य के हानिकारक विष फैलाते हैं। हम इस विषय पर हम पुस्तक के प्रथम और द्वितीय भागों में पिछले वर्ष बहुत कुछ लिख चुके हैं। इस वर्ष हम सैकड़ों नए परीक्षायें और अन्वेषण करने के उपरान्त अपने सिद्धान्त की पुष्टि में दृढ़ शब्दों में फिर दावा करते हैं कि कीटाणु गन्दगी, विषों और रोगों के कारण नहीं हैं जैसा पाश्चात्य वैज्ञानिक और उनके अनुयायी मान रहे हैं परन्तु कार्य हैं। हमारा दावा केवल कीटाणुओं के ही सम्बन्ध में नहीं है केवल हर प्रकार के छोटे बड़े जानवरों के सम्बन्ध में भी उसी सिद्धान्त का दावा है कि मनुष्यों को कष्ट या बाधा कोई भी प्रकृति की सेना का सिपाही नहीं पहुंचाता। जो भी कार्य यह छोटे बड़े जानवर और छोटे बड़े कीटाणु करते हैं उनका लाभ किसी न किसी रूप में मनुष्य को अवश्य पहुंच रहा है।

(१३) प्रकृति का यह भी अटूट नियम है कि इस आरोग्य फौज के वर्दीदार सिपाही अपने सफाई करने वाले कार्य में निपुण और सब प्रकार के औजारों और कार्य सबन्धी सामिग्री से लैस होते हैं जिससे वह अपना स्वच्छता उत्पन्न करने वाला कार्य बड़ी संलग्नता से न्यून से न्यून समय में पूरा कर देते हैं और मनुष्य को न्यून से न्यून असुविधा या कष्ट पहुँचाते हुये ही अपना कार्य करते हैं परन्तु जिन कार्यों में कष्ट पहुँचाना अनिवार्य है वहाँ पर यह सिपाही विवश हो जाते हैं। एक आवश्यक और अति प्रसिद्ध बात इन कीटाणुओं का यह अभ्यास है कि यह कार्य को अधूरा छोड़कर नहीं हटते चाहे इनको किसी भी प्रयत्नों से कार्य क्षेत्र से हटाया क्यों न जावे और चाहे कार्य क्षेत्र में कितने भी सिपाही मारे क्यों न जावें। हाँ एक स्थित में यह अधूरा कार्य भी छोड़ कर हट जाते हैं और वह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब मनुष्य की ओर से दत्तचित्तता से कोई रसायणिक औषधि डाल कर या किसी अन्य प्रकार के प्रयत्नों से उनके अधूरे कार्य को पूरा करने यानी उस विष का निवारण करने का कोई यत्न किया जाता है। यही कारण है कि फ़िनाइल और फ़्लिट या डी-डी-टी छिड़कने से मक्खी, मच्छर आदि कीड़े-मकौड़े तुरन्त भाग जाते हैं यद्यपि उनकी यह अनुपस्थिति अल्पकालिक ही

होती है और वास्तविकता में यदि गंदगी के उत्पत्ति को नष्ट करने का यथार्थ प्रबन्ध भी साथ २ न किया गया तो यह कीटाणु फिर आजायेंगे और बराबर आते ही रहेंगे। कोई शक्ति नहीं है जो उनकी पुनरुत्पत्ति को रोक सके।

हमारी पिछली खोज न० १२ में वर्णित प्राकृतिक नियम को तो आधुनिक वैज्ञानिक नहीं मानते परन्तु उसी नियम की सत्यता के ही आधार पर तो यह साबित कर डाला है कि प्रत्येक बीमारी को फैलाने वाले कीटाणुओं की क्या २ आकृति, बनावट और लक्षण होते हैं। और यह यहां तक वास्तविकता में सत्य भी है कि इसी आकृति के कीटाणु उन रोगों के क्षेत्रों में मिलते हैं और मिलते रहेंगे (यह प्राकृतिक नियम हमारे सिद्धान्तानुकूल भी सत्य है) हमारा मतभेद तो केवल इनके कार्य सम्बन्धी है। एक तो वास्तविक सत्यता यह है कि यह कीटाणु विष उत्पन्न करने वाले या विष फैलाने वाले नहीं होते प्रतिकूल इसके उस क्षेत्र में अन्य कारणों से पहिले से ही उत्पन्न हुए विष को नष्टता करने वाले होते हैं। दूसरी बात यह है कि यदि इस कार्य क्षेत्र में वह विष पहिले से मौजूद न होता तो यह कीटाणु वहां पर कदापि न आते। तीसरे यदि विष के सिलसिले में भी आप उस विष निवारण करने का यथार्थ प्रबन्ध कर लें तो अपने नियमानुकूल यह आए हुए कीटाणु भी उस क्षेत्र से तुरन्त हट जायेंगे।

यह बात बड़ी महत्व पूर्ण है कि हमारे आधुनिक वैज्ञानिक मित्र इन इन कीटाणुओं द्वारा विष निवारण होना तो नहीं मानते परन्तु एक विशेष रोग में एक विशेष आकृति और रूप के कीटाणुओं के आने के प्राकृतिक नियम की सत्यता को पूर्णतः मानते हैं जिस के आधार पर कीटाणुओं की आकृति और रूप देख कर यह घोषित करना होता है कि ये कीटाणु किस बीमारी के फैलाने वाले कीटाणु थे। इसी परीक्षा और निदान के उपरान्त ही तो रोगों की चिकित्सा की जाती है। इस से सरल शब्दों में यह तात्पर्य निकलता है कि जहां तक कि कीटाणुओं का विष क्षेत्रों में उत्पन्न होने या आने का सम्बन्ध है वहां तक तो प्रकृति के नियम की सत्यता को यह आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं क्योंकि कभी किसी को कहते नहीं सुना कि किसी एक रोग के क्षेत्र में भूल से दूसरे रोग के कीटाणु आ गए हैं। इसी कारण यह कहा जा सकता है कि इस प्राकृतिक

नियम की सत्यता पर ही तो आधुनिक वैज्ञानिकों को चिकित्सा का पूर्ण आधार है इस प्राकृतिक नियम को अधूरे रूप में भी मानने और उसकी सत्यता में विश्वास करने का लाभ यह निकला कि आधुनिक चिकित्साओं व निदान यथार्थता से होने लगे। क्योंकि आधुनिक विज्ञान में विभिन्न प्रकार के विष क्षेत्रों में उत्पन्न होने या मिलने वाले कीटाणुओं की आकृति और रूप रङ्ग का ज्ञान भली प्रकार अपनी पुरानी परीक्षाओं के आधार पर करा दिया जाता है और वह ज्ञान सत्य ही होता है। इसी ज्ञान के आधार पर तुरन्त यह पता लगा लिया जाता है नये विष क्षेत्र में कौन से प्रकार के विष निर्वाने करने वाले किस वर्दी वाले सिपाही उपस्थित हैं अथवा उस क्षेत्र में कौन से रोग का विष मौजूद है। हम इस साधन को एक प्रकार का लाभ ही मानते हैं जो वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिकों को मिला है। इस निदान विधि से वास्तविकता में जनता लाभ भी उठा रही है। यद्यपि हम यहां यह कहने से भी नहीं चूकना चाहते कि यह परीक्षा का लाभ जनता को बहुत महगा पड़ता है क्योंकि यह परीक्षा केवल उसी समय की जा सकती है जब क्षेत्र में विष पूर्णत उत्पन्न होकर केवल भर ही नहीं जाता एवं सीमा से अधिक होना प्रारम्भ हो जाता है (क्योंकि तभी तो कीटाणु उत्पन्न होंगे) फिर भी हम इसको एक प्रकार का लाभ ही मानते हैं।

दूसरा लाभ इन प्राकृतिक आरोग्य फौज के सिपाहियों के कार्य नियमों से यह उठाया गया है कि जिस दवाई के छिड़कने से यह सिपाही अपने कार्य क्षेत्र से कार्य को अधूरा छोड़कर भाग जाय वही इस विष की दवाई है इस सत्यता के आधार पर ही पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने उन्हीं औषधियों को विभिन्न प्रकार के रोगों की चिकित्सा करने में प्रयोग किया।

यह बात यहां पर फिर विचार करने योग्य है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने एक ओर तो कीडे, मकोड़ों, मक्खी, मच्छरों को विष फैलाने वाले, विषों का कारण और मनुष्य के प्राणघातक कह डाला है और दूसरे ओर उनके कार्यों की अटूट सत्यता पर इतना विश्वास है कि अपने निदान और चिकित्सा दोनों ही का आधार इनके अभ्यास की सत्यता पर निर्धारित कर दिया है।

क्योंकि उपरोक्त दोनों प्रकार के साधन प्राकृतिक नियमों पर आधारित होने के कारण सौ प्रतिशत सत्य हैं और इन को हम भारतवासियों को विशाल हृदय से सत्य मान लेना चाहिये परन्तु कीटाणुओं को विषों का कार्य ही मानना चाहिये कारण नहीं मानना चाहिये जैसा कि पाश्चात्य वैज्ञानिक केवल भूल के

कारण मानते हैं क्योंकि यह बात हम को सूर्य के समान स्पष्ट है कि यह हर प्रकार के कीटाणु, मक्खी, मच्छर विषोत्पत्ति नहीं करते इसके प्रतिकूल विष निवारण ही करते हैं। किसी स्थान में सर्व प्रथम विष की उत्पत्ति ही होती है उसके उपरान्त कीटाणु मक्खी, मच्छर आदि आते हैं इससे प्रथम नहीं। उपरोक्त दो प्रकार के लाभ तो रोगों के निदान और चिकित्सा करने में मनुष्यों ने इन कीटाणु, मक्खी, मच्छरों के अभ्यासों के प्राकृतिक नियमों की सत्यता से उठाए परन्तु श्रेय लेखक के विचारानुकूल पाश्चात्य वैज्ञानिकों का ही है वास्तविक लाभ जो केवल इन कीटाणुओं, मक्खी, मच्छरों के स्थित्व से उठाया जा सकता है वह यह होना चाहिये कि जहाँ पर इन कीटाणु, मक्खी, मच्छरों को देखो वहाँ पर निसंकोचता से मान लो कि उस क्षेत्र में विष मौजूद है और वहाँ के वायु, जल और पृथ्वी अशुद्ध और विषाक्त हैं और इनकी शुद्धि होने की आवश्यकता है। साराश में इन कीटाणुओं का स्थित्व यह ही सम्बोधित करता है कि वहाँ पर जल, वायु विषाक्त है।

(१४) मनुष्यों के रहन-सहन के स्थानों में मक्खी, मच्छर आदि कीटाणुओं का न होना या बहुत कम होना इस बात का संकेत करते हैं कि वह स्थान उस समय विषों से मुक्त है और वहाँ पर पृथ्वी, जल, वायु सब शुद्ध हैं।

यह पिछले खोज नं० १२ और १३ का उप सिद्धान्त है। रहन सहन के निवास स्थानों को और अपने शरीरों और वस्त्रों को प्रत्यक्ष पदार्थों से स्वच्छ रखना और साथ २ जल और वायु को हवन और होली आदि की क्रियाओं से शुद्ध और स्वच्छ रखना हर ग्राम या शहर निवासी का मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। उपरोक्त प्राकृतिक नियम को स्वच्छता निदर्शक नियम समझना चाहिये। यदि पर्याप्त मात्रा की स्वच्छता रक्खी जावेगी तो किसी भी कीटाणु का वहाँ आने की आवश्यकता न पड़ेगी।

(१५) सड़न और गलन की तीन अवस्था होती हैं, हल्की, मध्यम और तीव्र।

(क) हल्की सड़न और गलन वह है जो पार्थिव खाद्य और वनस्पतिक

पदार्थों में नियमानुकूल जल, वायु और अग्नि के एक साथ के सम्पर्क से उत्पन्न होती है परन्तु बहुत ही न्यूनमात्र में इन तीन तत्वों का सम्पर्क होता है और अग्नि ५०° और ६५०° फैरनहीट के ही अन्तर्गत होती और बहुत थोड़े समय तक। इस हलकी सड़न, गलन की अवस्था में बहुत मन्द वेग का विष उत्पन्न होता है जो साधारणतः वायु, धूप आदि से ही शोधित हो जाता है। इस अवस्था में प्रकृति अपनी कीटाणु फौज का प्रयोग नहीं करती। यह हलकी गलन सड़न की क्रियायें दिन रात घरों में प्रायः उत्पन्न होती रहती हैं जैसे दो चार दिन के समय तक अन्न को खुले बरतनों में रख छोड़ने से, बासी भोजन से, मैले कुचैले वस्त्रों से, पाखानों में चार पांच घण्टों तक विष्ठा रखने से, और खमीर उठाने की क्रिया से।

(ख) मध्य प्रकार की सड़न और गलन में भी पार्थिव खाद्य पदार्थों में उपरोक्त अवस्था के समान जल, वायु अग्नि का इकट्ठा सम्पर्क होता है और इतना होता है कि सम्पर्क देर तक रहता है और जल, वायु पर्याप्त मात्रा में होती है और अग्नि की उष्णता मध्याह्न ६८.४ फ. ह. डिग्री के समीप होती है। इसमें विषोत्पत्ति तीव्रता से होती है। इस अवस्था में प्रकृति की कीटाणु, (मक्खी, मच्छर) आदि की फौज तुरन्त ही नियुक्त कर दी जाती है यह अवस्था हलकी अवस्था के उपरान्त प्रारम्भ होती है।

(ग) तीव्र प्रकार की सड़न और गलन भी उपरोक्त दो अवस्थाओं की भाँति पार्थिव खाद्य पदार्थों में जल, वायु, अग्नि के इकट्ठे सम्पर्क से होती है परन्तु जल, वायु की मात्रा और भी अधिक परिमाण में होती है और सम्पर्क का समय अधिक होता है और यह तीव्र प्रकार की गलन, सड़न बहुत गंदे पदार्थ अथवा पदार्थों अथवा विष्ठा आदिक बहुत समय तक खुली छोड़ देने से होती है। और अग्नि की उष्णता मध्याह्न उष्णता यानी ६८.४° फ. ह. डिग्री के बहुत समीप होती है जिस से सड़न, गलन बड़ी तीव्र गति से उत्पन्न होती है और बहुत हानिकारक तीव्र प्रकार के विषों की उत्पत्ति होती है इस अवस्था में प्राकृतिक कीटाणुओं की फौज बड़े वेग से कार्य करने लगती है और इस विष निर्वाण की क्रिया को पूर्ण करने के लिये जहरीले कीड़े जैसे सर्प और बिच्छू तक भागते हैं।

(१६) दूषित जल-वायु से जब कोई सा रोग उत्पन्न हो जावे तो दो कार्य करने आवश्यक हैं एक तो रोग के कारण विष का नाश करना जिस से जल वायु अशुद्ध हुए

हों। उस विष की निवृत्ति करना और साथ २ विषाक्त जल वायु को भी शुद्ध करना है। दूसरे रोग ग्रसित मनुष्यों की यथेष्ट चकित्सा करना और उनके शरीर से निकले हुए मल मूत्रादि गन्दगियों की तत्काल नष्टता करना है।

जल वायु के विषाक्त हो जाने पर विष का पता लगाना कि किस प्रकार का विष है और उस के कारण को ढूंढ निकालना कोई कठिन समस्या नहीं है। यह कार्य सर्व साधारण व्यक्ति जो थोड़ी मात्रा में भी स्वास्थ्य विज्ञान के नियमों से जानकारी रखते हैं बड़ी सुलभता से कर सकते हैं। इस खोज में दूषित जल वायु के हो जाने पर निम्न लिखित कार्य करने का आदेश दिया गया है (१) जल वायु में मिले हुए विष का पता लगाना कि कौनसा विष है। (२) उस विष के संसर्ग से आगे के लिये जल वायु को बचाना। (३) विषाक्त हो गये हुए जल वायु की पर्याप्त मात्रा में शुद्धि करना और (४) रोग ग्रसित मनुष्यों के यथेष्ट चिकित्सा करना। इन चार कार्यों में से केवल प्रथम तीन ही हमारे क्षेत्र में आते हैं चौथा चिकित्सा का कार्य तो वैद्यों के कार्य क्षेत्र में आ जाता है। इन तीनों कार्यों में प्रथम कार्य के करने के प्रयोगों का वर्णन खोज नं० ११ में पीछे किया जा चुका है और थोड़ा सा विवर्ण नीचे इस खोज के साथ किया जा रहा है। द्वितीय कार्य का विस्तृत विवर्ण पीछे खोज नं० ४ में किया जा चुका है। और तृतीय कार्य में वायु की शुद्धि करने के प्रयोग विस्तृत रूप में आगे खोज नं० २२, २३ और २५ में करेंगे और जल की शुद्धि के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा जाता क्योंकि जैसा पीछे खोज नं० ११ में बता चुके हैं जल की स्वच्छता कुवों और नलों में स्वयं पृथ्वी के संसर्ग से ही हो जाती है। वायु में संयोगित विष का पता लगाने के हेतु सब से प्रथम तो भाप करने नासिका यंत्र के प्रयोग से करें जिस को सृष्टि के विधाता ने मनुष्य के शरीर के बस्ती में सब से आगे निकला हुआ और सब से ऊंचे स्थान पर लगा रक्खा है। इस यंत्र के भीतर प्रकृति ने बड़ी बुद्धिमानी से एक प्रकार की सूक्ष्म गंध ग्राही झिल्ली लगाई हुई है जिस से मनुष्यों को सूक्ष्म से सूक्ष्म दुर्गंध या सुगन्ध का तुरन्त ज्ञान हो जाता है। इस नासिका व गंध सूचक यन्त्र से लाभ यह होता है कि जब अन्न, जल और वायु में जो मनुष्य अपनी जीवन स्थिति के लिये सेवन करते हैं कोई वस्तु दुर्गंध वाली भाजन में आ जाती है तो यह तुरन्त रोक देता है। साधारणतः

मनुष्यों के रहने वाले स्थानों की। जल वायु को वनस्पतिक विष ही दूषित बनाते हैं। इन वनस्पतिक पदार्थों की सड़न गलन से उत्पन्न हुए विषों में प्रायः दुर्गन्ध आया ही करती है। और उक्त विषों से विषाक्त हुए जल वायु में भी थोड़ी बहुत मात्रा में दुर्गन्ध मौजूद होती है इस कारण नासिका यन्त्र आपको यह बात तुरन्त बता देगा कि जल वायु विषाक्त है या नहीं। केवल जब जल वायु में तीव्र प्रकार के विषों का सञ्चार हो जाता है तो दुर्गन्ध आनी बन्द भी हो जाती है उस अवस्था में विज्ञानिक प्रयोगों से परीक्षा की जा सकती है। जल की परीक्षा तो आधुनिक काल के छोटे से छोटे डाक्टर और वैद्य भी कर लेते हैं और जैसा पीछे बता चुके हैं जल की विषाक्तता पृथ्वी के संयोग से तुरन्त साफ़ हो जाती है, और क्योंकि मनुष्य विषाक्त जल से बच कर रहते हैं इस कारण इस से कोई विशेष प्रभाव मनुष्यों के स्वास्थ्य पर नहीं पड़ता। मुख्य पदार्थ वायु है शुद्ध वायु में न दुर्गन्ध होनी चाहिये और न सुगन्ध होनी चाहिये। दोनों प्रकार की गंध पार्थिव पदार्थों की संयोगता से ही होती हैं। वायु के तीन मुख्य प्रकार के विषाक्त पदार्थों (कार्बन डायक्साइड, सल्फ़ेटेड हाइड्रोजन और अमोनिया) की परीक्षा करने के प्रयोग पिछली खोज नं० ११ में बता आये हैं अब कुछ कीटाणु द्वारा (वायु के विषों की) परीक्षा करने के प्रयोग और बताते हैं। जिस स्थान पर मक्खियां अधिक मिलें वहां पर समझ लेना चाहिये कि वायु में वनस्पातक पदार्थों के विष (अमोनिया और सल्फ़ेटेड हाइड्रोजन) अधिक हैं। जहां मच्छर मिलें वहां समझ लेना चाहिये कि वायु में वनस्पतिक पदार्थों के विष और जल की अधिकता है। जहां कीड़े मिलें वहां पर वायु में सड़ी हुई चिकनाई है और जहां पर ततय्ये मिलें वहां वायु में सड़ी हुई मिठाई मौजूद है। जहां पर बहुत सूक्ष्म मच्छर (भुनगे) मिलें वहां समझ लेना चाहिये कि वायु कुछ समय से रुकी हुई है और अशुद्ध है। जहां चिमगादड़ मिलें वहां समझ लेना चाहिये कि वहां पर वायु बहुत समय से रुकी हुई है। काले भौरों का होना यह संकेत देता है कि वायु में सीमा से अधिकता में सुगन्धित पार्थिव पदार्थ मिले हुए हैं और शुद्ध प्राण वायु की न्यूनता है। पतगों और तितलियों का होना (जो आप रात्रि के समय रोशनी पर आ जाते हैं) यह सम्बोधित करता है कि वायु में से प्राण वायु अधिकता से निकाली जा रही है और जो वायु शेष रही है उस में प्राण वायु की मात्रा बहुत न्यून है।

(१७) रोगों के फैलने के मुख्य कारण यह हैं—

अवस्था नं० १ में खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के अधूरे और अपूर्ण प्रयोग।

अवस्था न० २ में मिथ्याहार-विहार और अवस्था नं० ३ मे मनुष्य और उनके पालतू जानवरों के मलमूत्र आदि गन्दे पदार्थों के निवारण के अधूरे अपूर्ण और दोषी प्रयोग।

जैसे अवस्था न० (१) में घरों में अन्न, फल, सब्जी आदि खाद्य पदार्थों को पर्याप्त प्रबन्धों से सुरक्षित करके न रखना एवं असावधानी से खुला हुआ छोड़ देना या जल से भिगोकर रख देना और घरों में गीले वस्त्रों को ही पड़ रहने देना इत्यादि कारण होते हैं अवस्था न० (२) में शरीर को मैला कुचैला रखना और वस्त्रों को भी गंदा रखने आदि क्रियाये होती हैं।

अवस्था न० (३) में विष्टा आदि गंदे पदार्थों का बहुत समय तक मकानों में पड़ा रहना फिर गलियों में खुले स्थानों में पड़ा रहना और शीघ्रता से उसको नष्ट गृहों में ले जा कर नष्ट न करना। सड़ने वाले पदार्थों को शीघ्रता से मकानों से न हटाना और वहीं घण्टों या दिनों तक सड़ने देना।

(१८) मल-विष्टा आदि गन्दे पदार्थों को उनकी उत्पत्ति के पश्चात् निर्विकार करने के केवल दो ही साधन हैं। एक तो 'विकीर्ण' साधन अथवा परिमित (पर्याप्त) मात्रा में उत्पन्न होते ही समय खुले वायु मण्डल के पृथ्वी, जल वायु में विकीर्ण कर देना (फैला देना) दूसरे 'एकत्री करण' अथवा थोड़े समय तक एकत्रित करके वायु बन्द बक्सों में बन्द करके रखना और फिर नष्ट कर देना। इन एकत्रित मल विष्टा आदि गन्दे पदार्थों को नष्ट दो प्रकार से किया

जा सकता है एक तो अग्नि से जला कर (औक्सीकरण क्रिया से) दूसरा जल से गला कर (सड़न गलन क्रिया से)।

विकीर्ण साधन में तीनों प्रकार के मल और गंदे पदार्थ (स्थूल पार्थिव, तरल जलीय और वायुवी) मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के शरीरों से उत्पन्न होने के साथ २ भूस्थल की खुली वायु, जल और पृथ्वी स्थल में बहुत सूक्ष्म परिमाण में थोड़ा २ करके मिला दिये जाते हैं। और इस मिलाने वाली मात्रा का अनुपात इतना सूक्ष्म होता है कि जिस की स्वच्छता केवल वायु जल और पृथ्वी के संसर्ग से ही हो जाती है अन्यथा धूप और वायु और जल का प्रवाह तो इस सूक्ष्म मात्रा की गंदगियों की शुद्धता क्षणों में कर देता है। वास्तविकता में अशुद्ध वायु का तो विकीर्ण सब स्थानों में दिन रात होता ही रहता है। अन्तर केवल पार्थिव और जलीय दो प्रकार की गंदगियों के निर्विकार करने में रहता है। 'विकीर्ण साधन में यह पार्थिव और जलीय गंदगियें उत्पत्ति के साथ २ खुले जल वायु और पृथ्वी स्थल पर विकीर्ण कर दी जाती है और दूसरे 'एकत्रीकरण साधन में यह पार्थिव और जलीय गंदगियें अथवा मलमूत्रादि गंदे पदार्थ इकट्ठे कर लिये जाते हैं और कुछ समय के उपरान्त उनको हटाकर नष्टता के लिये दूर भेज दिये जाते हैं।

गंदी वायु को छोड़ते हुए गंदे पार्थिव और जलीय पदार्थ अथवा मलमूत्र आदि गंदगियों को निर्विकार करने के लिये भारतवर्ष में ८५ प्रतिशत ग्रामों और बस्तियों में 'विकीर्णता के सिद्धान्त को प्रयोग में लाया जाता है और यहां साधन यहां के लिये उपयोगी भी हैं।

भारतीय स्वास्थ्य वैज्ञानिकों ने दोनों ही साधनों को अपने २ स्थान, काल और परिस्थिति के अनुसार एक दूसरे से श्रेष्ठ माना है। ग्रामों और छोटी २ बस्तियों के लिये 'विकीर्णता का साधन केवल अधिक उपयोगी और हितकारी ही नहीं एवं सुलभ और सस्ता भी है। इस के प्रतिकूल बड़े शहरों और घनी बस्तियों में 'एकत्रीकरण का साधन ही उपयोगी होगा और ऐसे स्थानों में 'विकीर्ण साधन हानिकारक हो जायगा। इस कारण यह बड़ी परमावश्यक बात है कि मलमूत्रादि गंदे पदार्थों को निर्विकार करने के कार्य (गंदगियों और विषों की निवृत्ति के कार्य) बड़े सोच विचार कर किये जाने चाहिये कि दोनों साधनों (विकीर्ण या एकत्रीकरण) में से कौन से साधन का प्रयोग किया जावे अन्यथा स्वास्थ्य पर उलटे प्रभाव पड़ने का डर है।

१, जो लोग छोटे कच्चे मकानों और कच्ची गलियों वाले ग्रामों में सीमेंट के
रा, नालियां और कमोडों के पाखाने बनवाने की योजनाये कर रहे हैं, वह हमारे
स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि कोण से बड़ी भूल कर रहे हैं। शहरों और घनी बस्तियां
में तो अवश्य ही 'एकत्रीकरण साधन का प्रयोग होना ही चाहिये।

इस कारण शहरों और घनी बस्तियों में पाखानों में फ़र्श और नालियां
आदि सीमेंट की पक्की और पर्याप्त ढालदार बनाने चाहियें पाखानों के स्थान
हवा और रोशनीदार होने चाहियें। जिन शहरों में फ्लशिंग साधन (Flushing
system) नहीं है वहा पर 'मल विष्टा' को शीघ्र से शीघ्र हवा बन्द बरतनों या
बक्सों में बन्द करके आगे बताई हुई दोनों विधियों (अग्नि से दहन और जल से
गलन सड़न) में से किसी भी एक से नष्टता करने के लिये शहरों से बाहर
ले जाना चाहिये। दूसरे प्रकार की देहरी बस्तियों और ग्रामों में जहा पर जगह
अधिक हो और बसने वाले मनुष्यों की संख्या कम हो वहा पर केवल पार्थिव
विष्टा का तो 'एकत्रीकरण होना चाहिये वह भी बस्तियों के भीतर जहा पर
पाखाने मकानों में बने हुए हैं और प्रयोग में लाये जा रहे हैं। केवल वहीं पर
शेष गंदे तरल पदार्थों का और बस्तियों को छोड़ते हुए शेष सब स्थानों में
'विकीर्ण साधन ही परम हितकारी होगा। ग्रामों के कच्ची गलियों और कच्चे
घरों के फर्शों में 'विकीर्णता के परिणाम 'एकत्रीकरण' से अधिक स्वच्छता
देने वाले होते हैं कारण इस का यह है कि मिट्टी के भीतर स्वयं भी एक परमित
सीमा में गंदगियों और विषों को निर्विकार करने की क्षमता होता है और जल
और वायु में भी मिट्टी के कण मिले हुए होते हैं। जब किसी कच्चे फर्श वाले
मकान में रात्रि के समय छोटे २ बच्चों का मूत्र पड़ जाता है तो कोई भी प्रभाव
नहीं पड़ता और न कोई दुर्गन्ध ही उत्पन्न होती है क्योंकि कच्चे फर्श की
मिट्टी ने उस की गंदगी को स्वच्छ कर दिया और उस के जलीय विभाग को भी
शोषित कर लिया। परन्तु पक्के फर्शों में यह शोषण और शोधन की प्राकृतिक
सुविधायें तो मिली नहीं और एकत्रीकरण किया नहीं गया इस कारण वहा पर
अवश्य ही दुर्गन्ध आने लगेगी। पक्के फर्शों पर गंदगियों और विषों का
'एकत्रीकरण' करना चाहिये और कच्चे फर्शों पर 'विकीर्ण साधन करना चाहिये।
भारतीय वैज्ञानिकों ने जो ग्रामों में कच्ची सड़कों की रचना की थी उन में पक्के
मकानों और फर्शों की तुलना में अनेक त्रुटियां होते हुए भी यह लाभकारी है
परन्तु यह लाभ केवल एक सीमित अवस्था तक ही रहते हैं और केवल देहरी
और कम बसी हुई बस्तियों में ही उपयोगी होते हैं। अब भी ग्रामों में पक्के

फर्श और पक्की नालियें बना दी जायेंगी तो यह लाभ जाते रहेंगे और आरोग्यता का क्षत्र उत्पन्न करने के लिये तुरन्त ही 'एकत्रीकरण' साधन को प्रयोग में लाना होगा। अब 'एकत्रीकरण' में एकत्रित मलमूत्रादि गंदे पदार्थों को नष्ट करने के साधनों का उल्लेख करते हैं।

जलाने का साधन अग्नि दहन है जिस से गंदे पदार्थ तुरन्त ही अग्नि के प्रभाव से छिन्न भिन्न होकर महान तत्वों में लीन हो जाते हैं इस से दूसरी श्रेणी में सड़न और गलन का साधन आता है जिस में मल व विष्टा को बाहर जङ्गल में भूमि में गढ़ खोद कर दबा दी जाती है जिस से उसका भूस्थल की खुली हुई वायु से सम्पर्क हट जाता है वैसे तो पर्याप्त मात्रा में वायु गढ़े में भी मल के साथ २ बन्द हो जाती है जिस से वहां उसको सड़ने में सहायता देता है। इस सड़न-गलन के साधन में प्रकृति की कीटाणु फौज ही गढ़ों में आकर उसका छिन्न भिन्न करती है और उस विष्टा को एक दूसरे उपयोगी पदार्थ के रूप में परिवर्तित कर देती है।

जहाँ तक पूर्ण नष्टता का सम्बन्ध है यह गलन-सड़न का साधन इतना पूर्ण और स्वास्थ्य रक्षक नहीं है जितना 'दहन' का साधन परन्तु खाद की उत्पत्ति और अन्य सुविधाओं के दृष्टिकोण से गढ़ों में दबाकर गला सड़ा कर खाद में परिवर्तित करने का साधन आजकल का प्रचलित साधन है जिसका प्रयोग आज-कल सब ही देशों में लौकिक हो गया है। इस साधन का आधार केवल मल और गन्दे पदार्थों को किसी गढ़े में इकट्ठा और बन्द करके सड़ा देना ही है भूस्थल की वायु मंडल से उनका सम्पर्क थोड़े समय के लिये हटा दिया जाता है और इस गढ़े के बन्द हो जाने से वहाँ का विष वायु मंडल में नहीं फैलता और मल विष्टा आदि को वहीं पर कीटाणुओं की फौज द्वारा नष्ट करा दिया जाता है।

इसी बन्द गढ़ों में सड़ाने की विधि को कई एक रूप और दे दिये गये हैं जिनका सूक्ष्म विवरण नीचे दिया जाता है।

(क) एक रूप तो पुराने ढङ्ग के खत्तानों के गढ़े जो हर शहर के बाहर म्युनिसिपल कमेटी की ओर से खोदे जाते हैं और जहाँ पर शहर भर की विष्टा को एकत्रित करके यथा क्रम भर दिया जाता है और ऊपर से मिट्टी की मोटी तह दे दी जाती है। छः मास के उपरान्त इन गढ़ों को खोला जाता है तो वहाँ पर केवल खाद बना हुआ मिलता है जिसको निकाल कर खेतों में भूमि को उपजाऊ बनाने में प्रयोग किया जाता है इस खाद में दुर्गन्ध

बहुत थोड़ी-सी होती है जो मनुष्य स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुँचाती। (प्रथम भाग मे पृष्ट ३७ पर विधि नं० १ देखिये)।

(ख) दूसरा रूप यह है कि भूमि में कच्चे गड्ढे खोद कर इनमें घरों के पखानों से सीधे चीनी के नल लगा दिये जाते हैं और गड्ढों को ऊपर से बन्द कर दिया जाता है। ऐसे कच्चे बने हुए गड्ढों में पानी तो भूमि में शोषित हो जाता है और विष्टा आदि गन्दे पदार्थों को प्राकृतिक कीटाणुओं की फ़ौज खाकर मिट्टि में परिणित कर देती है। यह साधन केवल वहीं उपयोगी होता है जहा केवल गन्दे पदार्थों का परिमाण थोड़ा होता हो। (प्रथम भाग के पृष्ट ३८ पर विधि नं० ५ देखिये)।

(ग) तीसरा रूप इसका आधुनिक काल के विष्टामद 'सैप्टिक टैंक' है जिसमें पक्के हौज शहरों और घनी बस्तियों में मकानों के नीचे ही बना दिये जाते हैं और वायु सम्पर्क और सड़न से उत्पन्न हुई गैसों के निकलने के लिए इसमें लोहे के नल लगाकर छतों में ऊपर निकाल दिये जाते है। इन पक्के हौजों में विष्टा और जल मिला कर डाल दिया जाता है और वहाँ पर विष्टा में जल, वायु और अग्नि (उष्णता १००° फैरनहीट के लगभग) तीनों का एक साथ सम्पर्क होने के कारण प्राकृतिक नियमानुकूल कीटाणु फ़ौज बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न होकर उस विष्टा के विष को नष्ट कर देती है और विषाक्त वायु नलों द्वारा वायु मण्डल में निकल कर विलीन हो जाती है और जल नालियों द्वारा बह जाता है। यह साधन जितने लाभ दायक और उपयोगी हैं, यदि इन हौजों से विषाक्त वायु रहने वाले मकानों में फूट निकलें तो उस से बहुत ज्यादा हानिकारक हो सकते हैं। इस कारण से जहा २ पर ऐसे मल शोधक हौज मकानों के नीचे बनाये जावें वहाँ २ इन को बनाने में विशेष ध्यान इस बात पर देना चाहिये कि एक तो इन के भीतर मोटा प्लास्तर सीमेंट आदि का लगाकर इन की शोषणता को रोका जावे दूसरे इसके जल वायु निकालने वाले नलों में रिसन कदापि न होनी चाहिये।

यहाँ पर एक परमावश्यक बात फिर ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने विष्टा और गन्दे पदार्थों के नष्ट करने में 'सड़न-गलन' के साधन की क्रिया में किस प्रकार प्राकृतिक नियमों की सत्यता का प्रयोग किया है और अपनी सब विष्टा और गन्दे पदार्थों का नष्ट करने का कार्य प्राकृतिक कीटाणु

फौज को सौंप दिया है कितना बड़ा कार्य है जिस को केवल प्राकृतिक कीटाणु फौज हमारे हितार्थ नित्यप्रति कर रही है। यहाँ तो आधुनिक वैज्ञानिक मान ही जाते हैं कि कीटाणु फौज जिस को वे "बैक्टीरिया" के नाम से सम्बोधित करते हैं उन सैप्टिक टैंकों का मल निवारण करने में आश्चर्यजनक दक्षता और शीघ्रता से कार्य करती है और यह भी कि इन कीटाणुओं का काम मनुष्यों के हितकारी ही होता है। यह वही कीटाणु (बैक्टीरिया) है जिन को आज तक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने मनुष्यों के महान शत्रुओं की उपाधि दी हुई थी और जिस के लिये किसी को यह ध्यान किंचिनमात्र भी न था कि एक दिन शीघ्र ही आयेगा कि इनको मनुष्यों के मित्र की उपाधि देनी होगी।

'निर्जीव' साधन का पूर्ण विवरण प्रथम भाग के पृष्ठ २६ ३० पर देख लीजिये। इस निर्जीव क्रिया का सिद्धान्त यह है कि बहुत से वायु-जल अथवा पृथ्वी में थोड़ी सी मात्रा में (मात्रा का परिमाण वैज्ञानिक तजुरबों से स्थापित करना होगा प्रथम तो मिट्टी ही इतनी गदगी और विष को अपने ही संसर्ग से स्वच्छ कर देती है) विषाक्त वायु जल या मिट्टी मिला दी जावे। इतनी न्यून मात्रा में मिलाया जाता है कि वह बड़े परिमाण के वायु जल और पृथ्वी के समुदाय इस से मनुष्यों के स्वास्थ नाशक नहीं बनते जैसे एक मात्रा तक (·०४ प्रतिशत) कार्बनडायक्साइट वायु नहीं होती। इस थोड़े से विषाक्त मल की स्वच्छता वायु जल और पृथ्वी में से स्वयं धूप और खुली हुई वायु के ही प्राकृतिक साधनों से हो जाती है और थोड़े से समय में ही हो जाती है। यह विधि हमारे भारतीय पूर्वजों की निकाली हुई अत्यन्त हितकारी विधि है। अग्नि (भौतिक प्रज्वलित अग्नि) जहां भूस्थल पर मनुष्यों के हितार्थ हजारों प्रकार के कार्य करती है वहां पदार्थों की नष्टता भी पूर्णतः कर देती है। अग्नि 'दहन' से नष्ट किये हुए पदार्थों के परमाणुओं को तुरन्त ही पञ्च महाभूतों में परिणत कर देती है। जल से उत्पन्न हुई गलन सड़न एक पदार्थ को दूसरे पदार्थों में परिवर्तित कर देती है और इस के कार्य की गति बहुत मन्द होती है।

(१६) जिस स्थान को स्वच्छ करना हो और मक्खी, मच्छर और दूसरे प्रकार के कीटाणुओं से मुक्त करना हो तो वहाँ के पृथ्वी, जल, वायु तीनों तत्वों को विषों से मुक्त करके स्वच्छ कर दीजिये ऐसा करने से सर्व

प्रकार के कीटाणु मक्खी, मच्छर आदि तुरन्त और स्वयं उस स्थान से हट जायेंगे और तबतक नहीं आयेंगे जबतक फिर विषोत्पत्ति न कर दीजावेगी।

पृथ्वी का स्थूल विष हटाना इतना दुर्लभ नहीं है जितना जल का स्वच्छ करना और जल का स्वच्छ करना इतना दुर्लभ नहीं है जितना वायु को विष मुक्त और स्वच्छ करना। इसी क्रम से गन्दे पदार्थों का ठोस विष इतना हानिकारक नहीं होता जितना तरल पदार्थों का विष और यह तरल विष उतना हानिकारक नहीं होता जितना वायु का विष। ठोस विषाक्त मल उस स्थान से हटाकर दूर गढ़े में दबा कर साफ किया जा सकता है। जलीय विषाक्त मल वहां से बहा कर किसी नदी नाले में डाल कर साफ किया जा सकता है और विषाक्त वायु प्रज्वलित अग्नि की अंगीठी या अलाव जलाकर साफ की जा सकती है या उल्टे बिजली के पंखे आदि अन्य प्रयोगों से।

किसी पदार्थ या स्थान को स्वच्छता करने में दो प्रकार के कार्य किये जाते हैं और दोनों ही परमावश्यक हैं। पहिला कार्य तो उस गन्दगी या विष को उस पदार्थ या स्थान से पूर्णतः निकाल देने का होता है और दूसरा कार्य उस गन्दगी या विष के स्रोत को रोकने का होता है जिस से वह गन्दगी या विष फिर उत्पन्न होकर उस स्वच्छ किये हुए पदार्थ या स्थान में फिर न आ जावे। जब तक स्वच्छता क्षेत्र में यह दोनों कार्य साथ २ नहीं किये जायेंगे पूर्ण रूप से स्वच्छता नहीं हो सकती। इसी प्रकार किसी पदार्थ या स्थान से गन्दगी या विष हटाने के लिये दो कार्यों का करना परमावश्यक है। एक तो उस पदार्थ या स्थान में से उस गन्दगी या विष को पूर्णतः हटा देना और दूसरा तुरन्त ही उस पदार्थ या स्थान को किसी विशुद्धि करने वाले द्रव्य (Disinfectant Material) से प्रभावित कर देना होता है जिस से उस गन्दगी या विष के सूक्ष्म कणों का जो उस पदार्थ या स्थान में लगे रह जाते हैं उनके प्रभाव को निर्मूल किया जा सके।

'हवन' और 'होली' के अपूर्व प्रयोग को प्राचीन भारतीय स्वास्थ्य वैज्ञानिकों ने केवल वायु शुद्धता और स्वच्छता करने के हितार्थ स्थापन किये थे इन में ऐसे बनाये हुए हाली कार्य साथ २ हो जाते हैं।

वायु से गदगी और विष की निवर्ति तो केवल अग्नि की विशाल उष्णता से वायु में उथल पथल करके कर दी जाती है और वायु के विषों को प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला के ऊपर आकर्षित करके दहन कर दिया जाता है और साथ साथ उपर फेंक दिया जाता है। इसके उपरान्त उसी प्रज्वलित अग्नि में कुछ रोग नाशक और सुगंधित पदार्थों को जलाकर उस स्वच्छ की हुई वायु के भीतर उन रोग नाशक और सुगन्धित द्रव्यों के धूम्र देकर उसको प्रभावित कर दिया जाता है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो महोदय इन हवन और होली के प्रयोगों में अग्नि का वायु मण्डल में उथल पथल उत्पन्न करने के सिद्धान्त (Convection of current) को न समझ कर केवल हवन के धूम्र से ही यह समझ रहे हैं कि यह धूम्र ही वायु मण्डल के विषों और गदगियों की विशुद्धि कर देगा यह भूल है। क्योंकि यदि केवल धूम्र ही यह वायु के विषों की निवर्ति का कार्य कर सकता तो घरों में अगर बत्तियों के धूम्र से भी वायु की पर्याप्त शुद्धि हो जाया करती। दूसरे वह इस बात की ओर ध्यान दें कि वैदिक हवन विधि में भी आधे से भी अधिक समय तक केवल प्रज्वलित अग्नि को ही घृत की आहुतियें डाल डाल कर प्रज्वलित रूप में रखा जाता है और इसके उपरान्त उसमें सामिग्री या सुगंधित पदार्थों को डाला जाता है। एक विशेष बात यहां पर यह बता देनी है कि जिस पदार्थ या स्थान की स्वच्छता दोनों क्रियाओं द्वारा नहीं की जाती और जहा पर बिना गदगी या विष की पूर्णतः निवर्त्ति किये ही सुगंधित पदार्थों का प्रभाव देदिया जाता है तो स्वच्छता कार्य में बाधा उत्पन्न हो जाती है और सुगंधि इन पदार्थों या स्थान की गदगियों के चारों ओर एक प्रकार का आवरण दे लेती है जिसका परिणाम यह होता है कि वह भीतर रुकी हुई गदगी और विष रुकने के कारण अधिक तीव्रता गृहण कर लेते हैं और सुगंधि के लोप हो जाने पर अवकाश पाकर बाहर निकल आते हैं और मनुष्यों के स्वास्थ्य पर दूषित प्रभाव डालते हैं।

(२०) किसी भी प्रकार के कीटाणु मक्खी, मच्छर आदि मनुष्यों के हानिकारक कोई विष नहीं फैलाते और न ही कोई क्रिया मनुष्यों के हानि पहुँचाने के लिए करते हैं। यदि कई कीटाणु और मच्छरों आदि में विष होता है यह केवल दूसरे ही कार्यों के लिये होता है मनुष्यों

को हानि पहुँचाने के लिए नहीं होता।

मनुष्यों को इनके विष से हानि केवल मनुष्यों की त्रुटियों असावधानता और अनभिज्ञता के कारण पहुचती है जैसे उदाहरणार्थ कोई यह कहदे कि सरकारी सफाई के महकमे के सिपाही के हाथ में जो तीव्र फिनाइल की बोतल उसने देखी है वह मनुष्यों को हानि पहुचाने के लिये थी या जो उनके पास तेज और पैने औजार कार्य करने के हितार्थ थे उन से मनुष्यों के शरीरों में चोटें लग सकती है या लग चुकी हैं। इसी प्रकार से यदि किसी कीटाणु मक्खी, मच्छर या किसी अन्य जानवर से हानि पहुच जाती है वह भी मनुष्यों की अज्ञानता और असावधानता से पहुचती है। जैसे किसी कपड़ा बुनने या किसी और प्रकार की मशीन चल रही हो और कोई अनभिज्ञ मनुष्य उस में अपना हाथ देकर कुचल वाले।

इस प्राकृतिक कीटाणु सेना को भूस्थल पर बड़े २ जटिल और रहस्यमय कार्य करने पड़ते हैं। इन कीटाणुओं की गन्दगी और विष निवृत्ति की क्रियाएँ विभिन्न ढङ्गों से की जाती हैं। सब साधारण ढङ्ग तो सरल ढङ्ग है जिस में केवल गन्दगी या विष को ही किसी पदार्थ या स्थान से हटाना होता है इस ढग के कार्यों में इस प्रकार के कीटाणु प्रकृति की ओर से नियुक्त किये जाते है जो उन स्थानों में उत्पन्न हों या कहीं दूसरे क्षेत्रों से आ जावें और वहाँ आकर या तो उस गन्दगी या विष को खा कर साफ कर दें और अपने शरीर के भीतर डाल लें या उस गन्दगी या विषमें ऐसा कोई रसायनिक पदार्थ अपने शरीरों से निकाल कर संयोजित कर दें जिस से उस की गन्दगी या विषाक्तता दूर हो जावे। इस ढङ्ग की विष निवृत्ति करने में प्राय ऐसे कीटाणु जैसे मक्खी, मच्छर, चींटी, जूँ, दीमक, खटमल इत्यादि लाखों प्रकार के कीटाणु और कीड़े मकौड़े कार्य करते हैं। दूसरे प्रकार का ढङ्ग गूढ़ ढङ्ग है जिस में केवल अधिक गन्दे और तीव्र विषैले मलों ही की निवृत्ति नहीं की जाती पर बड़े २ तीव्र विष रखने वाले अन्य विषैले कीटाणुओं और कीड़े मकौड़ों की नष्टता भी की जाती है जिन्होंने इसी क्षेत्र में पहल विष निवृत्ति का कार्य किया है। और अब उन की आवश्यकता न वहाँ पर है और न कहीं दूसरे निकट स्थान पर। इस प्रकार के फालतू कीटाणुओं की नष्टता दूसरे कीटाणुओं से प्राकृतिक नियमानुसार की जाती है। यहाँ पर इस विषय पर ऐसा प्रकाश डालेंगे कि यह कीटाणुओं की नष्टता अन्य कीटाणुओं से कराने का प्रकृति का कैसा अनूठा और हितकर नियम देखने वालों को दर्शन होता है। और अक्सर दर्शन ही नहीं होता एवं लेखक के मतानुकूल इसी प्राकृतिक नियम का भले प्रकार से न

समझने का ही कारण है कि साधारण मनुष्यों के ऊपर इस एक कीटाणु से दूसरे कीटाणु या एक जानवर से दूसरे जानवर की नष्टता करने के कार्यों को देख कर ही 'शिकार' और 'मांस भक्षण' के अनुकरण करने के प्रभाव पड़े और बहुत से मनुष्यों ने तो यह विश्वास करना आरम्भ कर दिया कि निर्बल को प्रबल मारता ही है जैसा कि देखने में आ रहा है। यद्यपि यह विषय हमारी पुस्तक का नहीं है परन्तु पाठकों की जानकारी के हितार्थ जहाँ हम इस खोज में कीटाणुओं के विषैले होने क वास्तविक कारणों का उल्लेख कर रहे हैं वहाँ साथ २ इस प्रकृति के 'नष्टता' नियम पर भी थोड़ा प्रकाश डाल कर इसकी सत्यता समझाने का प्रयत्न करेंगे। वास्तविकता में यह एक कीटाणु या जानवर का दूसरे कीटाणु या जानवर की नष्टता करने का कार्य एक प्रकार का 'सेना विसर्जन' करने (Disbanding or Demobilisation) का कार्य है। जब २ और जहाँ २ पर यह प्राकृतिक स्वस्थता सेना के सिपाही अपना गन्दगी और विष निवृत्ति का कार्य पूर्णतः समाप्त कर देते हैं तो दो प्रकार से इन सिपाहियों को कार्य क्षेत्र से हटाया जाता है। इन को अन्य स्थानों पर उसी तरह का कार्य करने के लिये भेज दिया जाता है और यदि ऐसा कोई कार्य निकट में नहीं होता तो केवल उन कीटाणुओं और छोटे प्रकार के जानवरों को जिन का स्थानान्तिर दूरस्थ स्थानों पर इन की कोमलता के कारण नहीं हो सकता उसी क्षत्र में नष्ट कर दिया जाता है। इस नष्टता करने के भी विभिन्न ढङ्ग हैं परन्तु हर प्रकार की नष्टता में कुछ विशेष प्रकार के विषैले कीटाणु या जानवरों को नियुक्त करके इन के शरीरों की निवृत्ति करा दी जाती है। यह है वह कार्य जिन के लिये प्रयोजनार्थ बहुत से विषैले कीटाणुओं में विष सचय करके रक्खा जाता है।

कुछ प्रकार के विषैले जानवरों और कीटाणुओं को ऐसे आवश्यकता के अवसरों पर फालतू कीटाणुओं की नष्टता और उन के शरीरों की निवृत्ति करने के प्रयोजनार्थ विभिन्न प्रकार के विष दिये जाते हैं और इन विषों को बड़ा सावधानी से सुरक्षित करके उन के शरीरों के किसी विशेष भाग में सुरक्षित थैलियों में बद करके रक्खा जाता है जिस से उन तीक्ष्ण विषों का प्रभाव उन के स्वय के शरीरों पर भी न पड़े और केवल आवश्यकता पड़ने पर वे (जानवर या कीटाणु) उन में से एक दो बूंदें निकाल कर प्रयोग कर लें। सर्प, बिच्छू, छिपकली, कानखजूरा इत्यादि सैकड़ों जानवर प्रकृति की सेना के इस नष्टता विभाग में कार्य करने वाले होते हैं। इस नष्टता विभाग के सिपाहियों के पास तीक्ष्ण विषों के अतिरिक्त सैकड़ों प्रकार के औजार और शस्त्र भी होते हैं जिनको वह दूसरे कीटाणुओं जिनसे

बहुत से स्वय विषैले होते हैं) की पूर्णत नष्टता करने के प्रयोग में लाते हैं। ऐसे कीटाणु जिनको विषैले कीटाणुओं की नष्टता और उनके विषैले शरीरों की निवर्ति करनी पड़ती है उन के विष अधिक तीक्षण होते हैं। जिन से नष्ट किये जाने वाले कीटाणुओं का विष सुविधा से निरर्थक किया जा सके।

नष्टता के क्षेत्र में कीटाणुओं की नष्टता प्रकृति बड़े विज्ञानिक ढग से करती है। सर्वप्रथम तो नष्ट करने के निश्चय बड़ी देख भाल करके जैसा ऊपर बता चुके हैं, केवल अत्याज्य परिस्थितियों में ही किया जाता है दूसरे जहाँ नष्टता करना अनिवार्य है वहाँ पर इन कीटाणुओं को तीक्षण विषों के दश (Injection) देकर क्षणों में निर्जीव कर दिया जाता है जिस से इनको कष्ट न हो या कम से कम हो और इस दश क्रिया को करने के उपरान्त दश देने वाला कीटाणु या जानवर उन के निर्जीव शरीर को पूर्णता से भक्षण करके नष्ट कर देता है। ऐसा नहीं होता कि उस शरीर में से कुछ भाग भक्षण कर लिया और कुछ छोड़ कर वह कीटाणु या जानवर चला गया या किसी जानवर की नष्टता करने के उपरान्त उस के शरीर का माँस भाग तो भक्षण किया गया परन्तु हड्डिया आदि वहीं पड़ी रहीं। जिस भी जानवर (छोटा या बड़ा) या कीटाणु (छोटा या बड़ा) की नष्टता प्राकृतिक सेना के नष्टता विभाग के सिपाही करते हैं वह यह नष्टता कार्य इस अपूर्वता से करते हैं कि न केवल नष्ट किये हुए जानवर या कीटाणु के शरीर के भाग के सूक्षम से सूक्षम परमाणु भी नष्ट कर दिये जाते हैं एव उस स्थान पर भी सब प्रकार की गन्दगी के चिन्ह तक को साफ़ कर दिया जाता है। यदि आप प्रकृति के उस नष्टता कार्य का निरीक्षण करेंगे तो आप को तुरन्त ही उस कार्य के बहुत से रहस्य और उसकी पूर्ति करने के विचित्र ढङ्गों का स्वय ज्ञान हो जायगा और आप स्वय यह धारणा बना लोगे कि इन कीटाणुओं और जानवरों की जो नष्टता प्राकृतिक नियम के आधार पर एक कीटाणु की दूसरे कीटाणु द्वारा की जाती है वह भी मनुष्यों के स्वास्थ्य हितार्थ भूस्थल की पृथ्वी, जल वायु को स्वच्छ रखने के लिए प्रकृति के अटूट नियम के आधार पर की जाती है, और और इसकी कार्य पूर्ति करने में जो इन जानवरों और कीटाणुओं के मृतक शरीरों का भक्षण दूसरे जानवरों या कीटाणुओं द्वारा कराया जाता है वह बड़ी अत्याज्य परिस्थिति में और बड़े विज्ञानिक और दया भाव के ढङ्ग से किया जाता है जिस से कष्ट की मात्रा बहुत कम करदी जाती है और फिर मृतक शरीर की नष्टता पूर्णता से करा दी जाती है। भक्षण करने वाले जानवरों या कीटाणुओं की क्षुदा निवर्ति या स्वाद या आनन्द प्राप्ति के लिये यह कार्य नहीं किया जाता है। एवं सूक्ष्म रूप में

यह कार्य किया जाता है। यह काय ठीक जैल क्षेत्र में मनुष्यों के फांसी देने वाले जल्लाद के फांसी देने के काम के समान है।

जो लोग इस प्रकृति के 'नष्टता काय' से शिकार करने या मांस भक्षण करने का अनुकरण करते हैं वे हमारे विचार से कुछ तो भूल में पड़ कर और कुछ स्वार्थता के वश में होकर ही ऐसा करते हैं। अब यहां यह बात भले प्रकार समझा जा चुकी है कि यदि कई प्रकार के कीटाणुओं या जानवरों के शरीरों में विशेष प्रकार के विष होते हैं वे मनुष्यों को बाधा या कष्ट पहुंचाने के लिये नहीं हो? एवं इन नष्टता करने के कार्यों के लिये होते हैं। ठीक उसी समान जैसे किसी के घर में संखिये की भस्म यदि एक शीशी में भरी हुई रखी है तो उस का यह अर्थ नहीं कि यह संखिया सब घर के मनुष्यों को मृत्यु के घाट उतारने के लिये रखा गया था। केवल साधारण सावधानी रखने की आवश्यकता जैसी इस संखिये की शीशी को घर के आदमियों और विशेषत बच्चों से अलग रखने की पड़ती है वैसे ही जब घर में विषैले कीटाणु आजावें या उत्पन्न हो जाव तो इन से बचकर रहने या दूसरों को बचाकर रखने की आवश्यकता है। अच्छा तो तभी होता जब घर में इस संखिये की भस्म का रखने की आवश्यकता ही न पड़ती और यह संखिये की भस्म वैद्यों की दुकानों पर ही होती परन्तु कुछ अपनी त्रुटियों वश ऐसा न हो सका और अपने घर के मनुष्यों में से कुछ अस्थमी पुराने दमे के रोगी बन चुके और उन के लिये इस संखिये की भस्म का घर में हर समय मौजूद रखना आवश्यक हो गया। ठीक उसी के समान अपनी त्रुटियों से घर में विषैले कीटाणु उत्पन्न कर लिये। अब जैसे संखिये की भस्म से सब घर वालों को बचा कर रखना होता है उसी प्रकार इन विषैले कीटाणुओं से स्वयं बच कर और दूसरों को बचा कर रखने पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

हम अपना मत उन कीटाणुओं की नष्टता करने के प्रति पाठकों को स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं जिस से किसी को हमारी ओर से अन्यत्व भ्रमन हो जाय। लेखक यद्यपि सौ प्रतिशत अहिंसा के सिद्धान्त का मानने वाला है परन्तु यदि कहीं पर कीटाणु या किसी भी जानवर को किन्हीं परोपकारी कारणों वश (मनुष्यों की सुरक्षिता के हितार्थ) नष्ट करने की आवश्यकता पड़े जैसे एक बार की अशुद्धि रखने की त्रुटि से सिर में जुयें पड़ गए और अब वह व्यक्ति उन जुओं के उत्पन्न हो जाने के कारणों को भली प्रकार से समझ गया है और विश्वास दिलाता है कि भविष्य में मैं शरीर को इतना स्वच्छ रखेगा कि कब जुये

न पड़ सकेंगी तो इन जुयों या जो भी कीटाणु हों उनकी नष्टता प्रकृति की नष्टता क्रिया के समान विज्ञानिक ढङ्ग से की जा सकती है । परन्तु इस प्रकार की नष्टता केवल तभी की जावे जब उसके उपरात उन कीटाणुओं या जानवरों के 'कारण' का नाश करके कार्य को रोकने के सिद्धान्त पर उत्पत्ति भी रोक दी जावे अन्यथा लेखक वा केवल अहिंसा को मानने वालों को इस विषय में यह सन्देश है कि यदि इन प्रकृति की इस स्वस्थ रक्षा सेना के किसी भी सिपाही को अकार्थ या अपने स्वार्थ वश या अपनी अज्ञानता वश उन को शत्रु मानने के भाव से बिना भविष्य में उनकी उत्पत्ति को रोक देने के पर्याप्त प्रयोग किये कोई नष्टता की गई या बाधा पहुचाई गई तो दुहरे प्रकार के दोष आरोपण किये जाने का भय है एक तो वह दोष स्वच्छता विभाग का (गदगी उत्पन्न करने अथवा फैलाने का) और दूसरा स्वच्छता विभाग के राज्य कर्मचारी को बाधा पहुचाने का। यह बात केवल उन महोदयों के लिये लिखी जाती है जो कर्मों का फल पाप और पुण्य मानते हैं । जब मनुष्य अपनी अज्ञानता से या भूल से अकस्मात इन विषैले कीड़ों या जानवरों के सम्पर्क में आ जाते हैं तो वह विषैले कीड़े, कीटाणु और जानवर उसके साथ भी वही व्यवहार करते हैं जिस का प्रकृति ने उसको अभ्यास दिया हुआ है जैसे सर्प को डश करने का बिच्छू को डङ्क मारने का इत्यादि । इस प्रकार से मनुष्यों को इन विषैले कीटाणु और जानवरों से आघात पहुच जाता है।

(२१) हर प्रकार के कीटाणु, मक्खी और मच्छर और और हर जानवर घरों और भूस्थल के विभिन्न स्थानों में केवल आवश्यकता पड़ने पर ही उत्पन्न होते हैं या दूसरे स्थान से आते हैं। वस्तुतः गंदगी या विष की उत्पत्ति होने के उपरान्त आते हैं और गंदगी या विष निवर्ति के कार्य ही करते हैं। उन मक्खी, मच्छर या अन्य प्रकार के कीटाणुओं को कम करने या पूर्णतः हटाने का केवल उपाय उस गन्दगी या विष को जिसके नाश करने के लिए यह आते हैं मनुष्य कृत उपायों से वहाँ से

कम कर देना या पूर्णतः हटा देना ही है । जो २ कीटाणु और जानवर इन गदगी और विष निवर्ति के कार्यों पर प्रकृति की ओर से नियुक्त किये जाते हैं उनको राज्य सेना विभाग के सिपाहियों के समान प्रकृति भी तीन पदार्थों से ल्हैस करके भेजती है ।

(१) आवश्यक उपकरण (औज़ार

(२) यथोचित वस्त्र (वर्दी)

(३) आवश्यक कार्य अभ्यास

यह एक बहुत सरल सी बात है जिस की सत्यता का निश्चय केवल भूस्थल पर नित्य प्रति होती हुई निम्नलिखित क्रियाओं से ही हो सकता है जैसे (१) गदा रहने वाले मनुष्यों के ही वस्त्रों और बालों में जुओं की उत्पत्ति होना (२) भण्डार में रखे हुए अन्न में सुरसरी आदि कीटाणुओं की उत्पत्ति होना (३) गंदगी पर मक्खियों का आना (४) केवल तराइ के स्थानों पर ही मच्छरों का होना (५) गोबर और मूत्र आदि, गदगियों के निकट कानखजूरों का होना (६) मिठाइ की दूकानों पर ततय्यों का होना (७) स्वच्छ जल से निकल कर गदे जल में मछलियों का चला जाना और (८) मेडीकल कालिजों के कलचर (Culture) प्रयोग जिन को करके विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं (Bacteria) को उत्पन्न कर लिया जाता है । प्रकृति अपने अटूट (खोज न० १२ में बताए हुए) नियमों के अनुसार गंदगी और विषों की उत्पत्ति के स्थानों पर अपनी स्वास्थ रक्षणी सेना के सिपाहियों को शीघ्र से शीघ्र (मनुष्यों की बसी हुइ बस्तियों में थोड समय के उपरान्त) नियुक्त कर देती है । हमने अपने देश के कद जङ्गलों में जुड़ने वाले मलों में देखा है जो पहाड़ों और खुले जङ्गलों के स्वच्छ मैदानों में चार पांच दिन के लिये कवल वर्ष भर में एक बार लगते है और उन में दो तीन लाख मनुष्य इकट्ठे होकर चार पांच दिन तक डेरे तम्बुओं में रहते है । इन मलों में देखने में आया है कि पहिले दो दिन तक तो एक भी मक्खी नाम के भी लिये नहीं होती। परन्तु तीसरे दिन लाखों की सख्या में न जाने कहा से आ जाती हैं और चौथे दिन तो इन मक्खियों की इतनी सख्या बढ़ जाती है कि वहां

मनुष्यों को रोग दो दिन रहना दुर्लभ हो जाता है। हमने इस प्राकृतिक लीला के इस से अधिक आश्चर्य जनक और दृश्य देखे हैं कि जब किसी स्थान पर चलती रेल गाड़ी से कोई पशु कट जाता है तो उस स्थान पर थोड़ी ही देर में बीसियों गिद्ध इकट्ठे हो जाते हैं। यह गिद्ध न जाने कहां से आ जाते हैं क्योंकि साधारण अवस्था में इनको रेल की लाइन के निकट कभी नहीं देखा। यह गिद्ध तुरन्त उस कटे हुए पशु के शरीर का मांस आदि भक्षण करना आरम्भ कर देते हैं और लगभग ६ घण्टों में ही इस स्थान को बिल्कुल स्वच्छ कर देते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि जहां मनुष्यों ने इन गिद्धों के साथ कुछ हस्ताक्षेप करके उनके भक्षण में बाधा डाली और उनको वहां पर भक्षण करने के लिये न आने दिया तो यह गिद्ध बराबर दस बारह घण्टे वहीं ठहरे रहे और अवसर की बाट देखते रहे यदि इस बारह घण्टे बाद भी उनको मनुष्यों ने भक्षण करने से रोका तो दूसरे प्रकार के लाल चोंच वाले गिद्ध (जो केवल सड़ा हुआ मांस ही खाते हैं) तुरन्त आ गये और वह पहिले गिद्ध चुपचाप चले गये क्योंकि पहिले गिद्ध केवल ताजा मांस ही भक्षण करने वाले थे। रात्रि के समय इसी कार्य में हाथ बटाने के लिये कुछ गीदड़ भी आये और दिन में इन गिद्धों के साथ २ कुछ आस पास के ग्रामों से कुत्ते भी आ जाते हैं और इन से थोड़ा दूरी पर कुछ कव्वे भी ताक लगाए बैठे रहते हैं और यह कुत्ते और कव्वे कभी २ आकर कुछ हाथ भी मार लेते हैं। प्रकृति का अनुशासन बड़ा महत्वशील और विलक्षण है।

(२२) घरों या दूसरे रहने वाले स्थानों की वायु बहुधा भूस्थल के समीप वाली तहों में ही विषाक्त पदार्थों के सम्पर्क में आने के कारण विषैली हो जाती है। इसको मकानों से केवल दो ही उपायों से शुद्ध किया जा सकता है एक तो अग्नि को समीप के खुले हुये चौकों में जलाकर भीतर की वायु खैंच कर निकालने से, दूसरे बिजली आदि के उलटे पखों से (एगजास्ट फैन द्वारा) वायु को धकेल कर बाहर निकालने से। हर प्रज्वलित अग्नि के ढेर के ऊपर जो भूस्थल पर जलाया जाता है भूस्थल के

समीप वाली वायु की तह में शून्य का गोलाकार कूप या चिमनी बन जाती है जिस के अन्तर्गत चारों ओर की भूस्थल की वायु आकर्षित होकर ऊपर की ओर निकल जाती है और ऊपर से उतर कर शुद्ध वायु उसका स्थान ले लेती है। इस मत के अनुसार यह सर्व सिद्ध नियम है कि हर प्रज्वलित अग्नि के ढेर जो रहने के मकानों के समीप या खुले हुये चौकों में जलाये जाते हैं घरों की बन्द अशुद्ध वायु को स्वच्छ करते हैं।

अग्नि के प्रदीपन से जो वायु मण्डल की ऑक्सीजन नष्ट होकर कार्बनडाई-ऑक्साइड बनती भी है उस से जो हानि होती है वह केवल नाम मात्र ही है परन्तु लाभ अकथनीय मात्रा में होता है।

वायु मण्डल की वायु पृथ्वी के चहु ओर लगभग ४५ मील की ऊँचाई में लिपटी हुई है। और यद्यपि वायु अदृश्य, दब जाने वाली और वाष्प रूपी पदार्थ है परन्तु थोड़ा सा गुरुत्व रखने के कारण पृथ्वी की सतह पर १५ पौंड प्रति चटाई इंच का भार डाले हुए होती है। यह १५ पौंड प्रति चटाई इंच का भार वायु के एक इंच लम्बे और एक इंच चौड़े और ४५ मील ऊंचे स्तम्भ का होता है और क्योंकि वायु के परमाणुओं में अग्नि (सूक्ष्म अग्नि) की व्यापकता न होने के कारण यह परमाणु आपस में बंधे हुए (पृथ्वी और जल के समान) नहीं होते इस कारण वायु स्वयं अपने भार से अपने से नीचे वाली वायु को दबाकर उसके आकार को संकुचित कर देती है जिस का परिणाम यह होता है कि इस ४५ मील की ऊँचाई में वायु एक सा घनत्व की नहीं होती एवं हर स्थान पर नीचे अधिक घनत्व की भारी और ऊपर वाली वायु बेगरे घनत्व की हल की होती है। दूसरे शब्दों में भूस्थल को छूती हुई वायु सबसे अधिक घनत्व की और सब से भारी गुरुत्व की होती है और ज्यूँ २ ऊपर चलते रहोगे इसका घनत्व और गुरुत्व दोनों घटते चले जायगें और सम्भवतः ४५ मील की ऊंचाई पर जाकर इसका घनत्व और गुरुत्व घटते २ बिलकुल न रहें क्योंकि वहां इसका आकाश से संगम हो जाता है। भूस्थल से छूती हुई वायु में अधिक घनत्व और गुरुत्व इसके संकुचित हो

जाने के कारण होता है और इस संकोचन का कारण ऊपर की वायु का गुरुत्व है। यह गुरुत्व से संकोचन ठीक उसी प्रकार हो जाता है जैसे रूइ धीनने वाले के यहां बीस तीस गद्दियां एक तह में रख देने से उपरान्त नीचे वाली गद्दियों की फूली हुइ रूइ दब जाती है और ऊपर वाली गद्दियां फूली हुई रहती है। भूस्थल पर इस ४५ मील ऊँचे एक इंच चौकोर वायु स्तम्भ का भार १५ पौंड के लगभग पड़ता है। वायु का दबने वाला पदार्थ होने के कारण यह घनत्व और गुरुत्व घटता बढ़ता रहता है।

जब वायु को दबाकर मोटर के पहियों में भर दिया जाता है तो इस का भार ६०-७० पौंड प्रति चौकोर इंच तक पहुंच जाता है वायु में साधारणतः कुछ जल का भाप भी मिला रहता है जिस की मात्रा का मान वायु की उष्णता पर निर्भर है और घटता बढ़ता रहता है। वायु का तापमान हमारे देश में साधारणतः (दिल्ली के आसपास में) गरमियों में १२०° फैरनहीट तक पहुंच जाता है और जाड़ों में ७०° फैरनहीट तक कम हो जाता है। जाड़ों के ७०° फैरनहीट में वायु की जल वाष्प उठाने की क्षमता ३½ रत्ती जल प्रति वायु के घन फुट में होती है परन्तु १२०° फैरनहीट गरमियों में यह क्षमता १८ रत्ती प्रति घन फुट में हो जाती है।

वायु में गन्दगी और विष के कण भूस्थल पर केवल उन्हीं स्थानों में आ जाया करते हैं जहां पर मनुष्यों के रहन सहन के स्थान होते हैं। यह गंदगी और विष के कण वहां पर भी केवल वायु की भूस्थल को छूती हुई सब से निचली तह में ही प्रवेश करते हैं और १५-२० फिट की ऊँचाइ से ऊपर वायु यहां भी शुद्ध रहती है और निचली १५-२० फिट ऊँची तह में भी बन्द मकानों और पदार्थों के के भीतर की वायु अधिकता से इन गन्दगी और विषों के कणों से विषाक्त हुइ रहती है। खुली वायु इतनी अधिकता में विषाक्त नहां होती है। वायु घरों के बाहर भीतर, खोखले और पोले पदार्थों में और मनुष्यों और अन्य जीवधारियों के शरीर के भीतर भी उसी प्रकार से और उतने ही घनत्व और गुरुत्व में रहती हैं जिस प्रकार बाहर। इस भूस्थल से छूती हुइ वायु के विषाक्त हो जाने का मुख्य कारण जैसा पिछली खोज में बताया जा चुका है इसका भूस्थल पर खुली हुइ गंदगी और विषों का संसर्ग है जो मल, विष्ठा आदि गन्दे पदार्थों की सड़न और गलन के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। इस विषाक्त वायु का स्थित्व हर मनुष्यों के बसने वाली बस्तियों शहरों और ग्रामों में होता है। विषाक्तता के परिमाण का तो निर्भर इन शहरों और ग्रामों की गन्दगी और विष की मात्राओं पर है

जहां की वह वायु हो। हर शहर, मौहल्ले और ग्राम में इस विषाक्त वायु का आकार लम्बाई चौड़ाई में उस ग्राम की लम्बाई चौड़ाई से थोड़ा सा अधिक और ऊँचाई में ग्रामों में केवल १०–१२ फीट और शहरों में (दो मजिले मकान होने के कारण) केवल १५–२० फिट होता है। दूसरे स्पष्ट शब्दों में इस विषाक्त वायु की चादर १०–१२ फिट या १५–२० फिट मोटी सब ग्राम या शहर के क्षेत्रफल के ऊपर तनी हुई होती है जिस की शुद्धि और स्वच्छता का होना परमावश्यक है चाहे प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा हो और चाहे मनुष्य कृत कृत्रिम साधनों से की जावे। वैसे तो यदि इस विषाक्त वायु की चादर को प्राकृतिक स्वच्छता क्रियाओं के ऊपर छोड़ दिया जावे तो प्राकृतिक वेगों (वायु, धूप आदि) से भी इस वायु की स्वच्छता स्वय ही हो जायगी परन्तु इस प्रकृति के कार्य में समय अधिक लग जायगा फिर भी यह प्राकृतिक वेग बन्द घरों और बन्द पदार्थों की अधिक विषाक्त वायु को स्वच्छ करने में बहुत समय लेंगे।

इसी कारण भारतीय प्राचीन वैज्ञानिकों में जो स्वास्थ्य विज्ञान में भी उच्च श्रेणी की निपुणता रखते थे प्रज्वलित अग्नि से 'हवन' और 'होली के विशेष विधानिक प्रयोगों का आविष्कार किया था जिन से यह विषाक्त वायु की स्वच्छता पूर्णता से तत्काल और थोड़े से व्यय से ही कर दी जावे। इस प्रयोग का सिद्धात केवल वायु में उष्णता के सचार से गति उत्पन्न कर देने का (Convection of Currents) है। यह वायु को गतिमान करने की क्रिया कृत्रिम साधनों से हवन और होली में प्रज्वलित अग्नि द्वारा कर दी जाती है। जब एक प्रज्वलित अग्नि का ढेर (छोटे परिमाण में हवनकुंड और ग्रामीण सज्जनों के अलाव इस में आ जाते हैं और बड़े परिमाण में होली के ढेर इस में आ जाते हैं) खुले वायु मण्डल में इन बसी हुई बस्तियों में उस विषाक्त वायु की १५–२० फिट मोटी तह के नीचे भूस्थल पर जलाया जाता है तो इस प्रज्वलित अग्नि के ढेर के ऊपर उस विषाक्त वायु की चादर में एक गोलाकार छेद (सूराख) हो जाता है। अधिक घनत्व की वायु प्रज्वलित अग्नि की उष्णता पाकर हलकी बन जाती है और उस चादर (वायु की चादर) के सूराख से ऊपर निकल कर भागती है और वहां तक ऊपर उठती चली जाती है जहां तक वायु का घनत्व अपने समतुल्य नहीं मिल जाता यह वेगसे घनत्व की और बहुत ही हलके गुरुत्व की वायु का एक प्रकार का वायु मण्डल में कूप या चिमनी सी बन जाती है जो सैकड़ों फिट ऊँची होती है और मोटाइ में अग्नि के ढेर से थोड़ी सी अधिकता में। यह कूप तब तक बना ही रहता है जब तक प्रज्वलित अग्नि अपने ढेर में बनी रहती है। इस हल की और

देगरे घनत्व की वायु के कूप या चिमनी के चहुँ ओर वही पहिले वाली अधिक घनत्व और गुरुत्व की वायु रहती ही है और इसके साथ २ वह १५-२० फिट मोटी वायु की तह जिसको विषाक्त वायु की चादर के नाम से पुकारा था वह भी बनी रहती है। इस हलकी वायु के कूप या चिमनी का वृत्त छोटे २ हवनकुंड अगीठी और मामूली अलावों के ऊपर केवल ५-६ फिट का होता है परन्तु होली के ऊपर इस का वृत्त १५-२० फिट का हो जाता है । और ऊँचाई छोटे छोटे हवनकुंड और अगीठियों और अलावों पर ४०-५० फिट परन्तु होली की अग्नि के ऊपर २००-४०० फिट तक हो जाती है। इन कूपों या चिमनियों में पूर्णता से वायु शून्यता तो नहीं होती परन्तु वायु बहुत बेगरी होकर शून्यता के ही सम तुल्य हो जाती है । अब विचारिये आगे क्या होता है ठीक उसी प्रकार जैसे शून्यता किये हुये नल में जल भूमि के नीचे से स्वय ऊपर उठ आया करता है उसी प्रकार चारों ओर के दवाव से उस चिमनी या कूप में वायु बड़ी तीव्रता से ऊपर को उठने लगती है । इस उठने का प्रभाव चारों ओर की वायु पर पड़ता है कि चारों ओर से वायु मे आकृषणता आ जाती है और चारों ही ओर से नीचे की तह वाली वायु (जिस में १५-२० फिट मोटी विषाक्त वायु की चादर भी आजाती है) खिंच कर चिमनी या कूप के द्वारा ऊपर वायु मण्डल मे चली जाती है और ऊपर से शुद्ध वायु नीचे खिसककर आ जाती है और ऊपर के स्थान को चिमनी से गई हुई वायु ले लेती है । ऐसी चारों ओर की वायु में यह चक्र चलना आरम्भ हो जाता है और बराबर चलता रहता है जब तक उस ढेर में प्रज्वलित अग्नि रहती है इस उथल पथल का परिणाम यह होता है कि वह १५-२०फीट मोटी विषाक्त वायु की चादर की वायु सब उस चिमनी या कूप से होकर ऊपर की शुद्ध वायु ले लेती है । इस भूस्थल की छूती हुई विषाक्त वायु की शुद्धता तो इन हवन होली के प्रयोगों से हो ही जाती है परन्तु वह घरों और पदार्थों के भीतर की अधिक विषाक्त वायु भी इस चिमनी या कूप के आकृषण से खिचकर निकल जाती है नालियों और बच्चे घरों में चूहे के विलों तक की विषाक्त वायु खिंचकर निकल जाती है और सब स्थानों में ऊपर के वायु मण्डल में से शुद्ध वायु उतर कर भर आती है । एक विचित्र क्रिया विष शोधन की और हो जाती है कि इस निकलने वाली वायु की विष निवर्त्ति चिमनी या कूप की अग्नि की उष्णता के सम्पर्क में आने के कारण उसके निकलते २ हो जाती हैं जिस से वह वायु भी ऊपर शुद्ध होकर जाती है ।

इस 'हवन होली' के प्रयोगों से वायु मण्डल में उथलपथल उत्पन्न करने का उदाहरण हम इस दृष्टान्त से देते हैं कि एक तार की बनी हुई तिपाई पर एक चौड़ी

तली वाला पीतल का भिगौना जल से भरकर रख दिया जाता है फिर उस भिगौने के नीचे किसी भी एक स्थान पर एक बड़ी मोमबत्ती जलाकर रख दी जाती है। थोड़ी देर में आप देखेंगे जल के भिगौने में जल ठीक मोमबत्ती के ऊपर तली में से ऊपर को चलता हुआ और ऊपर पानी की सतह पर आन कर चारों ओर को उबल कर गिरता हुआ दिखाई पड़ेगा। यह ऊपर उबल कर चारों ओर गिरता हुआ जल बर्तन में ऊपर ही रह जाता है और तली की तह का जल चारों ओर से बत्ती के स्थान पर आकर्षित होकर चला आता है और वहा आनकर ऊपर उबल कर उठ जाता है। और ऊपर का जल नीचे मन्द गति से सरकता रहता है। ठीक इसी सिद्धान्त पर हवन और होली की अग्नि वायु मण्डल में वायु की उथल पथल कर देनी है।

यह कृत्रिम अग्नि प्रयोग इतना महत्वशील प्रयोग है जिस के समान उपयोगी प्रयोग हम को आज तक दूसरा नहीं मिलता। यह वायु की उथलपथल क्रिया बिजली के पंखों को उलटा करने से भी हो सकती है परन्तु वह स्वच्छता कार्य को इस पूर्णता से नहीं कर सकती जितना 'हवन और होली' के प्रयोग कर सकते हैं। जितने ग्रामों में सामुदायिक अलाव (अग्नि के ढेर) खुले मैदानों मे लगाए जाते हैं वह सब यही वायु शुद्धता की क्रिया अवश्य करते रहते हैं। यह अग्नि से हवन और होली के वायु शोधक प्रयोग हमारे भारत देश के प्राचीन विज्ञान का एक नमूना है। हर शिक्षित भारतवासी को चाहिये कि इस अद्भुत उपयोगी प्रयोग का प्रचार जनता के हितार्थ सर्वसाधारण मे करे।

(२३) प्राचीन भारतवासी अशुद्ध वायु को स्वच्छ बनाने में अग्नि का दुहरा उपयोग करते थे यानी प्रथम तो सादी अग्नि को अङ्गीठी में प्रज्वलित करके उस में आकर्षण द्वारा घरों की बन्द और विषाक्त वायु को खैंच कर अङ्गीठी के ऊपर बनी हुई शून्याकार चिमनी से ऊपर वायु मण्डल में निकाल देने से और फिर उसी अग्नि पर कुछ वायु शोधक रोगनाशक और सुगन्धित पदार्थों (हवन की सामग्री) को जला कर उसके धूम्र को बन्द घरों में

धकेल देने से।

जैसा पीछे बताया जा चुका है पूरी शुद्धता किसी स्थान या पदार्थ की तभी हुआ करती है जब उस की शुद्धि दो क्रियायों द्वारा कर ली जावे। प्रथम क्रिया में उसके विष की पूर्णता से निवर्ति कर देनी चाहिये और दूसरी क्रिया से उस स्वच्छ किये हुए स्थान या पदार्थ को ऐसे विशोधक पदार्थों से प्रभावित कर दिया जावे कि जिमसे सूक्ष्म विष कणों की जो प्राय पदार्थों में चिपटे रह जाते हैं पूर्णतः नष्टता हो जावे। ठीक यही नियम हमारे भारतीय वैज्ञानिकों ने वायु शोधन की क्रिया में पालन किया है। पहिले तो केवल प्रज्वलित अग्नि से 'हवन और होली' के प्रयोग करके वायु का विष नष्ट कर टाला और फिर उसको सुगन्धित पदार्थों से स्वच्छ बना दिया (हवन और होली के प्रयोगों की विधि और सिद्धान्त का विस्तृत रूप से वर्णन पीछे खोज न०२१ में कर दिया है)। सुगन्धित और रोग नाशक द्रव्यों की सामग्री, घृत और मिष्टान्न आदि पदार्थों में मिश्रण करके उसी हवन और होली की प्रज्वलित अग्नि में जलाकर धूम्र उत्पन्न करने के सिद्धान्त का पूर्ण विवरण आगे खोज नं० २५ में किया जा रहा है।

(२४) क्योंकि अवस्था नं० १ और ३ में पार्थिव खाद्य पदार्थों में जल, वायु, अग्नि के इकट्ठे सम्पर्क से गलन और सड़न उत्पन्न हो जाती है। इसी नियमानुसार सब प्रकार के नाज, फल, फूल, मिठाई और अन्य खाद्य पदार्थों के जल, वायु, अग्नि तीनों में से किसी एक को कृत्रिम साधनों से निकाल देने से स्थाई सुरक्षिता पैदा हो जाती है।

(१) वायु निकाल कर शून्याकार (Vacuum) करके टिनों और बक्सों में विदेशों से हजारों प्रकार के खाद्य पदार्थ और सिगरटें तम्बाकू और चाय आदि आते हैं। प्राचीन भारतवासियों को इसका भली प्रकार से ज्ञान था।

(२) जल निकाल कर (Desiccation) सुखाकर सैकड़ों प्रकार के फल और फूल सुखाकर रखे जाते हैं विदेशों से सैकड़ों प्रकार की खाद्य वस्तुयें आकर

बिकती हैं और भारतवर्ष में भी बहुत प्रकार के फल फूल सुखाकर वर्षों तक रखे जाते हैं जैसे कचरी, करेला, साग आदि। इसके अतिरिक्त हजारों प्रकार की औषधियां भी कई २ वर्षों सुखाकर रखी जाती हैं।

(३) अग्नि निकालने से तात्पर्य यह है कि उष्णता कम करके यानी बर्फ में रखकर (Refrigeration) खाद्य पदार्थों को असीमित समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इस नियम का भी भारतवासियों को भली प्रकार से ज्ञान था जिस के कुछ उदाहरण वक्तव्य में दिये जा चुके हैं। इन्हीं तीन तत्वों को (जल, वायु, अग्नि) को न्यूनाधिक करके रखने से पदार्थों में सुरक्षिता की जाती थी और इन्हीं तीनों तत्वों (जल, वायु, अग्नि) को कफ, वायु, पित्त की उपाधि देकर त्रिदोष की सम तुलना रखकर शरीर की स्वस्थता रखी जाती थी। कृत्रिम प्रयोगों से पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये तीनों में कोई सा एक तत्व निकाला जा सकता है और सुरक्षिता विभिन्न सरल प्रयोगों से उत्पन्न की जा सकती है। पार्थिव पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये तीनों में से कोई सा एक तत्व निकालना चाहिये परन्तु तरल पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये केवल वायु या अग्नि ही (दो पदार्थों) में से चाहे जौनसा एक (पदार्थ) निकालना चाहिये।

(२५) अग्नि में अनेक सुगन्धित, रोगनाशक और पौष्टिक पदार्थ जलाकर उनके विभिन्न प्रकार के धूम्रों से अनेक प्रकार के वायु के विषों की निवृत्ति की जा सकती है और अनेक रोगों की चिकित्सा भी धूम्रों से की जा सकती है।

यह धूम्र विधान भारत देश की बहुत प्राचीन कला है अभी तक विदेशी वैज्ञानिकों ने इसके महत्व को नहीं समझा है।

विभिन्न प्रकार के सुगन्धि रोग नाशक और पौष्टिक वनास्पतिक पदार्थों को प्रज्वलित अग्नि में जलाकर विभिन्न प्रकार के धूम्र उत्पन्न किये जाते हैं। और यह धूम्र वायु के साथ मिश्रित होकर वायु मंडल की निचली तह (जो भूथल को छूती हुई है) में ठीक उसी प्रकार से विचरते हैं जैसे इस वायु की निचली तह में गन्दगी और विष के कण मिश्रित होकर फैल जाया करते हैं (इस विषाक्त वायु का वर्णन पीछे खोज नं० २२ में कर चुके हैं) जैसा पीछे खोज

न० २१ में बता चुके हैं वायु की पूर्णत शुद्धि और स्वच्छता तो तभी होगी जब सर्व प्रथम वायु के गंद गन्धों और विषों की निवृत्ति खोज न० २२ में बताई हुई प्रज्वलित अग्नि के ढेरों को घरों के खुले आंगनों या मोहल्लों को खुले हुए चौराहों में रख कर की जावे और फिर उसके उपरान्त इन सुगन्धित और रोग नाशक द्रव्यों के धूमों का सचार किया जावे। परन्तु यदि वायु विषाक्त नहीं है तो केवल धूम्र सचार करना भी साधारण कम स्वच्छता के प्रति उपयोगी होगा। वास्तविकता में हवन की प्रज्वलित अग्नि से यह दोनों प्रकार की स्वच्छता घरों की वायु में स्वय और साथ २ ही हो जायगी यदि आपने इस बात का ध्यान रखा कि अग्नि के ढेर अंगीठी या कुण्ड बाहर के खुले हुए आंगनों में रखा जावे क्योंकि छतदार घरों के भीतर अग्नि वायु मण्डल में अपनी उष्णता से गति सचार न कर सकेगी और दूसरे शब्दों में खोज न० २२ में वर्णित विष निवृत्ति का मुख्य लाभ न पहुच सकेगा केवल वायु में धूम्र के मिश्रणों से जितना लाभ पहुच सकता है वह अवश्य पहुचगा। साधारण नित्यप्रति की वायु शुद्धि करने में केवल धूम्र से ही लाभ उठाया जा सकता है। इस बात को हम फिर एक दृष्टान्त देकर पाठकों को समझा देते हैं कि हवन की क्रिया में ७५ प्रतिशत लाभ तो केवल प्रज्वलित अग्नि की अगीठी को खुले आंगनों में रखने से ही, (जैसा खोज न० २२ में बताया जा चुका है) होता है और २५ प्रतिशत लाभ उस अग्नि में सुगन्धित रोगनाशक और पौष्टिक पदार्थों को जलाकर उनके धूम्र के प्रभाव से (जैसा इस खोज न० २५ में वर्णन किया जा रहा है) होता है। पहिली प्रकार की विधि जिस के द्वारा वायु में गति सचार उत्पन्न होकर उथल पथल हो जाती है उससे वायु के तीक्ष्ण से तीक्ष्ण विषों की पूर्णत नष्टता हो जाती है और दूसरी (धूम्र सचार करने की) विधि से वायु में विशुद्धि और रोगनाशकता के प्रभाव आ जाते हैं। इन दोनों क्रियाओं तुलनात्मक यों समझ लीजिये जैसा दोनों प्रयोगों को साथ २ करने से तो क्रिया उस रोगी की चिकित्सा के समान होगी जिस के पेट की शुद्धि पहिले विरेचक औषधियों का प्रयोग कराकर फिर ज्वर निवारक औषधि दी जाती है और केवल धूम्र देने की क्रिया उस रोगी की चिकित्सा के समान होगी जिस को केवल ज्वर निवारक औषधि ही दी जाती है परन्तु हर स्थान पर हर समय वायु इतनी विषाक्त नहीं होती इस कारण केवल धूम्र देने की क्रिया भी मनुष्यों के घरों की वायु स्वच्छता करने में परमोपयोगी प्रमाणित होगी। दूसरे प्रथम क्रिया को निवृत्तक (Curative) यदि माना जाता है तो दूसरी क्रिया अवश्य ही विष अप्रवत्तक (Preventive) है।

अब धूम्र विज्ञान का थोड़ा सा संक्षिप्त विवरण करते हैं। धूम्र भूस्थल की तह वाली वायु में मिश्रित होकर चारों ओर फैल जाता है। वायु एक ऐसा सूक्ष्म पदार्थ है कि यह हर स्थान और हर पोल वाले पदार्थ में हर समय रहता है। इसी वायु को भूस्थल पर रहने वाले सब प्रकार के जीवधारी और मनुष्य २०—२५ बार प्रति मिनट श्वास द्वारा अपने शरीरों के भीतर ले जाते हैं और इतनी ही बार भीतर की अशुद्ध वायु को बाहर फेंकते रहते हैं इसके अतिरिक्त भूस्थल पर उगे हुए पेड़ और पौदे भी वायु को अपने भीतर ले जाते रहते हैं और अपने भीतर की वायु को बाहर निकालते रहते हैं। इस कारण वायु में औषधियों के धूम्र विकीर्ण करने की क्रिया से केवल वायु की विष नष्टता नहीं की जा सकती एवं इसके प्रभाव मनुष्यों के शरीरों में भी डाले जा सकते हैं। धूम्र विकीर्ण क्रिया से मनुष्य के शरीरों पर प्रभाव डालने का बड़ा महत्वशील और अद्भुत कार्य है जिस को कोई अन्य क्रिया नहीं कर सकती। भारतीय वैज्ञानिकों ने धूम्र से अनेक प्रकार के रोगी मनुष्यों की चिकित्सायें भी की हैं परन्तु हम केवल धूम्र से वायु शुद्धता करने के प्रयोगों का ही संक्षिप्त वर्णन करते हैं। स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी इन क्रियाओं में धूम्र क्रिया का सदुपयोग भारत में होता चला आया है। यहीं पर देवालयों में घृत के दिये जलाने और धूप देने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। त्यौहारों और पूजाओं के शुभावसरों पर भी भारतवासी घरों में घृत के दिये जलाते हैं और धूम्र का प्रयोग भी करते हैं। घृत का धुवां भारतीय वैज्ञानिकों के कथनानुसार नमोनिये तक को लाभकारी होता है (घृत देशी होना चाहिये) घृत की महत्वता आधुनिक काल में समझना तो अलग रहा लोप होती चली जा रही है क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिकों ने घृत को केवल एक चिक्नाई का ही पदार्थ मान कर समाप्ति दे दी है। उसकी महत्वता प्राचीन भारतवासी पूर्णतः समझते थे। घृत का धूम्र मनुष्यों के लिये एक परमोपयोगी वस्तु है। शरीर को छोटी मोटी बीमारियों से भी मुक्त रखता है। घृत के धुवें से चित्त में प्राकृतिक प्रसन्नता आती है। शक्कर के धूम्र की उपयोगिता को आधुनिक वैज्ञानिक भी मानने लग गये हैं कुछ दिन होगये कि फ्रांस देश के एक वैज्ञानिक ने इस ज्ञान का कथन किया है कि शक्कर को अग्नि पर जलाने से जो धूम्र उत्पन्न हो जाता है उस में अधिक अंश "फारमिक एसिड (Formic Acid) का होता है जो पदार्थ स्वयं विष नाशक होता है। और यह कि शक्कर का धूम्र घरों के वायु मण्डल में विष नाशक प्रभाव उत्पन्न करता है इस लिये इसका अस्पतालों के रोगियों के कमरों में अवश्य प्रयोग किया जाना चाहिये। विशेष कर ऐसे कमरों में जहां पर

पुराने रोगियों को रक्खा जाता है। घृत और शक्कर यह दो हवन की सामग्री में मिलाये जाने वाले मुख्य पदार्थ हैं। घृत के धूम्र का प्रयोगता के उदाहरण भारत में घर २ में आज भी मिल जायगे। शक्कर के धूम्र की उपयोगिता का एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक के कथनानुसार उसका अनुभव उसके स्वयं के शब्दों में ऊपर दे दिया है अब हवन सामिग्री की अन्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में से कुछ के वर्णन यहाँ करते हैं।

(१) नारियल और गोले के धूम्र से वायु के सर्व प्रकार के विषों की तुरन्त नष्टता हो जाती है—पिछले महायुद्ध में नारियल का कोयला (Cocoanut Charcoal) विषैली गैसों के प्रभाव से बचाने के लिये सिपाहियों के मुख और नाकों पर बांध दिया जाता था। भारत में गोले और नारियल का प्रयोग हवन और यज्ञों में आज तक होता चला आ रहा है।

(२) कपूर का धूम्र वायु के सर्व प्रकार के विषों का नाश करता है और न्यूमनिये को रोकता है।

(३) कॉफी के दानों का धूम्र और कीकर का गोंद, गूगल, कपूर इन तीनों को समतुलना में लेकर इन तीनों का धूम्र चेचक आदि के विष की वायु से स्वच्छता करता है।

(४) लाल मिर्चों का धूम्र हैजे और मलेरिया के विषों से वायु की शुद्धि करता है।

(५) नीम के सूखे पत्तों का धुआ वायु में से प्लेग आदि तीक्ष्ण विषों की निवृत्ति करता है।

(६) तम्बाकू के पत्तों का धूम्र वायु में से हैजे के विष की स्वच्छता करता है।

(७) गंधक, अजवायन के धूम्र से घाव भरते हैं और रक्त को शुद्ध करता है। इसी कारण भारतवर्ष के कामों में आज तक इस धूम का उपयोग बच्चा पैदा होने के घरों में किया जाता है।

(८) इन वस्तुओं के धूम्र से (अलग २ करके वायु की शुद्धता होती है और मच्छर कम होते हैं। शक्कर, नींबू का छिलका, गन्धक आटे की भूसी, पोतनी मिट्टी, नागदोन, गुगल, कुदर, बेरजा, कचनार की छाल, सुरू के पत्ते, बकरी की मैंगनी, इसपद, मदार के पत्ते, मकोय, अगर नीम के पत्ते।

(९) इन वस्तुओं के धूम्र से (अलग २) वायु की शुद्धता होती है। शक्कर अगर, वच, राल, बेरजा, लौबान, गूगल, रस गंध, कलौंजी।

(१०) इन वस्तुओं के धूम्र से (अलग २) घरों मे से साँप भाग जाते हैं—समालू के सूखे पत्ते, मूली के सूखे पत्ते, वच, और हींग (दोनों को सम तोल लेकर) बारह सिंगे का सींग।

(११) हड़ताल, मूली के सूखे पत्तों के धूम्र से घरों के बिच्छू भाग जाते हैं।

(१२) गन्धक, भङ्ग, नीम के छिलके (अलग २) के धूम्र से खटमल कम हो जाते हैं।

(१३) गूगल या प्याज के धूम्रसे वर्रें कम हो जाती हैं।

धूम्र विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जिस मे इस समय तक भी भारतीयों के पास जितना ज्ञान भण्डार है अन्य देश वासियों के पास नहीं है और सभवत यही कारण है कि अन्य देशवासियों ने इसकी उपयोगिता का महत्व अभी तक नहीं समझा। इस बात पर उनको अभी तक भी विश्वास नहीं है कि धूम्र से न केवल स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी ही प्रयोग किये जाते हैं एव भारत देश मे बहुत से रोगों के निवारणार्थ भी धूम्र की उपयोगिता होती चली आई है। यह बात हमारे लिये कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है जिस आधुनिक विज्ञान मे वायु की शुद्धिकी आवश्यकता को न माना जाता हो वह धूम्र की उपयोगिता को कैसे माने।

(२६) प्रकृति ने किसी भी जहरीले जानवर या कीड़े में कोई विष मनुष्य को हानि पहुँचाने के लिये नहीं बनाया विशेषतः उन कीटाणुओं में जो घरों में पैदा हो जाते हैं। जिन २ कीटाणुओं में यह विष होते भी हैं वह किसी दूसरे ही कार्यों के प्रयोजनार्थ होते हैं और प्रकृति की ओर से इस बात की बड़ी सावधानी रखी गई है कि यह कीटाणुओं के विष मनुष्यों को हानि न पहुँचावें। फिर भी जहाँ मनुष्य इन जहरीले कीटाणुओं द्वारा अपने को हानि पहुँचा लेता है वहाँ उस की असावधानी ही मुख्य कारण होता है।

यह जहरीले कीटाणु और जानवर विष निर्वाण के कार्यों की मनुष्य हितार्थ बड़ी २ जटिल समस्याओं की पूर्ति करते हैं। यदि मनुष्य विषोत्पत्ति की रोक थाम,स्वय करके रक्खेंगे तो यह कीड़े और कीटाणु या तो वहाँ पर आयेंगे ही नहीं या आ कर तुरन्त हट जायेंगे। यदि मनुष्य अपनी अनभिज्ञता या हठ धर्मी द्वारा इन स्वास्थ विभाग के सिपाहियों के साथ छेड़ छाड करता है या अपनी शक्ति का प्रयोग करके इन को विध्वश करने लगता है और उस कारण (विष या गदगी) को नहीं हटाता जिसकी निवृत्ति करने के हेतु यह वहाँ प्रकृति की ओर से नियुक्त किये जाते हैं तो लाभ कुछ नहीं होता और प्रकृति वहाँ पर अन्य प्रकार के ऐसे कीड़े और कीटाणु उस विष की निवृत्ति करने के लिये उत्पन्न करती है जिन को अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण या कार्य वेगता के कारण मनुष्य हजारों प्रकार के उपाय करने पर भी नष्ट करने में असमर्थ रहता है और जो पहिले कीटाणुओं से अधिक विषैले होते हैं। हर प्रकार के कीड़े और कीटाणुओं से मुक्त रहने का केवल एक मात्र उपाय है कि उन कीटाणुओं के एक बार हटाने के साथ २ उन गन्दगी और विषों के कारणों को भी दूर करा जावे जिनके लिये वे वहाँ पर उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों के केवल शक्ति प्रयोग द्वारा या नष्टता

करके किसी भी प्रकार के कीडे कीटाणुओं को किसी क्षेत्र से हटाने के विधि बिल्कुल बेकार प्रमाणित होतो है क्योंकि ऐसी विधियें अप्राकृतिक अकार्थक और अवैज्ञानिक हैं। इनविधियों से आज तक किसी को सफलता प्राप्त नहीं हुई।

मनुष्यों को विषैले कीटाणुओं से बचाने के हेतु प्रकृति ने विषैले कीटाणुओं में मनुष्य का भय उत्पन्न कर दिया है जिस कारण वे मनुष्य से भयभीत रहते हैं और यथाशक्ति उसके सम्पर्क में नहीं आते और मनुष्य के घरों में मनुष्य के पैदा किये हुये विषों की निवृत्ति करने के कर्तव्य का पालन करते हुए भी अपने आपको मनुष्य से अलग रखते हैं। साधारण विषैले कीटाणु बर्र, ततय्या आदि जिन को अपने कर्तव्य पूर्ति के लिए मनुष्यों के रहने के स्थानों में ही उड़ कर आना पड़ता है उनके उड़ने में प्रकृति ने एक प्रकार का शब्द पैदा कर दिया है जिस से मनुष्य उस प्रकृति के स्वस्थ विभाग के सिपाही के विषैले हथियारों से उसका शब्द सुन कर अपने आप को बचाले। इन विषैले कीटाणुओं का विस्तृत विवरण हम इस खोज न० १६ में यहाँ पर करेंगे। बर्रे उन गन्दे स्थानों में पैदा की जाती है जहाँ गन्दे और सड़े हुये पदार्थों में चिकनाई होती है और ततय्ये वहाँ पैदा किये जाते हैं जहाँ गन्दे पदार्थों में मिठाई मौजूद होती है। यहाँ पर एक आवश्यक बात यह भी बता दी जाती है कि प्रकृति की इस स्वास्थ रक्षक फौज के नियम इतने कडे और अटल हैं कि यथोचित चेतावनी देने के पश्चात् भी यदि मनुष्य इन सिपाहियों से सावधान नहीं रहते उनको यदि इनके स्वास्थ रक्षक कार्य सम्बन्धी हथियारों से कोई क्षति पहुंच जाती है तो वे कोई खेद प्रकट नहीं करते और निस्संकोच अपने कार्य में संलग्न रहते हैं। इन प्रकृति की स्वास्थ रक्षक सेना के सिपाहियों को भी हमारे राज्य सेना के सिपाहियों के समान तीन आवश्यक पदार्थ प्रकृति की ओर से दिये जाते हैं (१) आवश्यक उपकरण (औज़ार) हथियार (२) यथोचित वर्दी (वस्त्र) और (३) कार्य करने का प्रयोजनीय अभ्यास।

जितने विषैले कीटाणु और कीड़े मकोड़े मनुष्यों के रहन सहन के स्थानों में दीख पड़ते हैं यह अपना विष कहीं बाहर से नहीं लाते हैं एवं यह उन का विष मनुष्यों के घरों से ही इकट्ठा किया हुआ होता है उन पाखानों आदि के स्थानों में से जहाँ बर्रों की उत्पत्ति हो जाती है। जो गन्दगी में से विषैली गैसें निकलती हैं वे उनको चूस कर उनके विष के सार को अपने शरीर के एक भाग में इन्जैक्शन के ट्यूब के रूप में बन्द करके रख लेती हैं। इसी भाँति कार्य ततय्ये भी करते हैं अन्तर बर्र और ततय्ये के कार्य में यह होता है कि बर्र चिकनाइयों की सड़न के विषों को चूसती है तो ततय्या मिठाई की सड़न के विषों को चूसता है। यह दो प्रकृति के सिपाही तो वायु सेना विभाग के सिपाही हैं उसी समान जल सेना के सिपाही जल के विषों की निवृत्ति करते हैं और स्थल (भूमि) सेना के सिपाही शुष्क (पार्थिव) विषों की निवृत्ति करते हैं। जैसे उन्हीं पाखानों की गन्दगी यदि मनुष्यों ने जल में मिश्रित करके गढों में भर दी और उन की सफाई करनी छोड़ दी तो उस जल में विषैले कीटाणु (गिडारादि) उत्पन्न हो कर उस विष की निवृत्ति करने लगते हैं और यदि इस गन्दगी को न तो वायु में उडने दिया और न जल में बहने दिया केवल किसी मकान में बन्द करके देर तक पड़ा रहने दिया तो वहाँ पर तुरन्त झींगर आदि कीडे (cockroaches) उत्पन्न हो जायेंगे और विष की निवृत्ति करनी आरम्भ कर देंगे। यह विष निवृत्ति की लीलाओं के नाटक घरों के गन्दे पाखानों और मूत्र स्थानों में नित्य प्रति होते रहते हैं और इन प्रकृति के सिपाहियों का एक विशेष सैन्य दल जिस में अधिकतर विषैले कीटाणु ही होते हैं कार्य करता रहता है। वैसे तो घरों के क्षेत्रों में कई प्रकार के सैन्य दल कार्य करते रहते हैं जैसा आगे बताया जावेगा। परन्तु पाखानों और मूत्र स्थानों में कार्य करने वाला सैन्यदल सब से अधिक विष निवृत्तक होते हैं क्योंकि सत्य स्वास्थ्य विज्ञान के सिद्धान्तों की अनभिज्ञता न्यूनाधिक सब जगह मनुष्यों में फैली हुई है यदि हमारे देश वासियों के मौजूदा घरों में उन की अविद्या और निर्धनता के कारण हैं तो

दूसरी ओर पाश्चात्य देशों में उन की हठ धर्मी के कारण है।

यदि एक ओर हम इन वर्तमान काल के आरोग्य विज्ञान से अनभिज्ञ और निर्धन भारतवासियों के घरों के पखानों में प्राकृतिक स्वच्छता की कमी के कारण विषोत्पत्ति होते हुए देख रहे हैं। तो दूसरी ओर पश्चात्य आरोग्य विज्ञान की शिक्षा प्राप्त किये हुये देश वासियों के घरों के पखानों में दूसरे प्रकार की विषोत्पत्ति होती हुई देख रहे हैं। अंतर केवल यही है कि देशी ढङ्ग के पखानों में कार्य अधिक होने के कारण विशेष प्रकार के कीटाणुओं को कार्य करना पड़ता है। और पाश्चात्य ढङ्ग के पखानों में कार्यक्रम और कार्य भिन्न प्रकार के होने के कारण दूसरे प्रकार के कीटाणुओं को कार्य करना पड़ता है। विष निवृत्ति कार्य दोनो ही जगह प्रकृति के सिपाहियों को करना पड़ता है। यहाँ पर यह बात हर मनुष्य को ज्ञात रहनी चाहिये कि घरों में हर मनुष्य गंदगी उत्पन्न करने वाली छोटी सी मिल या फैक्टरी है जैसे आप देखते हैं कि शक्कर मिलों में निर्गंध गन्नों का रस प्रयोग में लाया जाता है परन्तु स्वच्छ शक्कर की उत्पत्ति के साथ साथ थोड़ी मात्रा में अति तीव्र दुर्गंध रखने वाले शीरे की भी उत्पत्ति होती है। उसी शक्कर मिल के सिद्धान्त पर मनुष्य शरीरों को समझिये। इन में स्वच्छ भोजन खाया जाता है और इस अन्न से स्वच्छ रक्त उत्पन्न होने के साथ साथ कुछ मात्रा में विष्टा मूत्रादि कई प्रकार के मलों की उत्पत्ति भी होती है। मनुष्यों के शरीरों में से गंदे पदार्थों और विषों की उत्पति दिन रात चौबीस घण्टे बराबर होती रहती है इस कारण कि यह मिलें कभी बंद नहीं रहती है। यह है वह गन्दगियें जिनकी निवृत्ति विज्ञानिक रीति से होनी चाहिये थी। और इन्हीं गन्दगियों की निवृत्ति ठीक प्रकार से न की जाने पर विभिन्न प्रकार के विषों की उत्पत्ति हो जाती है और इन्हीं विषों से फिर रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। उसी निवृत्ति कार्य को भली प्रकार से करने के लिए आरोग्य विज्ञान (Sanitary Science) की रचना की गई है। साधारणतः घरों के पाखाने और मूत्र स्थान एक कोने में बनाने चाहियें यदि ... पक्का और दो ... [illegible]

कोनों पर ही पाखाने बनाने चाहिये क्योंकि पाखानों में रोशनी और वायु सचार रखने से उनमें विष्टा आदि गन्दे पदार्थ थोड़े समय तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं। उनके थोड़े समय तक रखने में सड़न गलन की उत्पत्ति और अधिकता में न होगी। पाखाने बनाते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिये कि पहिले तो उनमें अधिक स्थान न दिया जाय और यथा शक्ति ऊपर की छतों पर खुली वायु में बनाने चाहियें जहां पर धूप, रोशनी और वायु सचार का अभाव न हो। इनकी छतों या दीवालों में रोशनी और वायु सचार के मार्ग देने चाहिएँ। भीतर चारों ओर की दीवालों पर कम से कम दो २ फीट ऊँचाई तक और नीचे के फरश पर चिकना सीमेंट का पलास्तर होना चाहिये। चारों ओर के खड़े और पड़े कोनों के प्लास्तर में गोलाई दे देनी चाहिये और फरश में ढाल पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये जिस से थोड़ा सा जल भी बीच में फरश पर न रुक सके। पाखानों की नालियों में भी पर्याप्त मात्रा का ढाल और चिकना सीमेंट प्लास्तर किया जाना चाहिये। छतों की लकड़ियों को और दरवाज़े खिड़कियों आदि को कोलतार से रङ्ग कर रखना चाहिये (गरम कोलतार में ½ भाग चूना मिला कर) भीतर सफेद कलई चूने से पुताई छः मास में एक बार अवश्य कराई जावे। विष्टा सचय के लिये जहाँ तक हो सके ताम चीनी के बर्तनों का प्रयोग किया जावे यदि ताम चीनी के बर्तनों के मिलने में असुविधा होती है तो फिर मिट्टी के बर्तन रक्खे जावें जिन की कलई चूने से हर चौथे दिन पुताई करा दी जावे। अभिप्राय यह है कि इन बर्तनों में विष्टा का एक तो गदा जल शोषित न हो सके और दूसरे इन से विष्टा साफ करने के उपरान्त लगी न रह जाय। हर बार जब इनमें से विष्टा निकाल कर बाहर भेजी जाये तो इनको किसी बुर्श से मल मल कर धो देना चाहिये और उसके उपरान्त इनमें थोड़ा सा फिनाइल या चूने का पानी डाल कर रख देना चाहिये। पाखाने की छतों के निकट थोड़े लकड़ी के कोयले या तो खुले हुए किसी ताक में रख देने चाहिए और या इनको किसी मिलमिले कपडे की थैली में भर कर छत से लटका देना चाहिये। यह कोयले पाव भर के लग-भग होने

चाहिये और आठ दिन में बदल देने चाहिये। पाखाने धोने के लिए यदि फिनाइल न मिल सके तो साबुन का पानी फिटकडी का पानी, कसीस या सुहागे का पानी, चूने का पानी, नीम के पत्ता का पकाया हुआ पानी और कुछ न मिले तो लकडी की राख के पानी का प्रयोग करना चाहिये। मूत्र स्थानों में या तो मूत्र को चीनी के बर्तन में सुरक्षित करके रखा जावे (एकत्रीकरण) और फिर उसको इटवाकर गढों में या शहर से बाहर फिकवाना चाहिये और या मूत्र स्थान में हर बार मूत्र करने के साथ २ आधी बालटी जल की डाल देनी चाहिये (विकीर्ण क्रिया) हमारे सर्व साधारण घरों में यह दूसरी विधि जल डाल कर विकीर्ण क्रिया करने की ही अधिक लाभकारी और सुविधा जनक है और सस्ती भी है और यह क्रिया साधारण स्वच्छता के लिए प्रभाव शील है। पाखानों या मूत्र स्थानों में इधर उधर थूकना या नाक साफ करना नहीं चाहिये। जब भी यह क्रियाएं की जावें तो नालियों के ऊपर की जावे और साथ साथ जल डाल देना हितकारी है। यह है साधारण घरों के पाखाने और मूत्र स्थान बनाने के कुछ थोडे से नियम।

अब पाश्चात्य ढगों के पखानों और मूत्र स्थानों में विषोत्सर्ग कैसे होती है और उनमें हमारी प्रकृति की स्वास्थ्य रक्षक सेना के सिपाहियों को कहाँ कहाँ कार्य करना पडता है यह भी सुन लीजिए जहां पर 'फ्लशिंग नल' (Flushing pipes) लगे हुए हैं जिनसे विष्टा जल में मिल कर नलों में बहकर चली जाती है वह तो सर्व श्रेष्ट विधि (एकत्रीकरण क्रिया) है जिसमें वायु के सम्पर्क को विष्टा और जल के मिश्रण से काटकर रक्खा जाता है और नलों में बहती हुई विष्टा का वायु सम्पर्क काटकर रखने के कारण विष्टा को सडने से रोक दिया जाता है। इस प्रकार बडे बडे शहरों के फैले हुए घरों और मौहल्लों की विष्टा को चीनी के नलों में जल के सहयोग से बहाकर किसी एक स्थान पर इकठ्ठा करके नष्ट कर दिया जाता है (दोनों प्रकार की नष्टता को खोज नं० १८ में बताई हुई विधियों में से किसी एक विधि से) परन्तु लकडी के बक्सों आदि के बने हुये कमोडों में चीनी या अलमोनियम आदि के

बर्तन लगाकर जो पाश्चात्य ढङ्ग के पखानों का प्रयोग किया जाता है उसमें देशी पखानों से अधिक हानि होती है क्योंकि इस ढङ्ग में निम्नलिखित त्रुटियें होती है।

इन कमोडों को एक बार में एक ही मनुष्य प्रयोग में ला सकता है और इस के उपरान्त इस की तुरन्त सफ़ाई करने की आवश्यकता पड़ती है जिस से सर्वसाधारण मनुष्यों के लिये विशेषत दस पांच कुटम्बियों वाले घरों के लिये बेकार है। जहाँ पर मनुष्य एक दो ही हैं या जहां पर मनुष्य इस की बारम्बार सफाई भी करा सकते हों वहां भी इन कमोडों के सेवन में निम्न लिखित त्रुटियें हैं।

(१) आरोग्य विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल विष्टा के मनुष्य के शरीर से निकलने के उपरान्त (खोज न० १८) या तो 'एकत्री करण' करके बन्द बक्सों में बन्द कर लिया जाना चाहिये जिस से यह विष्टा वायु संसर्ग में न आवे और दोनों प्रकार के लाभ हों एक तो घरों की वायु अशुद्ध न हो दूसरे विष्टा में (तीनों तत्वों के मिलने से) 'सड़न गलन' का उत्पत्ति न हो या फिर खुली वायु में जहाँ 'विकीर्ण क्रिया' साथ २ होनी आरम्भ हो जावे रक्खा जाना चाहिये जिस से उस के विषैले प्रभावों की साथ २ निवृत्ति होती रहे। कमोडों के प्रयोग में मनुष्य जितने समय तक विष्टा निवृत्ति के लिये कमोड पर बैठा रहता है उतने समय तक वह अपने शरीर के एक बहुत कोमल और परमावश्यक भाग को केवल विष्टा से निकलने वाली विषैली गैसों के घनिष्ट सम्पर्क में ही नहीं रखता एव वायु सचार के न होने के कारण इस सम्पर्क को (अभाग्य वश अनभिज्ञता के कारण) अधिक हानि कारक बना कर रखता है (जिस में यह विषैली गैसें थोडा अधिक दबाव डाल कर गुदा में प्रवेश कर सकती हैं) दूसरे आधुनिक शिक्षा के अनुयायी पाश्चात्यों का अनुकरण करके कोई २ महोदय तो वहाँ पर बैठ कर सिगरेट, पाइप आदि पीते हैं और अखबार तक पढ लेते हैं जिन क्रियाओं से विषैले संपर्क

का समय और भी अधिक हो जाता है।

(२) जब एक बार प्रयोग में लाने के उपरांत इस कमोड के ढकने को सफाई करने वाला घण्टे दो घण्टे या तत्काल ही खोलता है तो जो भी विषैली गैसें इस बिष्टा से निकल कर कमोड में एकत्रित हुई होती हैं वह बड़े तीव्र प्रवाह के साथ कमोड में से निकल जाती हैं और घर के वायु मण्डल में मिल जाती है। जिस का स्पष्ट शब्दों में आशय यह निकलता है कि जो भी कार्य अब तक बिष्टा को वैज्ञानिक ढङ्ग से 'एकत्रीकरण' करने का कमोड के प्रयोगों द्वारा (तामचीनी आदि के बर्तन लगा कर) किया था इस के सब प्रभाव को नष्ट कर दिया गया। कमोड में तामचीनी के बर्तन बिष्टा के दूषित जल के शोषण को रोकने के हितार्थ लगाये गये थे ढकना बन्द किया गया था जिस से उस के दुर्गन्धित और दूषित प्रभाव बाहर न निकलने पावें। बिष्टा को बाह्य पार्थिव और जल के सम्पर्क से बचा कर रक्खा परन्तु वायु का सम्पर्क न रुक सका। यह कमोड से निकली हुई विषाक्त वायु बन्द कमरों में दूसरे मनुष्यों के स्वास्थ्य पर जो वहाँ उसी या दूसरे कमोडों का प्रयोग करने जाते हैं दूषित प्रभाव डालती है।

(३) इस लकड़ी के बक्स पर कुर्सी के समान बैठ कर बिष्टा निवृति करने में मूत्र आदि का कमोड के तख्तों पर लग जाना बहुत साधारण सी बात है काष्ठ जैसे जल शोषण करने वाले पदार्थों की स्वच्छता धोने से भी नहीं हुआ करती। भारतीय स्वच्छता सिद्धान्त से तो शोषण करनेवाले पदार्थों की स्वच्छता अग्नि में ही देकर हो सक्ती है।

(४) जो पाश्चात्य विज्ञान के अनुयायी भारत वासी जल के स्थान में 'कागज' (Toilet Paper) का प्रयोग आज दिन तक यहां भारत में भी करते हैं इस के विषय में और थोड़ा सा कथन कर के पाखानों की निवृत्ति के बर्णन को समाप्त करके रसोई गृह और भण्डार में होती हुई विष निवृति लीला का

निरीक्षण करेंगे। विष्टा निवृत्ति की क्रिया में कागज़ का प्रयोग ठण्डे देशों में अपनी सुविधा के हेतु विदेशी मित्रों ने जहाँ भी किया होगा या कर रहे हों हम भारत वासियों को तो यह अनुकरण कम से कम तुरन्त ही छोड़ देना चाहिये क्योंकि यह प्रयोग कोई विज्ञानिक प्रयोग नहीं है। सम्भवत ठण्डे देशों में रहने वालों ने अपनी सुविधा के लिये यह चालू किया हुआ है। इस कागज़ के प्रयोग से पूर्ण स्वच्छता नहीं होती जैसी जल से और जल भारत वर्ष में बड़ी अधिकता से हर स्थान पर मिलता है और ऐसी मध्यान्ह शातता वाला जल मिलता है जो न अधिक ठंडा है न उष्ण। दूसरे कागज़ देर में गलने वाला पदार्थ होने के कारण विष्टा की गलन में एक प्रकार की अड़चन उत्पन्न करेगा। और यदि यह बात भी मान ली जावे कि यह विशेष प्रकार का कागज जो इस प्रयोग के लिये विदेशी कम्पनिया बना २ कर भेज रही हैं शीघ्र ही गलने वाला होता है, तो भी हम यह कागज़ भाय कब तक विदेशों से खरीदते रहेंगे। भारत अब स्वतन्त्र है। अभी इस के पेपर मिलों को अधिक उपयोगी कागज़ों के बनाने में लगाना चाहिये। यह टायलेट पेपर कोई आवश्यक पदार्थ प्रतीत नहीं होता। अब यह बताते हैं कि इन पाश्चात्य ढङ्ग के पाखानों में प्राकृतिक स्वास्थ्य रक्षक सेना के सिपाही किस प्रकार विष निवृत्ति क्रियायें करते हैं।

भारतीयों के घरों की गन्दगियों और विषों की निवृत्ति करने में प्रकृति को इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता है जितना पाश्चात्य सभ्यता रखने वालों के घरों की गन्दगियों और विषों की निवृत्ति करने में उठाना पड़ता है क्योंकि जिन कीटाणुओं को किसी प्रकार की विष निवृत्ति में निपुण और शीघ्र कार्यकर्ता समझा जाता है उन को भारतीयों के घरों में प्रकृति नियुक्त कर देती है और शीघ्र ही विष निवृत्ति करा देती है। प्रकृति को इस बात की चिंता नहीं रहती कि इन कीटाणुओं को कोई छेड़ेगा या इन के कार्य में कोई बाधा डालेगा जिस

का परिणाम यह होता है कि यह कीटाणु शीघ्र से शीघ्र अपना कार्य समाप्त कर लेते हैं और फिर तुरन्त ही इन क्षेत्रों से हट जाते हैं। परन्तु यह सुलभताएँ प्रकृति को पाश्चात्य सभ्यता रखने वालों के घरों में नहीं मिलतीं। वहां पर एक ओर तो गन्दगियें और विष मौजूद हैं जिन की स्वच्छता करने के लिये प्रकृति के सिपाहियों को आना और विष निवृत्ति का कार्य करना ही होगा, दूसरी ओर वहां इन सिपाहियों के साथ छेड़ छाड़ भी की जाता है जिस के कारण सिपाहियों को भी हानि पहुँचती रहती है और उनके कार्य में भी बाधा पड़ती रहती है। प्रकृति के नियम तो बड़े अटल हैं उसको स्वच्छता कार्य तो करना ही है चाहे वह कैसे ही किया जावे और कितना ही महँगा पड़े। साधारणत मनुष्यों के घरों से विष निवृत्ति कार्य मक्खियों और मच्छरों के द्वारा कराया जाता है परन्तु पाश्चात्य सभ्यता रखने वालों के चित्त में पाश्चात्य विज्ञान के सचालकों ने यह विश्वास दिला छोड़ा है कि यह मक्खियें और मच्छर ही विषोत्पत्ति करते हैं और अच्छे स्वच्छ घरों में बाहर से विष लाकर फैला देते हैं, इस कारण उन मक्खी और मच्छरों को जहाँ दीख पड़ें तुरन्त नष्ट कर दिया जावे। यदि ऐसा कर दिया गया तो विष नहीं फैलेगा (क्योंकि मोटी सी बात है जब उनके हिसाब के अनुकूल विष फैलाने वालों को ही नष्ट कर दिया गया तो विष कौन फैलायगा)। इस कारण पाश्चात्य सभ्यता रखने वाले सज्जन अपने घरों में आने वाली दस बीस मक्खियों को तुरन्त मार देते हैं। यदि फ्लिट या डी० डी० टी० आदि की पिचकारी मिले तो अच्छा ही है परन्तु यदि यह न भी मिले तो जाली लगे हुए डण्डे से अन्यथा हाथों से मार कर ही इनको नष्ट कर डालते हैं। जहां दस बीस मक्खियों या मच्छरों से अधिक बहुतों में आना प्रारम्भ करते हैं तो बारीक जाली के किवाड़ दरवाजों पर लगा छोड़े जाते हैं जिस की जाली को (Flyproof Mesh) कहते हैं जिससे मक्खी मच्छर को कमरे में घुसने का मार्ग ही नहीं मिलता। अब देखिये ऐसी परिस्थिति में प्रकृति क्या कार्य करती है और किन विशेष प्रयोगों से अपने सिपाहियों को कमरों के भीतर भेजती है। लाखों की संख्या में सूक्ष्म भुनगे उत्पन्न किये जाते हैं जो

उन किवाड़ों की जाली में सुविधा से निकल घुस सकें और इन भुनगों को भेज कर विष निवृत्ति कराती है। दूसरे गुसल खानों और पाखानों के लिये एक विशेष प्रकार के झींगर (Cockroaches) उत्पन्न करके विष निवृत्ति के लिये भेजती है। यह झींगर बड़ी तीव्र चाल से चलते हैं और क्षणों में दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। इन में से भी बहुत सों को मार डाला जाता है परन्तु जो बचते हैं वह कार्य की पूर्ति करके ही वहाँ से हटते हैं पहिले नहीं हटते। यहां पर हम एक बार का दृष्टान्त देते हैं कि जिससे पाश्चात्य सभ्यता वालों के भावों का भली प्रकार से बोध हो जाता है जो वह इस प्रकृति सेना के कीटाणुओं के प्रति रखते हैं। लेखक के एक मित्र ने एक बार अपने बङ्गले में बड़ी दौड़ धूप करने के उपरान्त एक झींगर को मार डाला और मार कर कहने लगे कि यह बड़ा ही बदमाश कीड़ा होता है। दूसरे महोदय जो किसी सेना के अफसर थे उन्होंने रेल गाड़ी में चलते २ हाथों के पंजों से मक्खियें मारनी प्रारम्भ कीं जिस से वह दूसरे स्टेशन पर गाड़ी के रुकते २ पसीने से तर हो गये और मरी हुई मक्खियों की सख्या गिनने पर केवल दस बारह ही रही। जब यह महोदय थक कर बैठ गये तो अपने कार्य को सराहते हुए बोले कि मैं इन दुष्ट शत्रु कीटाणुओं को जीवित नहीं देख सकता। अब घरों के पाखानों की विष निवृत्ति का वर्णन समाप्त करके घर की रसोई गृह और नाज आदि के भण्डारों की ओर चलते हैं।

जहाँ पर पाखानों और मूत्र स्थानों में मनुष्यों की उत्पन्न की हुई गन्दगियों में प्राकृतिक सेना के कीटाणु बड़ी दत्त चित्तता से कार्य करते रहते हैं। वहाँ अन्न और खाद्य पदार्थों के भण्डारों और रसोई गृहों में भी अनेक प्रकार के कीटाणु और जानवर अन्न और खाद्य पदार्थों से स्वास्थ्य की सुरक्षिता के हितार्थ भिन्न २ प्रकार के कार्य बड़ी तत्परता से करते दिखाई पड़ते हैं। भण्डारों और रसोई गृहों में इन कीटाणु और जानवरों के कार्य दो प्रकार के होते हैं। भण्डारों और रसोई गृहों में अन्न और खाद्य पदार्थ की प्रथम सुरक्षिता की अवस्था (खोज न० ७ में बताई हुई) में होते हैं। इस सुरक्षिता कार्य में प्रकृति के

कीटाणु और जानवरों का एक दल तो इन खाद्य पदार्थों में से विष या गन्दगि की निवृत्ति का कार्य प्राकृतिक साधारण नियमानुकूल करता है और दूसरा विशेष विभाग का दल अनुचित प्रकार से रक्खे हुए अन्न और खाद्य पदार्थों की नष्टता कर डालने के कार्य पर नियुक्त होता है। दूसरे प्रकार के कीटाणु दल को (जिस को विशेष विभाग का दल कह कर पुकारेंगे) अच्छे और स्वच्छ अन्न और खाद्य पदार्थों को खाने का अभ्यास होता है इसी कारण इस दल के कीटाणुओं और जानवरों को विशेष विभाग के कीटाणु आदि की उपाधि दी गई है। सुरक्षिता के क्षेत्र में दोनों प्रकार के विभागों के बिना कार्य की पूर्ति नहीं हुआ करती। साधारणतः राज्य शासन में भी दो ही प्रकार के विभागों के कर्मचारियों को शहरों में खाने पीने की वस्तुओं को सुरक्षिता करने में कार्य करना पड़ता है। एक तो वह कर्मचारी जो सड़ी गली वस्तुओं को ठिकाने लगावें और स्थान को विष से मुक्त करदें दूसरे वह कर्मचारी जो शासन के नियमों का पालन करायें अथवा उन खाद्य वस्तुओं को लोगों से छीन कर नष्ट करदें जो अनुचित ढङ्गों से रख छोड़ी हैं। ठीक इसी प्रकार प्रथम विभाग में तो कीटाणु और जानवर विष और गन्दगियों की निवृत्ति करते हैं। जहां कहीं और जब कहीं भी कोई अन्न या खाद्य पदार्थ में मनुष्यों का असावधानी और अनभिज्ञता से जल, वायु और अग्नि तीनों तत्वों के समकालीन सम्पर्क में आन कर थोड़े भी परिमाण में 'गलन सड़न' की क्रिया आरम्भ हो जाती है। और दूसरे विभाग (विशेष विभाग) के कीटाणु और जानवर मनुष्यों की असावधानी से अन्न और खाद्य पदार्थों को बिखरा पड़ा रहने की अवस्था में या खुला और वे ढका पड़ा रहने की अवस्था में (दोनों अवस्थाओं में) नष्ट करना आरम्भ कर देते हैं क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में 'गलन सड़न' की शीघ्र उत्पत्ति हो जाने की ही केवल आशंका नहीं है एवं तीव्र प्रकार की गलन सड़न और साथ २ विषोत्पत्ति होने की आशङ्का हो जाती है। दूसरे प्रकृति का मनुष्यों को आदेश है कि अपने खाने का अन्न और विभिन्न खाद्य पदार्थों को बड़ी सावधानी से एकत्रित करके और ढाँप कर रखने चाहियें जैसा

प्रकृति स्वयं करती है कि जितने फलादि और अन्नादि मनुष्यों के खाने के पदार्थ हैं वह सब खोलों के भीतर ढके हुए मनुष्यों के हाथों में दिये जाते हैं। अब प्रकृति देखती है कि इन को बिखरा छोड़ा गया या बिना ढाँपे छोड़ा गया तो सुरक्षिता की विशेष प्रवृत्ति रखने वाली प्रकृति इन ऐसे रक्खे हुए पदार्थों की नष्टता ही करा देने को सर्वश्रेष्ठ कार्य समझती है। और इस प्रकार से रखे हुए स्वच्छ और ताजे खाद्य पदार्थों की नष्टता करने के हितार्थ चूहे, गिलहरियें और चिड़िया इत्यादि कीटाणुओं और जानवरों की नियुक्ति करती है। यद्यपि यह कीटाणु और जानवरों से कहीं २ प्रथम विभाग *(विष निवृत्तक विभाग)* का भी काम ले लिया जाता है परन्तु इनका मुख्य कार्य दूसरे विशेष (प्रबन्ध विभाग) का ही है। खोज न० १३ में बताया हुआ नियम इस दूसरे प्रकार के कार्यों में भी लागू रहता है कि जब कीटाणुओं की क्रिया प्रारम्भ हो जाने के उपरान्त भी यदि मनुष्य स्वयं उस कार्य को करने का प्रयत्न करना आरम्भ कर देता है कि जिन कार्यों को यह कीटाणु करते हैं तो यह प्राकृतिक स्वास्थ सेना के सिपाही उस कार्य को बीच में ही छोड़ कर हट जाते हैं। इस से यह बात स्पष्ट हो गई कि विशेष दल के कीटाणु और जानवर तब तक ही नष्टता करते रहेंगे जब तक मनुष्य बिखरे हुए अन्न को स्वयं न समेट कर रक्खे या खुले हुए अन्न को ढाँप न दे। ज्यूंही यह सावधानी की बातें मनुष्यों ने कर लीं त्यूंही यह कीटाणु भी उस क्षेत्र से हट जायेंगे। इस सुरक्षिता की अवस्था (खोज न० ७ की अवस्था न० १) में खाद्य पदार्थों को 'गलन सड़न' की क्रिया से विभिन्न साधनों द्वारा जितना सुरक्षित रक्खा जायेगा उतनी ही गन्दगी और विषोत्पत्ति की कमी हो जायेगी और इस के अतिरिक्त उतने ही खाद्य पदार्थों की नष्टता से बचत हो जायगी। अन्न और खाद्य पदार्थों की बचत के लाभ या हानि की ओर प्रकृति अपना ध्यान नहीं देती एवं सर्व प्रथम कार्य स्वच्छता और स्वच्छता रखने का है जिस से जल वायु स्वच्छ रहें और मनुष्यों के शरीर स्वस्थ रहें। हाँ एक बात का सर्व प्रकार की प्राकृतिक नष्टताओं में बड़ा ध्यान रक्खा जाता है कि आवश्यकता से अधिक पदार्थ को

किसी भी परिस्थिति में नष्ट नहीं किया जाता।

सुरक्षित क्षेत्र में अब दोनों प्रकार के दलों के कार्यों का थोड़ा विस्तृत विवरण करते हैं। प्राकृतिक स्वास्थ्य रक्षक सेना के सुरक्षित क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रथम दल के कीटाणुओं का कार्य गन्दगियों और विषों की निवृत्ति करना है। यह कीटाणु जब तक कार्य प्रारम्भ नहीं करते तब तक किसी भी प्रकार की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रकार की 'गलन सड़न' की क्रिया (जो मनुष्यों की असावधानी से खोज न० १२ में बताये हुए खाद्य पदार्थों में जल, वायु, अग्नि तीनों तत्वों के समकालीन सम्पर्क से उत्पन्न होती है) आरम्भ न हो गई हों। जब किसी अन्न (गेहूँ) के ढेर में असावधानी से जल की तरी पहुँच जाती है तो ढेर में से कुछ भाग के दानों में 'गलन सड़न' की क्रिया का संचार हो जाता है। अब यहां पर प्रकृति का कार्य आरम्भ हो जाता है। इस के सिपाहियों के कार्यों की विचित्रता अन्न भण्डारों में बड़ी महत्त्वशील होती है। अन्न का हर दाना एक सम्पूर्ण फल है जिस में खाद्य तत्व तो भीतर भरा हुआ है और उस के चारों ओर उसी खाद्य पदार्थ के कठोर तत्व का एक खोल बना कर लगाया हुआ है जिस के कारण उस के भीतर भरा हुआ तत्त्व सुरक्षित रहता है। अब यदि इन अन्न के दानों के भीतर के खाद्य पदार्थ में नमी लगने के कारण 'गलन सड़न की' क्रिया होने लगेगी और उस अवस्था में यदि इन अन्न के दानों को न छेड़ा जाय तो केवल दो तीन दिन में ही यह 'गलन' की क्रिया पूरे दानों को गला देगी और फिर घण्टों में ही यह गलन सड़न सब दाने के पदार्थ को विष में परिणित कर देगी और यदि अब भी इस दाने की भूमी का खोल न छेड़ा गया तो फिर हरेक अन्न का दाना एक छोटा सा विषैला बम बन जायगा और गलन सड़न की वायु की गैसों के दबाव से यह दाने फटने लगेंगे जिस से कि उन दानों के भीतर की गैसें बाहर निकल कर वायु मंडल में छिन्न भिन्न होवेंगी। परन्तु प्रकृति ऐसा नहीं होने देती। उस अन्न के ढेर में एक ऐसे विशेष प्रकृति के कीटाणु की उत्पत्ति कर देती है जिसके मुख पर एक छेद करने वाला बर्मा लगा रहता है। इस

कीटाणु को 'सुरसरी' या 'सुरहरी' के नाम से पुकारा जाता है। यह कीटाणु हर गेहूँ के दाने में एक बारीक छेद कर देता है जिस से (वायु सचार के कारण) 'गलन सड़न' की तीव्रता मन्द पड़ जाती है और मनुष्यों को अवसर मिल जाता है कि वे अब भी उस अन्न को धूप और वायु लगा कर सुरक्षित कर लें यह कीटाणु दानों में छिद्र करके वहीं बना रहता है और उन्हीं दानों में से थोड़ा २ चूरा खा कर अपना स्थित्व बनाये रखता है। यह कीटाणु गेहूँ और जौ दोनों प्रकार के अन्नों में कार्य करता है। चनों म छिद्र करने के लिये प्रकृति को दूसरे प्रकार के कीटाणुओं को नियुक्त करना पडता है जिन के छिद्र करने वाले बर्मे कड़े प्रकार के होते हैं इन कीटाणुओं को 'ढोरा' कह कर पुकारा जाता है। इसी प्रकार दूसरे नाजों में अन्य प्रकार के कीटाणु अपनी अपनी क्रियाएँ करते हैं।

प्रकृति ने अनेक दानों पर खोल इसी कारण चढाये हैं कि मनुष्य अपने खाने के लिये इनको सुविधा से एक वर्ष के लगभग रख सके और यह एक वर्ष तक सुरक्षित भी रक्खे जा सकते हैं जब मनुष्य 'गलन सड़न' के विज्ञान से भली प्रकार जानकारी रखता हो और इन को बडी सावधानी से सुरक्षित रक्खे। जब तक इन अन्न के दानों पर भूसी के खोल चढे हुए रहते हैं तो इस अन्न को एक वर्ष से भी अधिक देर तक सुरक्षित रक्खा जा सकता है परन्तु भूसी उतार देने के पश्चात् उस की आयु का समय केवल १५–२० दिन ही रह जाता है। और जब आटे को भी जल मिश्रण करके गूद लिया जाता है तो इस की आयु का समय और भी घट कर केवल पाँच चार घण्टों का ही रह जाता है। यह सब खेल जल के सम्पर्क से उत्पन्न हुई 'गलन सड़न' की क्रिया के हैं। आटे में यदि अधिक दिनों के रखने के कारण 'गलन सड़न' की क्रिया के प्रभाव पड़ने प्रारम्भ हो जाते हैं तो फिर पहिले गेहुँओं में कार्य करने वाला कीटाणु 'सुरसरी' फिर आटे में उत्पन्न कर दिया जाता है जिस से वह उसके विषैले प्रभाव को खा कर नष्ट करता रहे। परन्तु जब गुंदे हुए आटे में अधिक देर रखने के कारण 'गलन सड़न की क्रिया का सचार हो

जाता है तो सर्व प्रथम तो आटे में खट्टापन या खमीर का प्रभाव आ जाता है (जो हलका 'गलन सडन' की क्रिया से होता है) और उसके उपरान्त एक विशेष प्रकार के कीटाणु उत्पन्न हो कर विष निवृत्ति क्रिया प्रारम्भ कर देते हैं। इन को 'गिडार' या लम्बे कीडे कह कर पुकारा जाता है यह कीटाणु शीघ्रता से विष निवृत्ति करने वाले कीटाणु होते हैं। इन कीटाणुओं की नियुक्ति केवल ऐसे स्थानों या पदार्थों में ही की जाती है जहां तीव्र विषों का सचार होना आरम्भ हो जाता है। इसी प्रकार रसोई गृहों मे कार्य होता है परन्तु अन्तर यह होता है कि रसोई गृहों में गुन्दा हुआ आटा, बनाई हुई रोटी, दाल, चावल, सब्ज़ी, मिठाई और चिकनाइयें आदि का अधिक प्रयोग होने के कारण बड़ी सावधानी से पदार्थों की सुरक्षिता रक्खी जा सकती है। अन्यथा परिणाम बडी तीव्रता के विषोत्पादक होते हैं। यहां भी प्रकृति दो प्रकार के कीटाणुओं और जानवरों के दो प्रकार के दल एक तो विष निवृत्तक और दूसरा विशेष विभाग (प्रबन्धक) बना कर नियुक्त करके रखती हैं जैसे भण्डार में करके रक्खे थे। एक दल के कीटाणुओं का कार्य क्रम तो विष निवृत्ति करना होता है और दूसरे दल के कीटाणुओं और जानवरों का कार्य बिखरे हुए खानों के अंशों को और बे ढके हुये खानों (भोजन इत्यादि को) नष्ट कर देने का है।

पहिले विष निवृत्तक कीटाणु दल की कुछ क्रियाओं का वर्णन करने के उपरान्त दूसरे विशेष विभाग के कीटाणुओं और जानवरों की विचित्र क्रियाओं का भण्डार गृह और रसोई गृहों दोनों क्षेत्रों का दिक्दर्शन करायेंगे।

रसोई गृहों में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि वहाँ के फरशों को या तो नित्य प्रति एक या दो बार जल से अच्छे प्रकार से धोया जाये या यदि कच्चे फरश हों तो उन को दिन में एक बार स्वच्छ मिट्टी से पोतना चाहिये। ऐसा यदि नहीं किया गया तो आटे के और भोजन के सूक्ष्म कणों के फरशों पर गिर कर एकत्रित हो कर 'गलन सड़न' आरम्भ होने के प्रभाव बडे हानि कारक होंगे और

प्रकृति अपनी ओर से इन प्रभावों की रोक थाम करने के लिये बडे २ विषैले कीटाणुओं को नियुक्ति करेगी। और दो ही दिनों में वहाँ झींगर, मकड़े चेंटे गिडारें आदि कीटाणु दिखाई देने लगेंगे। भोजनालयों और रसोई गृहों में 'गलन सडन' की क्रिया जल की निकटता के कारण बड़ी शीघ्रता से होती है। यहाँ उत्पन्न होने वाले कीटाणुओं के प्रकारों और सख्या का निर्भर भोजनों के प्रकार और कणों के परिमाण पर है जिन कणों को नष्टता करके वहाँ से हटाना ही इन कीटाणुओं का मुख्य कर्तव्य है। चेंटियें तो वहाँ चिकनाई और मिठाई के कणों पर तुरन्त आ जाएँगी क्यों कि इस कीटाणु की गन्ध शक्ति बड़ी तीव्र होती है। काले रङ्ग के चेंटे भी रसोई गृहों में पड़ी हुई मिठाई पर तुरन्त आजाते हैं। मक्खी तो एक साधारण वायु सेना विभाग का सिपाही है ही जो घरों की सैंकड़ों प्रकार की गन्दगियों में विष निवृत्तक कार्य करता ही रहता है। यह सिपाही घर के सब ही क्षेत्रों में कार्य करता है परन्तु इसका कार्य केवल दिन की रोशनी में ही होता है। सायकाल को अंधेरा होते ही यह रस्सियों आदि पर बैठ कर विश्राम करने लगता है। इस सिपाही का उत्तरदायित्व घरों की सब प्रकार की गन्दगियों में होता है और यही कारण है मक्खियाँ घरों में अन्य प्रकार के कीटाणुओं से सख्या में सब से अधिक होती हैं। दूसरा बरावरी का उपयोगी कीटाणु मच्छर है जो अंधेरे में विष निवृत्तक कार्य करता रहता है। इस कीटाणु का भी घरों में उत्तरदायित्व हर स्थान की गन्दगियों में होता है परन्तु यह कीटाणु जल सम्बन्धी गन्दगियों की निवृत्ति करता है क्योंकि यह गन्दे पदार्थों से विषाक्त जल को पी कर गन्दगियों को साफ करता है मक्खियों के समान खाकर साफ नहीं करता।

सुरक्षिता रखने वाले पहिले कुछ कीटाणुओं की विष निवृत्ति कार्य लीलाओं के वर्णन कर चुके हैं अब दूसरे (विशेष विभाग) के कुछ कीटाणुओं और जानवरों की प्रबन्धक कार्य लीलाओं का उल्लेख करते हैं। पीछे बताया जा चुका है कि यह प्रकृति की स्वास्थ्य सेना का विशेष विभाग है जो केवल अन्न और खाद्य पदार्थों की खोज न० ७

में बताई हुई अवस्था न० १ में ही कार्य करते हैं। इनकी आवश्यकता अवस्था न० २ और ३ में नहीं पड़ती। इस विशेष विभाग के कीटाणु और जानवरों को स्वच्छ अन्न और खाद्य पदार्थ खाने का अभ्यास दिया जाता है। इनका मुख्य कर्तव्य 'बिखरे हुए और खुले हुए' अन्न और दूसरे खाद्य पदार्थों की नष्टता करना होता है। क्योंकि यह थोड़ी मात्रा में बिखरे हुए अन्नादि खाद्य पदार्थ न केवल 'गलन और सड़न की तीव्र क्रिया की शीघ्रता से उत्पन्न हो जाने के मूल कारण हैं एवं उनसे विषोत्पत्ति होने से घर की वायु के शीघ्र विषाक्त हो जाने की सम्भावना भी साथ साथ लगी हुई है। इसी कारण थोड़ी मात्रा में छिड़के और बिखरे हुए अन्न और खाद्य पदार्थों की यह कीटाणु और जानवर तुरन्त नष्टता कर देते हैं। इस विभाग के केवल पांच कीटाणुओं और जानवरों के कार्यों की संक्षिप्त व्याख्या की जाती है। वैसे इस विभाग में अनेक जानवर काम करते हैं परन्तु पाँच कीटाणु और जानवर चींटियें, चेंटे (काले), चूहे, गिलहरियें और चिड़िया घरों में बिखरे हुए और खुले हुए अन्नादि खाद्य पदार्थों को तत्काल अपना भोजन बना कर नष्टता करके निम्न लिखित चार प्रकार की स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धि जटिल समस्याओं को हल करते हैं।

(१) जो अन्न आटा, दाल, चावल और शक्कर आदि के दाने मनुष्य की अज्ञानता और असावधानी के कारण बर्तनों से बाहर फर्शों पर पड़े रह जाते हैं उन की (तत्काल अपना भोजन बना कर) तत्काल और पूर्ण सफाई कर दी जाती है जिससे उनकी (जल, वायु और अग्नि के सम्पर्क में आकर) गलन सड़न की क्रिया से विषोत्पत्ति की आशङ्का निर्मूल कर दी जाती है।

(२) इन बिखरे हुए दानों की नष्टता का कार्य दो विभागों में प्रकृति बाँट देती है। एक विभाग में जिस में चेंटियें और चेंटे ही कार्य करते हैं बहुत मन्द गति से कार्य होता है। यह बहुत सूक्ष्म कणों के ही हटाने का कार्य करते हैं। दूसरा विभाग जिस में चूहे, गिलहरी और छोटी चिड़ियाँ काम करती हैं (बन्द और अंधेरे में चूहे, चादने और बाहर के मकानों में गिलहरियाँ और खुले मकानों में चिड़ियाँ) बहुत

विद्युतीय तीव्र गति से कार्य होता है और यह जानवर सब बड़े २ दानों को बड़ी शीघ्रता से भक्षण करके साफ कर देते हैं। इन के कार्यों की एक के प्रति मन्द गति और दूसरे के प्रति तीव्र गति होने का यह लाभ प्रकृति उठाती है कि दोनों प्रकार के सिपाही अपना कार्य घर वाले मनुष्यों की दृष्टि के सामने करते रहते हैं और उन को इस का अनुभव नहीं होता (मनुष्य की गति मध्यान्द है और इस से केवल मध्यान्द गति का ही अनुभव करने का अभ्यास रखता है)।

(३) यह कीटाणु और जानवर इन अन्नादि के दानों को अपने शरीर में खा कर अपने शरीरों से कोई दुर्गन्धित पदार्थ या मल विष्टा नहीं निकालते क्योंकि इन तानों की विष्ठा निर्गन्ध ही होती है।

(४) इन बिखरे हुए अन्नादि पदार्थों की निवृत्ति इस विलक्षणता से की जाती है कि सुरक्षित हुआ अन्नादि और दूसरे खाद्य पदार्थ जो उसी कीटाणुओं के कार्य क्षेत्र के निकट ही रक्खे रहते हैं उन में कोई निकृष्ट या विषैले प्रभाव नहीं पड़ते।

घरों में यह उपरोक्त चार जटिल समस्याओं का हल इन प्राकृतिक स्वास्थ रक्षक सेना के इन पाँच प्रकार के कीटाणुओं और जानवरों के कार्यों से होजाता है जिस के कारण घरों के भीतर इन खाद्य पदार्थों से विषों की उत्पत्ति नहीं होती।

यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन बिखरे हुए अन्न और दूसरे प्रकार के खाद्य पदार्थों के कणों को जो मनुष्य की असावधानी से भण्डारों और खाने के कमरों के फ़र्शों पर बिखर जाते हैं यदि दो चार दिनों तक भी पड़ा रहने दिया जायगा तो वहाँ पर इन अन्न के दानों में तुरन्त 'गलन सड़न' क्रिया का संचार हो जायगा और तुरन्त ही उससे तीव्र प्रकार के विषों की उत्पत्ति होने लगेगी क्योंकि (जल, वायु और अग्नि) तानों तत्वों के समकालीन सम्पर्क हो जाने की घरों में अत्यन्त सम्भावना रहती है। दूसरी बात यह है कि जैसा पीछे खोज न० ७ में बताया गया है कि जो अन्न या फल) सुरक्षिता की अवस्था (अवस्था न० १) से सीधे मल या विनाशक अवस्था में (अवस्था न० ३) 'सड़गल' कर परिणित हो जाते हैं उनसे विष बड़े तीव्र प्रकार के उत्पन्न

होते हैं। वास्तविकता में इसी प्रकार के विष ही जल वायु को दूषित करके भयङ्कर रोगों की उत्पत्ति करते हैं। इस कारण यह कहा जा सकता है कि महान प्रकृति के मनुष्यों के स्वास्थ्य के हित में इन विशेष विभाग के पाँच प्रकार के उपरोक्त कीटाणु और जानवरों की घरों की स्वच्छता करने के लिये उत्पत्ति करके कितने महत्व का कार्य किया है कि विषों की उत्पत्ति की होने से प्रथम ही रोकथाम कर दी है और ऐसी विलक्षण विधियों अथवा प्रयोगशालाओं के द्वारा यह कार्य किया गया है जिससे किंचित मात्र भी दुर्गंध नहींनिकलती। हम केवल एक छोटे से भारतीय वैज्ञानिक के नाते प्रकृति की इस विचित्रता की हार्दिक सराहना करते हैं और साथ २ अपने पाश्चात्य वैज्ञानिकों और उनके अनुयाई मित्रों का दृढ़ शब्दों में एक बार फिर ध्यान आकर्षित कराते हैं कि यह प्रकृति की स्वास्थ्य रक्षक सेना के सिपाही जो इतने महान कार्यों को स्वस्थता क्षेत्र में मनुष्यों के स्वार्थ अवैतनिक रूप में करते रहते हैं उन को अब भी 'मनुष्यों के शत्रु' समझना बन्द कर दें और अपनी 'मित्र और शत्रु की पहचान शक्ति को प्रबल करें जिस से विश्व को लाभ हो। यह कीटाणु और जानवर मनुष्यों के मित्र हैं उनको शत्रु की उपाधि देना प्रकृति के प्रति हमारी ओर से कृतघ्नता होगी। आज इस मशीनों के युग में भी कोई वैज्ञानिक ऐसा यन्त्र नहीं बना सका जिस से अन्न और खाद्य पदार्थ बिना दुर्गन्ध उत्पन्न करे मिट्टी में परिणत हो जावें। मनुष्य और अन्य प्रकार के जीवधारी जब इन खाद्य पदार्थों को अपने शरीरों में भक्षण करके इनकी नष्टता करते हैं तो उनके मल विष्टा में कितनी दुर्गन्ध आती है परन्तु इन कीटाणुओं और जानवरों की विष्टा भी कितनी निर्गन्ध होती है। यहां पर हम प्रकृति के दो और जानवरों के नाम देते हैं जिन की विष्टा में दुर्गन्ध नहीं होती और यह वह जानवर है जो भूस्थल पर सब से अधिक तीव्रता की दुर्गन्ध आने वाली गन्दगियों को भक्षण करके उन की निवृत्ति करते हैं यह जानवर 'सूकर' और 'मछलियें' हैं। सूकर भूस्थल पर गन्दगियों की निवृत्ति करता है और मछली जलस्थल में गन्दगियों की निवृत्ति करती है। और दोनों ही की विष्टा निर्गन्ध होती है। इस के साथ २ ही हम अपने पाश्चात्य वैज्ञानिक मित्रों से यह भी प्रार्थना

करेंगे कि यदि आज वे निर्पक्षता से प्रकृति के उत्पन्न किये हुए विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं और जानवरों के कार्य कर्मों का गूढ़ दृष्टि से विचार करके देखेंगे कि वास्तविकता में यह मनुष्य के प्रति हितकारी कार्य करते हैं या हानिकारक तो ऐसा करने से उनका स्वय का ही हित होगा और विश्व का भला होगा प्रकृति का या उसके उत्पन्न किये हुए कीटाणुओं का हित या हानि कुछ नहीं होगी। आज जनता 'शेख चिल्ली' की कल्पित कहानियों को सुनने या मानने के लिये तैयार नहीं है। उदाहरण के रूप में उन पांच प्रकार के कीटाणुओं और जानवरों में से चूहे को ही ले लीजिये। यद्यपि हमारी उपरोक्त व्याख्या से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जहां २ चूहे या अन्य इसके साथी जानवर या कीटाणु क्रिया करते हुए होते हैं वहां पर स्वास्थ्य विज्ञानिक त्रुटयें अवश्य ही मौजूद होती हैं अन्यथा इन जानवरों के घरों में आने की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु यदि अपनी त्रुटियों के कारण यह आ भी गये तो उनके कारण की शान्त चित्त से खोज करके उस कारण की नष्टता कर देने से इस चूहे आदि का घरों में आना स्वय रुक जायेगा और वह रोक एक स्थाई रूप की रोक होगी। अब होता क्या है कि कारण की खोज नहीं की जाती और न ही कारण को हटाने का कोई प्रयत्न ही किया जाता है एवं कार्य का नाश करने के प्रयत्न किये जाते हैं और कार्य के ही केवल नाश कर देने से फिर कारण की स्वय नष्टता हो जाने की आशा भी की जाती है और स्वप्न देखे जाते हैं जो एक असम्भव और प्रकृति के नियम विरुद्ध बात है। यह व्यवहार केवल चूहे के साथ ही नहीं एवं सैकड़ों अन्य कीटाणु और जानवरों के साथ यही व्यवहार चल रहा है। केवल यहां मनुष्यों के चूहे के प्रति दुर्व्यवहार का थोड़ा सा वर्णन करते हैं। चूहे के प्रति हमारे आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों और उनके अनुयाइयों का यह विश्वास है कि यह जानवर घरों में आता जाता हुआ अपने शरीर के उपर 'प्लेग रोग' के कीटाणुओं को बैठाकर घरों में ले आता है जिन कीटाणुओं के काट लेने से मनुष्यों को प्लेग रोग हो जाता है। हम इस समय न तो प्लेग रोग के विशेष कारणों का कोई वर्णन करेंगे और न ही इस प्लेग रोग को (पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मतानुसार)

फैलाने वाले कीटाणुओं का कोई वर्णन करेंगे। हम केवल यहां उन कीटाणुओं की सवारी देने वाले जानवर 'चूहे' का ही थोड़ा सा वर्णन अवश्य करेंगे जिस का विषय छेड़ रक्खा है। हम 'चूहे' के सम्बन्ध में पाश्चात्य वैज्ञानिकों और उनके अनुयाइयों से एक प्रश्न करते हैं कि यदि क्षण भर के लिये तर्क वितर्कार्थ यह मान भी लिया जावे कि 'प्लेग रोग' को फैलाने वाले एक विशेष प्रकार के फुदकने वाले कीटाणु होते हैं और वे चूहे के सवारी करके घरों में आ जाते हैं और उनके आने पर वे कीटाणु मनुष्यों में रोग फैलाते हैं तो उस रोग फैलाने का उत्तरदायित्व चूहों पर कैसा ? और इस की सजा प्राण दण्ड क्यों और इस प्राण दण्ड का सजा से क्या लाभ ? यदि चूहा ऐसा करता भी है तो बुद्धिमान मनुष्यों को कम से कम इनसे 'प्लेग रोग' के सकेत का ही लाभ उठा लेना चाहिये था जिस से लोग सावधानी से रोग से बचने के उपयोग कर लिया करते। क्या ऐसा आरोप लगाकर चूहों की नष्टता कर डालने का निर्णय एक अविवेक और अविचार का कार्य नहीं है। क्या यह सम्भव नहीं कि यह प्लेग रोग फैलाने वाले कीटाणु चूहों की नष्टता हो जाने पर किसी अन्य सवारी द्वारा चले आवें। यदि यह अधाधुन्द आरोप किसी एक या दो अविवेकी वैज्ञानिक ने अपनी अनभिज्ञता वश होकर चूहे पर लगा भी दिये थे तो क्या यह आवश्यक ही था कि उन वैज्ञानिकों के कहने को 'ब्रह्म वाक्य' मान लिया जाता और इस समस्या का निरीक्षण सत्यासत्य के निरीक्षणार्थ प्रयोग न किया जाता हम भारतीय वैज्ञानिक सदा से अपने सरल प्राकृतिक नियमों में विश्वास रखते और उनका पालन करते चले आ रहे हैं और अबभी बहुत परिमाण में कर रहे हैं। केवल हमारी परिस्थिति में थोड़ा सा अन्तर यह आ गया है कि ६०० वर्ष के विदेशियों के शासन ने हम को अपने भारतीय वैज्ञानिक सिद्धान्तों से थोड़ी घृणा करा दी है जो अब शमता से दूर की जा रही है।

अब हम इन्हीं उपरोक्त पांच प्रकार के कीटाणुओं और जानवरों का व्यक्तिगत थोड़ा २ वास्तविक कार्यक्रमों का वर्णन कर देते हैं जिससे पाठकों को उनके कार्य का बोध हो जावे।

(१) चैंटी बहुत छोटा सा पृथ्वी पर रहने वाला कीटाणु है जिस

यह जानवर पेड़ों पर रहता है। घरों में केवल चक्कर लगा लेती है परन्तु भाग कर पेड़ों पर पहुँच जाती है। इस का उत्तरदायित्व पेड़ों से गिरे हुए फलों और खाद्य पदार्थों की नष्टता करना और साथ २ उन घरों के केवल बाहरी बरामदों से भी बिखरे हुए अन्न या खुले हुए अन्नादि खाद्य पदार्थों की नष्टता करना होता है। यह जानवर दिन का रोशनी में कार्य करता है।

(५) चिड़ियाँ–यह प्रकृति के विशेष विभाग का पांचवाँ सिपाही है। यह सिपाही अपने ढङ्ग का निराला परन्तु वायु सेना का साधारण सिपाही है। यह चिड़िया बहुत छोटे से आकार वाली हरन्तु अपनी उड़ने को गति में और अन्न भक्षण करने की गति में बड़ी तीव्र होती है। घरों में बाहर से भी उड़ कर आ जाती है और कभी कभी घरों में ही अपने घोंसले छतों आदि में बना लेती है। बड़ी निडर और निसंकोचता से घरों के भीतर उड़ती रहती है और जहाँ पर भी कोई अन्न के दाने बिखरे हुए दीख पड़ते हैं उन को बड़ी शीघ्रता से खा लेती है। इस का कार्य हा वास्तविकता में घरों में बिखरे हुए अन्न और खाद्य पदार्थों के कणों का भक्षण करके उन को तत्काल नष्टता करके घरों के वायु मण्डल को 'गलन सड़न' के विषैले प्रभावों से मुक्त रखना है। यह अपना कार्य चाँदने में ही करती है। इस का कार्य क्षेत्र ऐसे घरों में ही रहता है जहाँ पर ऊपर से खुले हुए रोशनी और हवादार हों और जहाँ पर अन्न आदि रहता हो। फिर भा इस का कार्य अधिकतर यहीं होता है जहाँ बिखरे हुए अन्न की मात्रा परमित मात्रा है क्योंकि अधिक मात्रा में होने से प्रकृति अधिक प्रबल सिपाहियों को कार्यक्षेत्र में कार्य करने के लिये भेज देती है जैसे कबूतर, फाकता इत्यादि अनेक प्रकार की बड़ी चिड़ियें। वैसे तो यह प्रबल प्रकार के सिपाही भी घरों में दिन में दो चार बार अपने चक्कर लगाते रहते हैं इनके साथ २ गले सड़े कणों के लिए कव्वे भी एक आधा (आवश्यकतानुरूप) चक्कर लगाते रहते हैं। परन्तु घरों का नित्य प्रति का कार्य प्रकृति ने हमारे इस छोटे से सिपाही चिड़िया को ही सौंप हुआ है और यह इस कार्य को बड़ी तत्परता से करती भी रहती है। इस के कार्य करने में विचित्रता यह है कि यह छोटी सी चिड़िया घरके मनुष्यों और साथ रूपों को इतनी प्रिय और चित्र लगती

है कि कोई भी इस के कार्य में बाधा नहीं डालता जिसके कारण यह सर्व प्रिय लगती हुई घर के सभी कमरों में (केवल बहुत अन्धेरी कोठरियों को छोड़ते हुए) चक्कर दे जाती है और जहाँ कहीं कोई अन्न के दाने या कोई और खाद्य पदार्थ के कण मिल पावे हैं तो भागती २ उन को क्षणों में भक्षण कर जाती है। और जिन घरों में कार्य स्थाई रूप का रहता है वहाँ पर अपने रहने का प्रबन्ध भी कर लेती है और घोंसले बना लेती है। अब हम ने थोड़े २ परिमाण में इस प्रकृति के विशेष विभाग के पाँचों प्रकार के कीटाणुओं और जानवरों के वास्तविक कार्यों की व्याख्या कर दी है। इन्हीं सिद्धान्तों पर प्रकृति घरों में सैकड़ों प्रकार के अन्य कीटाणुओं और जानवरों से कार्य लेती है। और यह प्रकृति का अटल नियम हर मनुष्य के लिये हर स्थान पर और हर समय में एकसा लागू होता है। कोई भेद भाव नहीं रक्खा जाता है। अन्तर केवल मनुष्यों के रहन सहन के विभिन्न ढङ्ग होने से पड़ जाता है। यदि भारतीयों के रसोई घरों में चींटियें और छोटी चिड़ियें अधिकतर कार्य करती दीख पड़ती हैं तो पाश्चात्य ढङ्ग के बावर्ची खानों में ईंघर (Cockroaches) इत्यादि कार्य करते दृष्टिगोचर होते हैं। यदि आमिष भोजन करने वाले मनुष्यों के मकानों की छतों पर बन्दर और कबूतर आदि दिखाई पड़ेंगे तो सामिष भोजन करने वालों के मकानों की छतों पर चीलें और कव्वे पर्याप्त संख्या में दिखाई पड़ते हैं। प्रकृति के इन स्वास्थ्य रक्षक सेना के सिपाहियों को न किसी जाति या देश के मनुष्यों से अधिक प्रेम है और न अधिक घृणा है। यह सिपाही किसी भी कार्य को अनुराग वश नहीं करते केवल कृत्य वश ही करते हैं।

प्रकृति सेना के सब प्रकार के कीटाणुओं और जानवरों का लक्ष्य केवल एक ही है कि मनुष्यों के घरों, मुहल्लों, गाँवों और शहरों में जल, वायु की स्वच्छता रहे। अब घरों की दो बड़ी महत्वशील रसायण शालाओं का वर्णन हो चुका जो खोज नं० ७ में बताई हुई प्रथम और तीसरी अवस्थाओं का कार्य क्रम करती रहती हैं। अवस्था नं० २ स्वास्थ्य अवस्था है जो शरीर के भीतर भोजन पचाने में उत्पन्न होती है। इस अवस्था नं० २ में भी प्रकृति ठीक उसी नियम के अनुकूल जो अवस्था नं० १

की कुछ व्याख्या पीछे भी की जा चुकी है। यह कीटाणु बड़ी प्रबल मनाल (सूंगने वाली) शक्ति रखता है और चिकनाई और मिठाई के सूक्ष्म कण जहां भी पड़े होते हैं वहीं से ढूंढ कर साफ कर देता है। यह कीटाणु हज़ारों और लाखों के दल में सम्मिलित होकर प्रकृति की बड़ी २ जटिल समस्याओं का निबटारा करता है। इस का कार्य क्षेत्र हर स्थान और हर पदार्थ है।

(२) चेंटे जो काले रङ्ग के होतेहैं यह केवल मिठाई के कणों की निवृत्ति करता है यह कीटाणु हर प्रकार की मिठाई और सड़े हुए पदार्थों के क्षेत्र में विष निवृत्त करने के लिये पहुच जाता है और इसका कार्य तब आरम्भ होता है जब चेंटियों की शक्ति से कार्य निकल जाता है। इस कीटाणु का कार्य क्षेत्र बहुत विशाल है घरों, खेतों, बगीचों और पेड़ों पर सब हा स्थानों में यह कार्य करता है। खेतों और खलिहानों में यह बहुत कार्य करता है। चेंटी के समान यह चेंटे भी हज़ारों और लाखों के दलों में काम करते हैं। यह कीटाणु गलता सड़ती वस्तुओं में भी अपना विशेष कार्य करते हैं और इस की विष्टा भी विषैनी या दुर्गन्ध देने वाली नहीं होता है। यह अपने शरीर से कोई हानिकारक या घृणित पदार्थ नहीं निकालता जिससे कोई अनिष्ट प्रभाव उत्पन्न हो।

(३) चूहा—यह चूहे भूस्थल पर कितनी ही प्रकार के होते हैं परन्तु हम केवल घरेलू चूहों के सम्बन्ध में ही लिख रहे हैं। इस प्रकृति के विशेष विभाग (प्रबन्ध विभाग) में कार्य करने वाला मुख्य जानवर है जिस का मुख्य कार्य घरों में बिखरे हुए अन्न और दूसरे प्रकार के खाद्य पदार्थों को भक्षण करके उन की तत्काल नष्टता कर देना हा होता है। इस को अपना कार्य घर के भण्डारों की विभिन्न प्रकार की अडाओं और अड़चनों के बीच में करना पड़ता है इस कारण प्रकृति ने इस जानवर को भागने की और भक्षण करने की शक्तियें बिजली के समान तीव्र गति वाली दी हैं और साथ २ श्रवण शक्ति भी बहुत तीव्र ही होती है घरों में बिल बना कर अपना रहने का प्रबध कर लेता है इस के कार्य का समय अधिकतर रात्री का समय होता है। शरीर चिकना स्वच्छ जिस से शीघ्रता से अड़ाओं में से भी निकल जावे। शरीर का रङ्ग

मटियाला जिस से मनुष्यों की दृष्टि इस को न पकड़े। कार्य अपना बड़ी तीव्र गति से करने के कारण ही मनुष्यों के रहते २ भी कर लेता है। अभाग्य वश इस का घरों में कार्य अप्रिय कार्य होता है जिस के कारण घरों का बच्चा २ इस को शत्रुता की दृष्टि से देखता है। वास्तविकता में देखा जावे तो इस का कार्य अरुचिक और अप्रिय होना ही चाहिये क्यों कि इस मँहगाई और निर्धनता के समय में भी घरों के स्वच्छ अन्न और खाद्य पदार्थों को खा जाता है। बिचारे घर के मनुष्यों को तो इस रहस्य-मय बात का पता तक नहीं है कि इस अन्न की नष्टता घरों में महान प्रकृति बल-पूर्वक करा रही है और यह कि सब कार्य स्वास्थ रक्षार्थ किये जा रहे हैं। यह चूहे की नियुक्ति वाला कार्य बहुत ही अनुरक्तता और त्याग का कार्य है जिस को बहुत थोड़े कर्मचारी करना पसन्द करेंगे। इस कार्य में कृतव्य ही कृतव्य हैं और जान हर समय आपत्ति में रहती है कि मनुष्यों के बीच में जा कर उन की रुचि के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है। यह प्रकृति का बहादुर सिपाही इन सब अड़चनों के होते हुए भी अपना कार्य पूर्णता से करके ही हटता है। कार्य क्षेत्र में इस को बहुत बार एक २ दाने के निकाल कर साफ करने में दस २ बार घर के आदमियों के आजाने के कारण हर बार भाग जाना और अपने को किसी पदार्थ के पीछे दृष्टि से ओझल कर लेना और फिर बाहर निकल आना पड़ता है। इस जानवर की विष्ठा निर्गन्ध होती है और इस से कोई विषैले प्रभाव नहीं फैलते। इस की विष्ठा बन्द मूत्र को खोलने के लिये और अन्य रोगों की औषधियों में काम आती है।

(४) गिलहरी—यह जानवर चूहे की आकृति वाला ही होता है—केवल आकृतिमें अन्तर यह होता है कि इस की पूँछ पर बाल होते हैं और चूहे की पूछ साफ होती है। चूहे को घरों के बिलों में रहना पड़ता है परन्तु यह जानवर पेड़ों पर रहता है। स्वभाव में गिलहरी अपनी चाल में चूहे से अधिक तीव्र चाल वाली होती है और चूहे से अधिक निडर होती है। और इस का निडर होना ठीक भी है क्योंकि एक तो इस के घरों के मनुष्यों में शत्रु कम होते हैं और दूसरे इस की तेज़ चाल के कारण इस को बाधा पहुँचाने वाले भी कम ही मिलते हैं।

और २ में पालन किया जाता है कार्य करती है और आवश्यकतानुकूल पचासों प्रकार के सूक्ष्म कीटाणुओं से गन्दगियों और विष निवृत्ति के कार्य लेती है। शरीर के बाहर तो शरीर के बालों और वस्त्रों में जूयें यह विष निवृत्ति का कार्य करती हैं और शरीर के भीतर दसों प्रकार के अति सूक्ष्म कीटाणु रक्त तक में प्रवेश कराके उन से विषों की निवृत्ति कराई जाती है। अभाग्यवश आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जिस प्रकार अवस्था नं० १ और २ में कार्य करते हुए कीटाणुओं को मनुष्य के शत्रु होने की उपाधि दे डाली है उसी प्रकार इस अवस्था नं० २ में मनुष्यों के शरीरों के भीतर कार्य करते हुए सूक्ष्म कीटाणुओं को भी मनुष्य के शत्रु की उपाधि देदी है। हम अवस्था नं० २ के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं करेंगे क्योंकि यह अवस्था हमारे विषय क्षेत्र से बाहर निकल जाती है। अब थोड़ा सा जुओं के कार्यक्रम की व्याख्या करके अपनी खोज नं० २६ के विवरण को समाप्त करते हैं। मनुष्यों के शरीरों में से विष्टा और मूत्र के अतिरिक्त त्वचा के असंख्य छिद्रों में से अशुद्ध विषाक्त वायु हर समय निकलती रहती है। जो मनुष्य शरीर की स्वच्छता करने के नियमों का ठीक पालन नहीं करते रहते हैं और नित्यप्रति स्नानादि करके अपने शरीर की बाहरी त्वचा को साफ नहीं करते रहते हैं और जहां २ जब २ और जो २ मनुष्य इन शरीरों की स्वच्छता रखने के नियमों का पालन करना छोड़ देते हैं तो उनके शरीर की त्वचा से अशुद्ध वायु निकल कर मल के सूक्ष्म कणों में प्रवेश कर जाती है और कुछ दिनों और स्नान न करने से यह मल त्वचा के छिद्रों में भरकर स्वास्थ्य पर अस्वास्थ्यता के प्रभाव डालने वाला बन जाता है। इस से पूर्व ही प्रकृति के स्थापन किये नियमानुकूल इन्हीं मनुष्यों की त्वचा से उत्पन्न हुए मलों में एक प्रकार के कीटाणुओं की स्वयं उत्पत्ति हो जाती है जो इस विषाक्त मल को भक्षण करके नष्ट करना आरम्भ कर देते हैं। इन कीटाणुओं को प्रथम अवस्था में 'लीख' और दूसरी अवस्था में जुयें कह कर पुकारा जाता है। ये कीटाणु दो प्रकार के होते हैं एक सिर के बालों में उत्पन्न होने वाले और दूसरे मनुष्यों के शरीरों में उत्पन्न होने वाले या पहिनने के वस्त्रों में रहते हैं। यह कार्य तो शरीर के विभिन्न भागों

में करती है परन्तु रहती है पहिनने के गन्दे वस्त्रों में। सिर की जुयें सिरों में ही बनी रहती है और अपना स्वच्छता कार्य नहीं करती रहती है। यह कीटाणु अपना कार्य बडी विचित्रता से करता है। इस को भी अंधेरे में कार्य करने का अभ्यास और चांदने से घृणा होती है। बालों में कार्य करने वाली जुयों का रङ्ग थोड़ा काला और शरीर पर कार्य करने वालियों का रङ्ग थोड़ा भूरा होता है जिस से यह कीटाणु कार्य करते हुए दिखाई न दे सकें (जैसा इस प्रकार से करने वाले प्रकृति के सब ही कीटाणुओं के लिये प्रकृति ने नियम बना रखा है)। बालों में कार्य करने वाली जुओं को अपनी टांगें मोड़ कर दो बालों पर बडी तीव्र गति से चलने का अभ्यास दिया हुआ होता है।

(२७) किसी २ स्थानों में कभी २ थोडे समय के लिये मक्खियें शुद्ध और साफ घरों में भी प्रायः क्यों आ जाती हैं इसका कारण अडोस पडोस की गन्दगी ही है। यह प्रकृति की स्वास्थ्य फौज के सिपाही अपना विष निर्वाण कार्य करने के लिये पड़ोस की गन्दगी पर नियुक्त किये जाते हैं वहां अवकाश मिलने या किसी क्षणिक बाधा के उत्पन्न हो जाने पर पडोसी के मकान में भी कभी कभी चले जाते हैं जैसे फौजें किसी रणक्षेत्र में अडोस-पडोस की जगह भी घेर लिया करती हैं।

परन्तु ऐसी अवस्था में यह अपने कार्यक्षेत्र में ही अधिक समय लगाते हैं क्योंकि इन सिपाहियों के पास व्यर्थ खोने के लिये समय नहीं होता और न वे स्वच्छ स्थानों में कोई बाधा ही पहुंचाते हैं। वास्तविकता में पडोसियों के घरों की गन्दगियें दूसरे पडोसियों को सर्वदा हानिकारक होती हैं। इसी कारण से मनुष्यों को गली मोहल्लों की गन्दगियों की निवृत्ति सामूहिक प्रयत्नों द्वारा करनी ही चाहिये। यदि कहीं ऐसा करना किसी कारण से सम्भव न हो तो फिर अपने २ व्यक्तिगत घरों की पर्याप्त स्वच्छता तो करनी तुरन्त आरम्भ कर देनी चाहिये।

स्तक के प्रथम और द्वितीय भागों पर प्राप्त हुए प्रशंसा पत्रों के सारांश।

प्रिंसिपल आयुर्वेदिक कालिज पीलीभीत (उ०प्र०) ता० १५ १० ५१	आपकी पुस्तक 'स्वास्थ्यविज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज' का द्वितीय भाग पढ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने इस विषय पर जो प्रकाश डाला है प्रशंसनीय है। यद्यपि यह प्राचीन है किन्तु नवीन शैली में यह वास्तव में खोजपूर्ण है। आपके विचार की पुष्टि में वेदों की कई ऋचायें जल वायु, अग्नि को ही स्वास्थ्य दायम्भ कहती हैं।
[illegible]द्विवेकर M Sc [illegible]ाचार्य जबलपुर ता० ११ ११ ५१	मैंने आपकी स्वास्थ्य विज्ञान पर लिखी हुई दोनों पुस्तकों को पढा है। मैं आपकी खोजों की हार्दिक प्रशंसा करता हूँ। आपकी खोजें वास्तव मे विचारणीय हैं केवल इनकी आधुनिक विज्ञानिक परीक्षा होनी चाहिये
[illegible] वैद्यरत्न चिकि० चूडामणि ० कृष्णदत्त शर्मा आयुर्वेद शास्त्री [illegible]रनपुर (उ प्र) ता० २६ १२ ५१)	'एक भारतीय वैज्ञानिक की अनुपम कृति 'स्वास्थ्य विज्ञान' मैंने पढा इसके प्रकाशन की अभिनव शैली आपके ही परिश्रम का मूर्ति रूप है। ईश्वर आपको ऐसी कृतियों के सम्पादन और प्रकाशन के लिये पूर्ण आयुष्य प्रचुर बल प्रदान करे।
[illegible] प० रामचन्द्र 'देहलवी' महोपदेशक आर्यसमाज हापुड़(मेरठ उ प्र) ता० २६ ११ ५१	आपकी खोजें सराहनीय हैं आप मे जो विलक्षणता है उसका आपकी पुस्तकों मे प्रकाश है। आपकी पुस्तक [illegible] मो गई होगी सबने आश्चर्यमय प्रशंसा की होगी भगवान आप में इस गुण की वृद्धि करे जिससे आपकी प्रसिद्धि और संसार का लाभ [illegible]
श्री तेलूराम जी एम० एल०ए० प्रधान जिला कांग्रेस कमेटी सहारनपुर (उ० प्र०) ता० ५ [illegible] ५१	श्री साधो प्रसाद जी रेलवे इन्जीनीयर सहारनपुर द्वारा लिखित 'स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज' पुस्तक मैंने पढ़ी। लेखक ने उसमें प्राकृतिक क्रियाओं को नवीन वैज्ञानिक ढंग पर समझाने का प्रयास किया है। लेखक का यह प्रयत्न बड़ा सराहनीय है। वास्तव प्रकृति के [illegible]िक

ी प० महेशदत्तजी
ायुर्वेदाचार्यशास्त्री
अध्यक्ष-आयुर्वेद
प्रयोगशाला मेरठ
ता० १३ ४,४२

आपकी भेजी पुस्तक 'स्वास्थ्य विज्ञान' प्राप्त हुई, एतदर्थ कृतज्ञ ! आपने बड़े श्रम से अन्वेषण द्वारा प्राच्य प्रतीच्य विद्वानों के मतों का सम्पन्न समन्वय कर दिया और भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान का आविर्भाव किया है !

ी पं० शंकरदत्तजी
ौड़ राजवैद्य शास्त्री
वनौषधि भण्डार'
जबलपुर
ता० १०, ,४२

'स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज नामक पुस्तक के प्रथम एवं द्वितीय भाग यथा समय प्राप्त हुए! दोनों भाग प्राय अमूल्य अन्वेषण के मनोआत्मक नमूने हैं !

श्री सम्पादक
'पीपलस जनरल'
सहारनपुर (उ प्र.)
ता० १ १०-४१?

इस पुस्तक के विद्वान लेखक एक इन्जीनियर और अन्वेषक वैज्ञानिक हैं। जिन्होंने अपनी की हुई सत्ताईस खोजों का विवरण इस पुस्तक में किया है। लेखक का परिश्रम सराहनीय है और पुस्तक जनता के लिये विशेष उपयोगी है।

"
ता० १०-४ ४२

आपकी पुस्तक बहुत अच्छी है। कृपया तृतीय भाग की एक प्रति भेजिये।

श्री बाबूरामजी गुप्त
प्रधान आर्यसमाज
अम्बाला शहर
(पंजाब)
ता० १४ ४-४२

श्री माधो प्रसाद जी की लिखी हुई पुस्तक 'स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज' के दो भागों की प्राप्ति हुई जो समय आवश्यकताओं के अनुसार लेखक महोदय ने खोज करके अपने अनुभवों के आधार पर लिखी हैं। जनता इनसे बहुत लाभ उठा सकती है कृपा करके इस पुस्तक का तीसरा भाग भी अवश्य भेजने की कृपा करें। आपका यह सेवा कार्य बहुत प्रशंसनीय है। आप समस्त जनता के धन्यवाद के पात्र हैं।

ी देवदत्त शर्मा
ाधानआर्यसमाज
देवबंद (उ०प्र०)
ता० २० ४-४२

आपकी खोजपूर्ण लिखी हुई दोनों पुस्तकें पढ़ीं वास्तव में स्वास्थ विज्ञान पर नई खोज है। मैं इनको फिर दुबारा पढ़ रहा हूँ और मित्रों को भी देने का इरादा है जिनको इस विषय में रुचि होगी। इन्जीनियर साहब ने वास्तव में इन पुस्तकों को लिखकर देश की सच्ची सेवा की है। जिसके लिये धन्यवाद है। कृपया तीसरा भाग

इस पुस्तक का छपते ही अवश्य भेज दीजिये।

श्री आशुतोष मौजू
मदार भिषगाचार्य
६०/८ कनाटसर-
कस नई दिल्ली
ता० २०-५-५८

आपकी पुस्तकों (स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भार वैज्ञानिक की नवीन खोज) को पढ़कर कुछ सोच हुई है। अतः अपनी पुस्तक का तृतीय भाग भेजने कृपा करें।

श्री घनश्यामसिंह
मन्त्री आर्य समाज
गंगोह सहारनपुर

मुझे आपकी पुस्तक के द्वितीय भाग को पढ़ने अवसर मिला। लेखक का परिश्रम सचमुच ही प्रशंस है पुस्तक बड़े विज्ञानिक तथा दार्शनिक ढंग लिखी गई है जो उपयोगिता की दृष्टि से बहुत महत्व रखती है। कुछ वि जैसे बर्रे, ततय्या इत्यादि विषैले जन्तुओं के सम्बन्ध मे जो बहुत से भ विचार फैले हुए हैं उनका जिस सुन्दर ढंग से विश्लेषण किया गय यह बहुत ही बुद्धि ग्राह्य तथा सार्थक है। ऐसी उपयोगी पुस्तक के लि श्रीयुत लेखक महोदय के लिये मेरी ओर से हार्दिक बधाई है।

श्री शशिकांत भूला
भाई पंड्या भिष
गाचार्य श्री नारा-
यण आयुर्वेदिक
चिकित्सालय
अहमदाबाद(बंबई
ता० २०-४-५८

माननीय श्री इंजीनियर साहब की अनुभूत स हकीकत जाहिर करने वाली लिखी हुई दोनों पुस्त भारत के हरेक विद्वान को मनन करने योग्य है पाश्चात्य विज्ञान से होती हुई गलती जो हिन्द में जारु नहीं अच्छी तरह सब समझ सकें और सारे भारत प्रचार करें ऐसी दृष्टि से इन पुस्तकों का प्रच आवश्यक है।

श्री शिव लाल जी
मुख्तियार
पनम दूर २०५०

बड़े हर्ष के साथ लिखना पड़ता है कि आपने सर्विस में होते हुए भी इतनी खोज कर निकाली है जिसका श्रेय आपको ही है। आगे प्रकाशित होने वाली पुस्तक तृतीय भाग के लिये अनन्य प्रार्थना है। आपका उत्साह सराहनीय है। इस समय इन्हीं बातों की खोज करने की आवश्यकता थी जो आपने पूरी की है।

मैंने आपकी पुस्तक के द्वितीय भाग को आद्योपांत पढ़ा और जाना कि आपने भारतीय आयुर्वेदिक विज्ञान और पाश्चात्य एलोपैथिक विज्ञान के अंतर को वर्णन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। मैंने एक बार एक वैद्य समाज में आपके लिखित सिद्धात को लेकर रोगों के कारण 'कृमि सिद्धांत' पर एवं आयुर्वेद का जो 'कुपितमल' रोगों का मूल है उस सिद्धान्त पर एक भाषण दिया था। यद्यपि यह आपका वर्णित सिद्धांत (सर्वेषा मेव रोगाणं निदानं कुपिता मला) इस कथन के अनुसार प्राचीन ही है परन्तु आपकी खोज ने इस सिद्धान्त पर चार चांद लगा दिये हैं। मैंने उस भाषण में आपकी खोज की हुई एक प्रत्युक्ति देकर लोगों को समझाया तो उन्हों ने नूतनता को अनुभव किया और अपने आयुर्वेद के प्राचीन सिद्धान्त को वैज्ञानिक माना और साथ ही उस व्याख्यान से अपने धन्वन्तरी त्रयोदशी के उत्सव की सफलता अनुभव की। आप अपनी लिखित सब पुस्तकें जैसा उचित समझें कीमतन या बिना कीमत भेजने की कृपा करें। यह स्वतन्त्र भारत आपकी इस खोज का मूल्य समझेगा वह दिन दूर नहीं है। ईश्वर आपको आपके कार्य में सफलता प्रदान करें।

श्री कविराज ... लीला धर जी शास्त्री, काव्यतीर्थ, आयुर्वेद वाचस्पति, प्रधान आर्य समाज ग्वालियर सिटी, ता० १० ६-४२

श्री माधोप्रसाद जी महत्व पूर्ण वैज्ञानिक खोज प्रथम दो भाग हमें मिल चुके हैं जो कि धन्यवाद पूर्वक पुस्तकालय में जनता के लाभार्थ रखे हैं और जिनसे जनता लाभ उठा रही है आशा है कि तृतीय भाग भी जनता के लाभ को दृष्टि में रखते हुए हमारे पुस्तकालय के लिये भेजकर हमें कृतार्थ करेंगे।

श्री अधिष्ठाता जी गुरुकुल कांगड़ी, ता० ६-६ ४२

'स्वास्थ विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज' नामक पुस्तक की विचार शैली पक्षपात रहित, प्रभावमयी एवं आकर्षक है। इसमें पश्चिमीय वैज्ञानिकों में प्रचलित रोगोत्पादन तथा स्वास्थ सम्बन्धी कुछ सिद्धान्तों को गहरी छानबीन के बाद भ्रम पूर्ण आधार पर आधारित बतलाते हुए भारतीय जनसमाज में प्राचीन काल से व्यवहृत रीति रिवाजों पर विवेचनात्मक प्रकाश

श्रीमती योगमाया देवी जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य मंत्री ... बिहार संस्कृत द्वारा ... सम्मेलन, ..., पन्ना (बिहार)

डालकर स्वास्थ्य सम्बन्धी सत्याग्रह सिद्धान्त का युक्तियुक्त प्रतिपादन किया
आचार्य चरकने भी जन पद ध्वंसन (मरक) के कारणों में व
जल, देश और काल की विगुणता का उल्लेख किया है और बतल
है कि विगुण देश में मच्छर, मक्खी मूषिकादि की प्रचुरता हो ज
है। लेखक ने अपने विचारों की पुष्टि में अत्यन्त उदार भाव
प्राच्य प्रतीच्य विद्वानों के विचारों का सहारा लेकर सुन्दर विवेच
किया है। पुस्तक पठनीय, विचारणीय मननीय तथा उपादेय है।

श्री (रायबहादुर) लक्ष्मीचन्द जी रिटायर्ड ऐक्जी-क्यूटिव इञ्जीनियर प्रसिपल सिविल इञ्जीनियरिंग स्कूल लाटूची रोड लखनऊ (उ० प्र०) ता० जून ५२

इञ्जीनियर साहब की स्वास्थ्य सम्बन्धी वैज्ञानि
अन्वेषणों पर लिखी हुई पुस्तक स्वास्थ्य विज्ञान
एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोजों का द्विती
भाग ही मुझे प्राप्त हुआ था। इसमें इञ्जीनियर साह
ने भारतीय संस्कृति के रिवाजों के पीछे छिपे गु
वैज्ञानिक आधार पर बड़ी रोचक और सुन्दर विधि
से रोशनी डाली है जो कि देश के लिये गौरव व
कारण है। आशा है कि इनकी तीसरी पुस्तक भी ऐस
ही रोचक होगी।

सम्पादक 'विश्वामित्र' पटना ता० ३-७-५२।

खगोल पटना—२ जौलाई ५२—सांस्कृतिक सम्मति
के तत्वविधान में ईस्टर्न रेलवे वर्क्स सुपरिन्टेन्डेन्ट
तथा स्वास्थ्य विज्ञान के यशस्वी लेखक माधोप्रसा
ए० एम० आ० ई० ई० एफ० आर० एस० ए० (लन्दन) ने जन
स्वास्थ्य और प्रकृति विधान विषय पर अनुसन्धान शील भाषण
२ जौलाई ५२ ई० को ४॥ बजे सन्ध्या को इन्डियन इन्स्टीट्यूट सिनेमा
हाल खगोल (पटना) में दिया। सभापति आसन पटना गवर्नमेन्ट
आयुर्वेदिक कालिज के प्रोफेसर श्री नन्दकिशोर मिश्र ने लिया।

कवि० नन्दकिशोर मिश्र, आयु० प्रा० गवर्न०आयु० कालिजपटना बिहार प्रधान आयुर्वेदिक एसोसियेशन

श्री माधव प्रसाद (एक्जीक्यूटिव ऑफिसर ईस्टर्न
रेलवे) लिखित स्वास्थ्य विज्ञान आकर्षक पुस्तक है।
तथ्यपूर्ण तर्क और चिन्तनशील शैली [illegible]
मे काव्य की अन्तर्हित भावना झाँकती रहती है।
'हारिका दहन' रहस्य का नवविवेचन [illegible]
[illegible]